इस्लाम का विष-वृक्ष

परिचय

आधुनिक संसार के चार महान् धर्म हैं—क्रिश्चियन, हिन्दू बौद्ध और इस्लाम। इन प्रधान धर्मों में इस्लाम का स्थान संख्या की दृष्टि से दूसरे दर्जे पर और कट्टरता की दृष्टि से पहले दर्जे पर है। बीसवीं सदी के इस तर्कयुक्त युग में भी मुसलमानों के धर्म-प्रेम के ऐसे लाजवाब उदाहरण मिलते हैं, जिन्हें देख-सुनकर अक्ल दंग रह जाती है। यद्यपि आज इस्लाम की रीति, नीति, संस्कृति और इस्लाम के भयंकर शौर्य का नाश होगया है; ईसाइयत की चमकीली सभ्यता ने दुनियां से 'धर्म' का रूप बदल दिया है; संसार की प्रगति में महान् अन्तर आगया है;—बुद्ध के अनुयायी अहिंसा-तत्व का विस्मरण कर, छिपकलियों का मांस खाने लगे हैं, ईश्वरवादी हिन्दुओं में नास्तिकता ज़ोर पकड़ने लगी है—परन्तु इस्लाम के अनुयायी आज भी पैग़म्बर के नाम पर खून की नदी बहा देते हैं, दुनियां को सिर पर उठा लेते हैं, और इस्लाम के बच्चे की घूटी में आज भी 'मज़हब पर कुरबान होजाने' का गुरु-मन्त्र घोला जाता है।

संसार में इस धर्म ने एक तूफ़ान के रूप में जन्म लिया। इस तूफ़ान का आरम्भ अरब के रेगिस्तान में हुआ और तलवार के ज़ोर पर विद्युत्-गति से यह धर्म काले बादलों की तरह समस्त संसार की छाती पर सवार होगया। इस धर्म का

प्रचार ऐसे स्थान में हुआ, जहां मनुष्य के प्राणों का मूल्य जूँ-चींटी से सस्ता था, मनुष्यों का शिरोच्छेदन पदाधिकारियों का खेल था, नर-रक्त बादशाहों की होली का रङ्ग था; उस समय लाखों आदमियों की हत्या एक तमाशा थी, जिसे देख-सुनकर कोई स्तम्भित न होता था, न असन्तोष की ज्वाला फूटती थी, न विद्रोह का डंका बजता था। उस समय तलवार ही संसार का एक-मात्र साधन था—न हवाई जहाज़ मँडराते थे, न तोप-बन्दूक-मशीनगनों की भरमार थी, न ज़हरीली गैसों का प्रयोग होता था। तब शासक क़साई थे, और सिपाही लुटेरे। प्राणों के भय से लोग आठों-पहर काँपते थे। तब न अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियाँ थीं, न औचित्य-अनौचित्य का विचार था, और न शासक के सिर पर कोई नियन्त्रण-शक्ति।

ऐसे भयङ्कर समय में इस्लाम पनपा। किस प्रकार इस वृक्ष में फल लगे,किस प्रकार जगत् के कोने-कोने में इस फल के बीज छितरा गये,किस प्रकार तलवार की नोक पर लाखों-करोड़ों आदमियों को पलक-झपकते इस्लाम का मुरीद बनाया गया,और किस प्रकार इस प्रबल धर्म की संस्कृति और उसके सिद्धान्तों का विकास हुआ—इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में आज संसार के अधिकांश औसत-पाठक अन्धेरे में हैं। भारतवर्ष में—जहां धर्म के कारण सब से अधिक नाशकारी आपत्ति का सामना करना पड़ा है—किसी भी प्रान्तीय या राष्ट्रीय भाषा का साहित्य (उर्दू को छोड़कर) इस विषय के प्रकाशन से शून्य है।

वास्तव में यह विषय इतना दुरूह—और साथ ही इतना नाजुक है, कि इस पर क़लम उठाना हँसी-खेल नहीं। अभागे भारत के प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार समुचित सहयोग न मिलने के कारण इस साहित्यिक तपस्या से विमुख हैं। इस देश के आलसी पाठक कभी भी इस महत्वपूर्ण विषय पर किसी ग्रन्थ की जोरदार माँग नहीं करते। इसीलिये हमारे देश का साहित्य इस प्रकार के ग्रन्थ-रत्नों से शून्य-प्रायः है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी में तो इस विषय पर चार अक्षर भी उपलब्ध न होना और भी अधिक लज्जा की बात है।

हिन्दी के प्रचण्ड लेखक आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री ने—जिनकी क़लम को आज अन्तर्राष्ट्रीय मान मिलना चाहिये, तथा जिनकी शैली में बर्नार्ड शॉ और जॉन रस्किन की-सी तिलमिला देनेवाली तीव्रता वर्तमान है—अपने जीवन का एक दीर्घ और अमूल्य समय इस विषय के अध्ययन में व्यय किया है। इस अनवरत परिश्रम के पश्चात् उन्होंने "तब, अब, क्यों और फिर ?"—नामक एक ऐसे प्रबल ग्रन्थ की रचना की है, जिसे संसार के किसी भी ऐतहासिक साहित्य में प्रथम श्रेणी का स्थान दिया जा सकता है, और जिसे हिन्दू-धर्म की इनसाइक्लोपीडिया कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ लगभग ५००० पृष्ठों में समाप्त हुआ है, और इसमें हिन्दू-जाति के भूत, वर्तमान और भविष्य पर एक गहन गवेषणापूर्ण दृष्टि डाली गई है, तथा एक अनोखे दृष्टि-कोण से संसार की प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना का अध्ययन

किया गया है। यह ग्रन्थ पिछले बीस वर्षों से तैयारी मे था, और गत दश वर्षों से लगभग तैयार होकर छपने के अनुकूल समय की प्रतीक्षा कर रहा है।

इस ग्रन्थ का एक अध्याय 'इस्लाम का विष-वृक्ष' के नाम से प्रकाशित किया गया है। हमने इस ग्रन्थ की केवल १५०० प्रतियाँ छापी हैं। हमें विश्वास है, प्रत्येक साहित्य-प्रेमी हमारी पूरी सहायता करेगा, और शास्त्रीजी की इस अमूल्य रचना का हाथों-हाथ प्रचार होगा।

विनीत—

प्रकाशक

इस्लाम का विष-वृक्ष

(१)

मुहम्मद-रसूल अल्लाह

सन् ५७१ ईस्वी की गर्मी के दिनों में शहर बसरा में ऊँटों पर सवार एक क़ाफ़िला आया। वह मक्का से आया था और सुखी, अरब के दक्खिन प्रदेश की पैदा हुई वस्तुओं से लदा हुआ था। इस क़ाफ़िले का सरदार अबूतालिब और उसका १२ वर्ष का भतीजा था। बसरे के नेस्टर धर्मावलम्बी मठ की ओर से उनका आतिथ्य किया गया।

मठ के सन्यासियों को जब मालूम हुआ कि उनका १२ वर्ष का बालक अतिथि अरब के प्रसिद्ध पवित्र मन्दिर काबा के रक्षक का भतीजा है, तो उन्होंने अपने धर्म की प्रशंसा और मूर्त्ति-पूजा की निन्दा उस बालक के हृदय में प्रवेश कराई। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि बालक असाधारण बुद्धिमान और नवीन ज्ञान का उत्सुक है। ख़ास कर धर्म-सम्बन्धी विवाद में उसका मन बहुत लगता है।

इस बालक का नाम मुहम्मद था। मक्का में उस समय एक काला पत्थर पूजा जाता था, जो उल्कोद्भव था। यह क़ाबा में रक्खा हुआ था और उसके साथ ३६० अन्य मूर्त्तियां थीं, जो वर्ष भर के दिनों की सूचक थीं। क्योंकि उस समय साल के दिन योंहीं गिने जाते थे।

यह वह समय था, जब कि ईसाई धार्मिक समूह अपने पादरियों की दुष्टता और ऐश्वर्य–तृष्णा के कारण अराजकता की दशा को पहुँच चुका था। पश्चिमी देशों के पोप लोग धन, विलास और शक्ति के ऐसे प्रलोभन देते थे कि विशप लोगों के चुनाव में भयङ्कर बध करने पड़ते थे। पूर्वीय देशों में क़ुस्तुन्तुनिया इन धर्मान्ध झगड़ों का केन्द्र था, जहाँ अनेक पन्थ और दल बन गए थे।

ये लोग परस्पर अत्यन्त घृणा भाव रखते थे। अरब उन दिनों स्वतन्त्रता की अपरिचित भूमि थी, जो भारत-सागर से लेकर शाम देश के मरुस्थल तक फैली हुई थी। यह इन भगोड़ों और झगड़ालू ईसाइयों का आश्रय-स्थल हो रहा था। अरब के मरुस्थल ईसाई सन्यासियों से भर गये थे और वहाँ के बहुतेरे लोगों ने उनके पन्थ को स्वीकार कर लिया था। हबश देश के ईसाई राजे, जो नेस्टर धर्म को मानते थे, अरब के दक्षिणी प्रान्त यमन पर अधिकार रखते थे।

अरब एशिया के दक्षिण-पश्चिम कोण पर एक मरुस्थल है। इसकी लम्बाई १, ४०० मील और चौड़ाई ७०० मील है। जन-संख्या ५० लाख के लगभग है। देश भर में पहाड़, पहाड़ी, ऊजड़-जङ्गल और रेत के टीले हैं। जल का भारी अभाव है। खजूर ही इस देश की न्यामत है। अधिकांश अरबवासी, जिन्हें ख़ानाबदोश कहते हैं, किसी पहाड़ी नाले के पास ठहर जाते हैं और जब चारापानी का सहारा नहीं रहता तो अन्यत्र चल देते हैं। इस देश में गर्मी इतनी पड़ती है कि दोपहर के समय हिरन अन्धा हो जाता है। आँधियाँ ऐसी आती हैं कि बालू के टीले के टीले इधर से उधर उड़ जाते हैं। यदि यात्रियों का कोई समूह इनके चपेट में आगया तो उसकी ख़ैर नहीं। कहीं-कहीं सर्दी भी बड़े कड़ाके की पड़ती है। सर्दी में वर्षा भी होती है। यही वर्षा का जल नालों और गड्ढों में सञ्चित करके पिया जाता है।

अरब के घोड़े संसार में प्रख्यात हैं। यह पशु पथरीले स्थान पर बड़ा काम आता है, पर रेतीले भागों के काम की चीज़ तो ऊँट है। यह न केवल

सवारी के काम आता है, प्रत्युत् इसका माँस और दूध भी बहुतायत से काम में लाया जाता है। लोग खजूर का गूदा स्वयं खाते और गुठली ऊँटों को खिलाते हैं। अब उनकी दशा में कुछ परिवर्तन हो गया है।

बसरा नगर के नेस्टर मठ के महन्त वहीरा ने मुहम्मद को नेस्टर मत के सिद्धान्त सिखाए। इस विद्वान् सन्यासी के सदुपदेश से मुहम्मद के मन में मूर्ति पूजा से घोर घृणा हो गई।

जब मुहम्मद मक्का लौटा, तो वह उन्हीं ईसाई सन्यासियों की भाँति जङ्गल में कुटी बनाकर रहने को हीरा नामक पहाड़ी की एक गुफ़ा में, जो मक्का से कुछ मीलों के अन्तर पर थी, चला गया और ध्यान तथा प्रार्थना में लग गया। उस एकान्त विचार से उसने एक सिद्धान्त निकाला, अर्थात् ईश्वर की अद्वैतता। एक खजूर के वृक्ष की पीठ से टिककर उसने इस विषय के विचार अपने मित्रों और पड़ोसियों को सुनाए और यह भी कह दिया कि इसी सिद्धान्त के प्रचार में मैं अपना सारा जीवन लगा दूँगा। उस समय से मृत्यु तक उसने अपनी उँगली में एक अंगूठी पहनी, जिसपर खुदा था—'मुहम्मद ईश्वर का दूत।' बहुत दिनों तक उपवास और एकान्तवास करने तथा मानसिक चिन्ता से अवश्य मति भ्रम हो जाता है, यह वैद्य लोग भली-भाँति जानते हैं। इसी हालत में मुहम्मद को प्रायः अन्तरिक्ष वाणियाँ सुनाई पड़ती थीं। फ़िरिश्ते उसके सामने आते थे। एक दिन स्वप्न में जिबराइल नाम का फ़रिश्ता उसे अपने साथ आकाश पर ले गया, जहाँ मुहम्मद निर्भय उस भयङ्कर घटा में चला गया, जो सदैव सर्व-शक्तिमान ईश्वर को छिपाए रहती है। ईश्वर का ठण्डा हाथ उसके कन्धे पर छू जाने से उसका चित्त काँपा।

शुरू में उसके उपदेश का बहुत विरोध हुआ और उसे कुछ भी सफलता न हुई। मूर्ति-पूजकों ने उसे मक्का से निकाल दिया। तब उसने मदीने में, जहां बहुत से यहूदी और नेस्टर पन्थ वाले रहते थे, शरण ली। नेस्टर पन्थी तुरन्त उसके मतावलम्बी हो गये। ६ वर्षों में उसने केवल १,५०० चेले बनाए। परन्तु तीन छोटी लड़ाइयों में उसने जान लिया कि उसका अत्यन्त

विश्वासप्रद तर्क उसकी तलवार है। ये तीनों छोटी लड़ाइयाँ पीछे से बीडर, ओहूद और नशन्स के बड़े युद्ध प्रख्यात किए गए। उसके बाद मुहम्मद बहुधा कहा करता था कि 'बहिश्त तलवार के साए के नीचे पाया जायगा।'

कई एक उत्तम आक्रमणों द्वारा उसने अपने शत्रुओं को पूर्ण रूप से पराजित किया। अरब की मूर्त्ति-पूजा जड़ से नष्ट हो गई और यह भी मान लिया गया कि वह ईश्वर का दूत है।

जब वह शक्ति और ख्याति की पराकाष्ठा को पहुँचा, तब वह अन्तिम बार मदीने से मक्का की ओर गया। उसके साथ एक लाख, चौदह हज़ार भक्त फूलों और गजरों से सजे हुए ऊँटों पर फहराते झण्डे लिए हुए चले। उसके साथ ७० ऊँट बलिदान के लिये थे। उस समय क़ाबे के मन्दिर में ३६० मूर्त्तियाँ थीं जो १ वर्ष के दिनों का चिन्ह थीं। यह मन्दिर प्राचीन भारत के ढंग का और शाम देशीय देवालयों से मिलता-जुलता चौकोर भवन खुली छत का है। मुहम्मद की आज्ञा थी कि मक्का पहुँचते ही सब मूर्त्तियाँ तोड़ डाली जाँय। उस समय अबू सुफियान मक्के का सर्दार था जिसने प्राणभय से कलमा पढ़ लिया। जब वह नगर के निकट पहुँचा तब उसने यह शब्द कहे—"हे ईश्वर! मैं यहाँ तेरी सेवा के लिये हाज़िर हूँ। तेरे बराबर कोई दूसरा नहीं, केवल तू ही पूजने योग्य है। केवल तू ही सबका राजा है; उसमें तेरा कोई साझी नहीं।"

अपने हाथों से उसने ऊँटों का बलिदान किया, और मूर्त्तियों को छिन्न-भिन्न कर दिया। काबा के व्याख्यान-पीठ से उच्च स्वर से कहा—"श्रोतागण, मैं केवल तुम्हारे समान एक मनुष्य हूँ। एक मनुष्य से, जो डरते-डरते उसके पास आया, कहा—"तुम किस बात से डरते हो, मैं कोई अलौकिक नहीं हूँ। मैं एक अरब-निवासी स्त्री का पुत्र हूँ, जो धूप में सुखाया हुआ मांस खाती थी।"

मक्का और काबे के मन्दिर को अधिकार में कर लेने पर अरब की बहुत सी जातियाँ मुहम्मद साहब के धर्म में मिल गईं। परन्तु कुछ क़बीले अभी

ऐसे थे जिन्होंने इस्लाम को अभी स्वीकार नहीं किया था। यह क़बीले बनी हवाज़िन, सतीफ़, जसर और साद वंश के थे। कुछ पहाड़ी जातियाँ भी इनके साथ मिल गई थीं। एक बार इनसे मुहम्मद साहब ने युद्ध कर इन्हें परास्त किया, यह हनीम का युद्ध प्रसिद्ध है, इसमें मुहम्मद साहब के साथ १२०० सवार थे। इस युद्ध में एक अद्भुत घटना घटी थी—जब लूट का माल इकट्ठा हो रहा था तब एक डोली जाती हुई देखी गई। रबिया इब्ने-रफ़ी ने उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया। निकट जाकर देखा तो एक बुड्ढा बैठा था। रबिया ने जाते ही बुड्ढे पर वार किया। पर उसकी तलवार टूट गई। बुड्ढे ने हँसकर कहा—'बेटे, अफ़सोस है तेरे माँ-बाप ने तुझे अच्छी तलवार नहीं दी। जा मेरी काठी में तलवार लटक रही है उसे लेआ और अपना काम कर।' रबिया ने तलवार निकाल ली और वार करने लगा। बुड्ढे ने कहा—'अपनी माँ से यह ज़रूर कह देना कि मैं दुरैद इब्ने सुम्मा को मार आया हूँ।' रबिया ने कहा—'अच्छा कह दूँगा।' इसके बाद वह उसका सिर काटकर घर गया और माँ से उक्त समाचार कहा—माँ ने कहा—'अरे दुष्ट जिसे तूने मारा है उसने तीन बार मेरी और तेरी दादी की इज्जत बचाई थी।' रबिया ने मुँह फेरकर कहा—'इस्लाम काफ़िर के अहसान और गुण नहीं मानता'।

मुहम्मद साहब ने मक्का में यह घोषणा कराई थी—"जिन लोगों ने अरब देश में अबतक इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया है उन्हें चाहिए कि, चार मास के भीतर २ क़लमा पढ़ लें या अरब को छोड़कर चले जाँय। चार महीने बाद यदि कोई क़ाफ़िर अरब में दिखाई देगा तो उसका सिर काट लिया जायगा। इसमें मुसल्मानों के मित्रों, रिश्तेदारों और भाइयों का भी लिहाज़ नहीं किया जायगा।"

यमनका इलाका अभी मुसल्मान नहीं हुआ था, वहाँ मुहम्मद साहब ने अली इब्ने अबितालिब को फौज़ लेकर भेजा। उन्होंने अली से कुछ प्रश्न किए तो अली ने तलवार निकाल कर कहा—इस्लाम का जवाब यह तलवार

है,—और कई विद्वानों के सिर काट लिये। इससे भयभीत होकर समग्र यमन मुसलमान हो गया।

वह मदीने में मरा। मृत्यु-कष्ट के समय उसका सिर आयशा की गोद में था। वह बार-बार पानी के बर्तन में अपने हाथ डुबोता था और अपने चेहरे को तर करता था। उसे तीव्र ज्वर और सन्निपात था। अन्त में उसका दम टूटा। उसने आकाश की ओर टकटकी लगाए हुए टूटे-फूटे शब्दों में कहा—"हे ईश्वर, मेरा पाप क्षमा कर। एवमस्तु। मैं आता हूँ।"

मृत्यु के समय उसकी आयु ६३ वर्ष की थी। उसने अपने अन्तिम दस वर्षों में २४ युद्ध स्वयं अपने सेनापतित्व में तथा ५–६ दूसरों की आधीनता में कराए। तथा कुल १ लाख १४ हज़ार स्त्री-पुरुषों को मुसलमान बनाया। मृत्यु के समय उसके सम्बन्धियों में ४ पुत्रियाँ, ४ पुत्र, ८ बाँदियाँ, १८ स्त्रियाँ, २ दाइयाँ, ५ भाई, २ बहिन, ६ फूफियाँ, १२ चचा, ४० लेखक, ५८ दास, १६ सेविकाएँ, २७ सेवक, ८ द्वारपाल, ८ वकील, १५ बाँगी, ४ कविता करने वाली स्त्रियाँ और १६६ कवि थे।

सम्पत्ति में—१ सिंहासन, अनेक लाठियाँ, २ पताकाएँ, ६ धनुष, ४ भाले, ३ ढालें, ३ किरीट, ७ कवच, १० तलवारें, अनेक वस्त्र, ७० भेड़ें, २१ ऊँटनियाँ, ३ गधे, ४ खच्चर, २० उम्दा घोड़े, ७ प्याले, १ सिंगार का डब्बा और १ तकिया थी।

———

(२)

ख़लीफ़ा-अबूबकर

—:*:—

मुहम्मद साहब ने मृत्यु के समय अपना कोई उत्तराधिकारी न चुना था। इस कारण उसकी मृत्यु होते ही सर्वत्र हलचल मच गई। इस पर असाम्म इब्नेज़ैद ने इस्लाम का झंडा आयशा के दर्वाज़े पर खड़ा कर दिया। और हथियार बन्द पहरेदार नियत कर दिये। अब यह विचार चला कि किसे उत्तराधिकारी चुना जाय।

अबूबकर, उमर, उस्मान, और अली ये चार आदमी गद्दी के अधिकारी समझे गये। ख़ानदान और योग्यता को दृष्टि से अली का हक़ था पर कुछ लोग अबूबकर को कुछ उमर को और कुछ उस्मान को चुनना चाहते थे। इसके निर्णय के लिये पंचायत बुलाई गई। उसने यह निर्णय किया कि ख़लीफ़ा मक़्ता के कुरेशों में से बनाया जाय और मन्त्री अन्सारी बनाये जाया करें। इस निश्चय के अनुसार अबू अबीदा और उमर में से कोई भी ख़लीफ़ा हो सकता था। पर जब इसपर झगड़े होने लगे तो उमर ने आगे बढ़कर अबूबकर को सलाम किया और उनका हाथ चूम कर कहा आप हम सबसे बड़े, योग्य व बुद्धिमान् हैं इसलिये आपके रहते कोई आदमी ख़लीफ़ा नहीं बनाया जा सकता। इस प्रकार अबूबकर प्रथम ख़लीफ़ा चुना गया

मृत्यु के समय मुहम्मद साहब का बिचार सीरिया और फारस के विजय का था और वे इसकी तैयारी कर चुके थे। अबूबकर ने ख़लीफ़ा होते ही ये आज्ञायें प्रकाशित कीं:—

"अत्यन्त कृपालु ईश्वर के नाम से प्रारम्भ करता हूँ। अबूबकर शेख सब मुसलमानों को तन्दुरुस्ती और ख़ुशी की दुआ देता है! ईश्वर तुम पर दया करे और तुम्हें आनन्द में रक्खे। मैं ईश्वर की प्रशंसा करता हूँ। इस राजाज्ञा द्वारा तुमको सूचना दी जाती है कि, मैं सच्चे मुसलमानों को सीरिया देश भेजना चाहता हूँ कि वे जाकर उसे काफ़िरों के हाथ से छीन लें, और मैं जताना चाहता हूँ कि धर्म के वास्ते लड़ना मानो ईश्वरीय आज्ञा मानना है।"

इसके बाद ही सेनापति यजीद इब्ने अबिसफ़ायाम ने शाम देश को घेर लिया। युद्ध हुआ। बादशाह की सेना हार गई उसके सेनापति तथा १२ हज़ार सैनिक काम आए। और लूट का बहुतसा माल मुसलमानों के हाथ लगा। जो ख़लीफ़ा के पास भेज दिया गया।

सेनापति ख़लीद इब्न ने सीरिया को फ़तह किया। मूर्ति-पूजकों के प्रति अति उग्र क्रोध उसके मन में था। वह कहा करता था "मैं उन ईश्वर-निन्दक मूर्त्ति-पूजकों की खोपड़ी चीर डालूंगा। जो ऐसा कहते हैं कि अत्यन्त पवित्र सर्व-शक्तिमान् ईश्वर ने पुत्र उत्पन्न किया है।"

उसने १० हज़ार योद्धाओं को साथ लेकर 'हीरा' नगर पर आक्रमण किया और वहाँ के ईसाई बादशाह को मार गिराया। बादशाह के मरने पर नगर-वासियों ने ७० हज़ार मुहरें वार्षिक कर मुसलमानों को देना स्वीकार किया। इस नगर पर अधिकार कर, उसने फ़िरात नदी पर छावनी डाली और ईरान के बादशाह को लिखा कि या तो मुहम्मदी कल्मा पढ़ो या 'जज़िया' दो। परन्तु सेनापति यज़ीद ने उसे तत्काल बसरे की चढ़ाई में योग देने को बुला भेजा। क्यों कि शाम देश का बादशाह हरक्यूलस ने मुक़ाबिले के लिए भारी सेना का संग्रह किया था। यह फ़ौरन १,४००० चुने हुए सवार लेकर पहुँचा, उधर ख़लीफ़ा ने कई हज़ार योद्धा और भेज दिये, बसरे पर धावा बोल दिया गया।

बसरा उन दिनों रोम साम्राज्य का एक भारी दुर्ग था। इसी नगर के सामने मुसलमानी सेना ने छावनी डाली। क़िला बहुत ही मज़बूत था

और रक्षक सेना भी बलवान थी। पर उसका अध्यक्ष रोमेनस विश्वासघात करके मुसलमानों से मिल गया और क़िले का फाटक खोल दिया। एक व्याख्यान में अपने भाइयों से कहा:—

"मैं तुम्हारा साथ छोड़ता हूँ। इस लोक के लिये और परलोक के लिए भी। मैं उसको नहीं मानता, जो सूली पर चढ़ाया गया था और उनको भी नहीं मानता जो उसको पूजते हैं। मैं ईश्वर को अपना मालिक बनाता हूँ और इस्लाम को अपना धर्म, मक्का को अपना धर्म-मन्दिर, मुसलमानों को अपना भाई और मुहम्मद को पैग़म्बर मानता हूँ।"

यह रोमेनस उन हज़ारों विश्वासघातियों में से एक था, जिन्होंने फ़ारिस की विजयों में अपना धर्म खो दिया था।

बसरा से सीरिया की राजधानी दमिश्क ७० मील थी। यह शहर बड़ा धनाढ्य, बड़ा गुलज़ार और व्यापार का केन्द्र था। यहाँ का रेशम और गुलाब का इत्र दुनिया भर में प्रसिद्ध था। ख़लीद अपने १,५०० सवारों को लेकर दमिश्क की तरफ़ चला। उसने शरजील तथा अबू अबीदा को, जिन्हें वह फ़रात नदी के निकट छोड़ आया था, चुपचाप लिखा कि वे तत्काल अपनी पूरी फ़ौज़ लेकर दमिश्क को घेर लें। उन्होंने ३,७०० फ़ौज़ लेकर कूच किया और नगर को घेर लिया। उन्होंने नगरवासियों को सूचना दी कि तत्काल मुसलमान हो जाओ या धन दण्ड दो; अन्यथा युद्ध करो। बादशाह हरक्यूलस वहाँ से १५० मील दूर एण्टीऑक के महल में था। उसने ख़लीद के १,५०० सवारों का आक्रमण समझ कर ५ हज़ार सेना भेज दी। उसका सरदार जनरल केलूस था। उसका नगर के शासक अज़राईल से मतभेद था। जब उसने ४० हज़ार सेना के प्रचण्ड बल को देखा, तो वह भयभीत हो गया और विश्वासघात करके ख़लीद से कहला भेजा कि अज़राईल को मारते ही नगर पर क़ब्ज़ा हो जायगा। अज़राईल यद्यपि वृद्ध था, पर मैदान में डट गया और वीरता से लड़ा। पर ख़लीद ने दोनों को पकड़ कर क़ैद कर लिया और मुसलमान होने को कहा। अन्त में इन्कार करने पर उन्हें क़त्ल कर दिया।

इस घटना से नगर में हल चल मच गई। नगर के फाटक बन्द कर लिये गये। बादशाह ने ख़बर पाकर एक लाख सेना भेजी। परन्तु ख़लीद ने मार्ग ही में छल–बल से उसे छिन्न-भिन्न करके परास्त कर दिया और सारी युद्ध-सामग्री छीन ली। इस सेना के दो ईसाई नायक पीटर और पॉल वीरता से लड़े और बहुत से मुहम्मदी सैनिकों को काट डाला। पीछे पॉल गिरफ्तार कर लिया गया और पीटर भाले से छेद कर मार डाला गया। पॉल से मुसलमान होने को कहा गया तो उसने कहा कि मैं "लुटेरों और खूनियों के धर्म को स्वीकार न करूंगा।" इस पर इसका सिर काट लिया गया।

बादशाह ने फिर ७० हज़ार फ़ौज भेजी, जो जनरल वार्डन की अधीनता में थी। पर ये सब नए रंगरूट थे। जनरल वार्डन ने ख़लीद के मारने का एक षड्यन्त्र रचा और एक पादरी को सन्धि चर्चा के लिये भेजा। पादरी ने भण्डाफोड़ कर दिया कि अमुक स्थान पर १० सिपाही तुम्हारे बध के लिये खड़े रहेंगे, और जो दरबान के भेष में होंगे। ख़लीद ने कौशल से दसों सिपाहियों को रात ही में चुपचाप मरवा डाला और बेधड़क सन्धि स्थल पर पहुँच गया। वार्डन को कुछ पता न लगा। उसके निकट आकर ख़लीद ने वार्डन की गर्दन पकड़ ली और उसी समय उसका सिर काट कर उसकी सेना में फेंक दिया। यह देख कर ईसाई लोग भयभीत हो गए। इसी बीच में मुसलमान सेना ने धावा बोलकर सारी सेना को तहस-नहस कर दिया और उनका सर्वस्व लूट लिया। इस लूट में बेतोल धन मिला और उसके लालच से असंख्य अरबों ने युद्ध में सम्मिलित होने की तैयारी की।

इसके बाद दमिश्क-वासी टॉमस को सेनापति बनाकर लड़ने लगे। वह बड़ा भारी तीरन्दाज था। वीर भी था। खूब लड़ा। अब्बास इब्नेज़ैद उसके तीर से मारा गया। इस पर अब्बास की स्त्री ने मैदान में आकर टॉमस की आँख अपने तीर से फोड़ दी। फिर भी वह लड़ता रहा और ७० दिन तक दमिश्क पर कब्ज़ा न होने दिया।

अन्त में ७० दिन के बाद उसकी इच्छा के विपरीत नगर के १८० प्रतिष्ठित आदमियों और पादरियों ने ख़लीद से सन्धि कर ली और नगर मुसलमानों को सौंप दिया। यह भी निश्चय हो गया कि जो नागरिक बाहर जाना चाहें, मय अपने सामान के जा सकते हैं, परन्तु जो रहेंगे उन्हें जज़िया देना होगा और इसाइयों की पूजा के लिये ७ गिरजे न गिराये जावेंगे। एक पादरी ने विश्वासघात करके १८० मुसलमानों को गुप्त मार्ग से नगर में बुला लिया। इन्होंने फाटक खोल दिए। सारी सेना नगर में घुस आई और क़त्ले आम मच गया। अन्त में ख़लीद ने अपना कालेगिद्ध का झण्डा दमिश्क के क़िले पर फहरा दिया।

जिन लोगों ने इस्लाम धर्म न स्वीकार किया था, वे नगर छोड़कर बाहर चले गये। टॉमस उनके साथ था। ख़लीद ने ४ हजार सवार उनके पीछे लगा दिये और जब ये बेचारे आफ़त के मारे एक नदी के किनारे विश्राम कर रहे थे, स्त्रियाँ भोजन बना रही थीं, बच्चे खेल रहे थे, इन पर वे सैनिक टूट पड़े और उन्हें लूट कर क़त्ल कर डाला। इनमें से सिर्फ़ १ आदमी बचकर भाग सका। बादशाह की पुत्री भी इसी झुन्ड में थी, उसे ख़लीद ने यह कह कर छोड़ दिया कि जा और अपने बाप से कह कि मुसलमानी धर्म ग्रहण करे, वरना मैं शीघ्र ही उसका सिर उतारने आता हूँ।

इस तमाम लूट का पाँचवाँ भाग ख़लीफ़ा के पास भेजकर शेष उसने आपस में बाँट लिया। परन्तु माल पहुँचने के पूर्व ही ख़लीफ़ा की मृत्यु हो गई।

कुछ लोगों का कथन है कि, उसे बिष दिया गया। उसने अपना उत्तराधिकारी उमर इब्नेख़त्ताब को नियत किया। और ६३ वर्ष की आयु में वह मरा।

———

(३)

ख़लीफ़ा—उमर

—:❀:—

इसके बाद उमर इब्ने ख़त्ताब ख़लीफ़ा हुआ इस समय इसकी आयु ५३ वर्ष की थी। यह वही व्यक्ति था, जो २५ वर्ष की आयु में मुहम्मद साहब का सिर काटने को घर से निकला था। परन्तु अपनी बहिन के समझाने से कट्टर मुसलमान बन गया था। वह दाहिने हाथ से जितना काम कर सकता था, उतनाही बाएं से भी कर सकता था। धार्मिक तर्कों का उत्तर वह तलवार की धार से देता था और तर्क करने वाले का उसी दम सिर काट डालता था। उसका डील डौल भारी था। वह बैठा हुआ भी खड़े पुरुष की बराबर माप का था। शरीर काला, आंखे लाल, और सिर बिल्कुल सफाचट। सदैव एक चमड़े का चाबुक हाथ में रखता था और बदमाशों तथा मुहम्मद के निन्दक कवियों को उससे पिटवाता था। उसने ख़लीफ़ा होने पर अपना नाम अमीरुल मौमनीन रक्खा, आगे चल कर पदवी के तौर पर यह नाम सभी ख़लीफ़ाओं के नामों के साथ जोड़ा जाने लगा।

इतना होने पर भी वह लूट-मार और ज़ुल्म को नापसन्द करता था। उसने ख़लीद के अत्याचारों की अति निन्दा की, और उसे मुख्य सेनापति के पद से हटाकर उसकी जगह अबू अबीदा को मुख्य सेनापति बनाने का हुक्म भेज दिया। अबू अबीदा ने, जो ख़लीद के आधीन अफ़सर था, यह पत्र छिपा लिया। दुबारा हुक्म आने पर वह मुख्य सेनापति बना तथा ख़लीद उसके आधीन होकर काम करने लगा।

अब उसकी सेना जारडन नदी के पूर्व की ओर बढ़ी और यह बात स्पष्ट थी कि एशिया माइनर पर हाथ लगाने से पहिले पैलेस्टाइन के मज़बूत और बड़े-बड़े नगर विजय कर लिये जाएँ। पहिले जेरोसलीम पर धावा बोला गया। वहाँ के निवासियों ने ख़ूब तैयारी की थी। पर चार महीने के घेरे के बाद नगर के मुखिया ने कोट की दीवार पर खड़े होकर आत्म-समर्पण की शर्तें पूछीं। उसने सब शर्तें स्वीकार कर के एक यह शर्त्त पेश की कि, आत्मसमर्पण ख़ुद ख़लीफ़ा के हाथ में होगा।

ख़लीफ़ा उमर इस काम के लिये मदीने से चला। उसने एक गठरी नाज, एक गठरी छुआरे, एक कठौती और एक मशक पानी, एक लाल ऊंट पर लाद कर यह यात्रा की। इस विजेता ने एक ईसाई मुखिया के साथ उस पवित्र नगर में प्रवेश किया और बिना रक्तपात के वह नगर मुसलमानी धर्म का प्रतिनिधि नगर हो गया। सुलेमान के मन्दिर के स्थान पर एक मसजिद बनवाने की आज्ञा देकर ख़लीफ़ा मदीने को लौट गया। दमिश्क से अबू अबीदा मुस्लिम सेना की कमान लेकर लिपैनस की बर्फ़ीली चोटियों को पार कर उरेन्टाज़ नदी के किनारे उत्तर की ओर बढ़ा। ख़लीद को अग्र भाग का सेनापति बनादिया गया। रास्ते में जायशा के हाकिम ने ४०० मोहर और बहुत से रेशमी थान देकर सन्धि कर ली। फिर उसने सीकिया की घाटी की राजधानी बालबक और मुख्य नगर एमीसा को घेर लिया। एमीसा का हाकिम तभी मरा था, अतः नागरिकों ने १० हज़ार मोहर और २०० रेशमी थान दे कर अपना पिण्ड छुड़ाया। बालबक में सुलेमान का बनवाया सूर्य का एक बहुत सुन्दर मन्दिर था, उसे तोड़ दिया गया और और नगर पर अधिकार कर लिया गया।

बालबक और एमीसा के निकल जाने से क्षुब्ध होकर बादशाह हरक्यूलस ने १ लाख ४० हज़ार सेना मेनुअल की अधीनता में भेजी। वहाँ थोड़ा युद्ध हुआ और मुसलमानी सेना का दक्षिण भाग टूट गया। पर सैनिकगण अपनी स्त्रियों के धर्मोन्मत्त धिक्कारों से फिर रण-भूमि को लौट

चले। इधर एक ईसाई देशद्रोही मेनुअल को एक ऐसे स्थान पर ले गया, जहाँ कई मुसलमान ताक लगाए छिपे बैठे थे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने मेनुअल को मार डाला। सेनापति के मरते ही सेना के पैर उखड़ गये और वह भाग खड़ी हुई। बहुत सी सेना नदी में डूब गई और कुछ जङ्गल में भटक गई। रोमन सेना पूर्ण रीति से पराजित हुई। ४० हज़ार मनुष्य क़ैद किए गए और बहुत से मार डाले गए। इसके बाद सारा देश विजयिनी मुसलमान सेना के आधीन हो गया। ईसाइयों को इन शर्तों पर रहने दिया गया:—

१—ईसाई नये गिरजे न बनवावें।

२—गिरजों के दरवाज़े रात-दिन मुसलमानों के लिए खुले रहा करें।

३—गिरजों पर घण्टे न बजाए जावें।

४—सलीब न गिरजों पर लगाई जाय, न बाज़ार में दिखाई जाय।

५—अपने बच्चों को कुरान न पढ़ावें।

६—अपने धर्म का प्रचार न करें।

७—अपने किसी भाई को मुसलमान होने से न रोकें।

८—मुसलमानों के समान कपड़े, जूते और पगड़ी न पहनें।

९—कमर में पटका बाँधा करें।

१०—अरबी भाषा न बोलें।

११—मुसलमानों के आने पर खड़े हो जायँ और जब तक बैठने की आज्ञा न मिले, खड़े रहें।

१२—तीन दिन तक मुसलमान मुसाफ़िर को अपने घर में रक्खें।

१३—शराब न बेचें।

१४—घोड़े पर काठी न कसें।

१५—शस्त्र न धारण करें।

१६—किसी आदमी को, जो मुसलमान के यहाँ नौकर रह चुका हो, नौकर न रक्खें।

इसके बाद अबूअबीदा ने हलब पर धावा बोल दिया। रास्ते में अरस्ता का क़िला पड़ता था, उसके सरदार ने मुसलमान बनने या कर देने से साफ़ इन्कार कर दिया; इसलिए उस से सुलह करके २० सन्दूक बतौर अमानत के वहां रख दिये गये। उन में सशस्त्र योद्धा थे। उन्होंने समय पाकर क़िले का फाटक खोल दिया और उस पर अधिकार जमालिया।

हलब का क़िला सीरिया भर में सब से मज़बूत था। यहाँ धन और व्यापार की भी प्रचुरता थी। ४ मास तक क़िले पर घेरा रहा। अन्त में एक ईसाई के विश्वासघात से मुसलमान क़िले में घुस गए, और बहुत से आदमियों को काट डाला। बाक़ी लोगों ने डर कर कल्मा पढ़ लिया। क़िले के अधिपति का लड़का युकला भी कल्मा पढ़ कर अब्दुल्ला हो गया। उसने अपने चचा के बेटे थ्योडस को भी अपना साथी बनाना चाहा, जो एजाज़ के क़िले का स्वामी था। अब्दुल्ला सौ मुसलमानों को लेकर वहाँ पहुँचा। पर थ्योडस सावधान होगया था। उसने इन सब को कैद कर लिया। परन्तु थ्योडस का बेटा युकला की लड़की पर मोहित था। उसने कहा कि यदि आप अपनी लड़की की शादी मेरे साथ कर दें तो मैं आपको साथियों सहित छुड़ा दूँ और स्वयं भी मुसलमान हो जाऊं। युकला ने यह बात स्वीकार कर ली। अतः उस पितृ-द्रोही ने उन्हें छुड़ा कर हथियार भी दे दिये। क़िला अन्त में मुसलमानों के हाथ आगया और थ्योडस के पुत्र ने अपने पिता को भी क़त्ल कर दिया।

अब सीरिया की राजधानी अन्ताकिया पर धावा बोलने का निश्चय हुआ और इस के लिये जाल यह रचा गया कि युकला अपने १०० साथियों समेत ईसाइयों के भेष में अन्ताकिया जा पहुँचा और बादशाह हरक्यूलस से कहा कि मुसलमानों ने मुझे लूट लिया है। मैं जान बचा कर आपकी शरण आया हूँ। बादशाह ने कहा—"तुम तो मुसलमान हो गए थे?"। उसने कहा—"यह सब जान बचाने के लिये झूठ-मूठ किया था"। बादशाह ने उस पर विश्वास कर १०० साथियों समेत उसे अपने पास रख लिया और अन्त में अपना मन्त्री बना लिया। इस के बाद कुछ और

मुसलमान क़ैद करके क़िले में लाए गए। इस प्रकार जब काफ़ी मुसलमान क़िले में होगये, तब अबू अबीदा ने हमला बोल दिया। बादशाह युकला की सम्मति से काम करता रहा। अन्त में, अवसर पाकर उस के साथियों ने फाटक खोल दिया। मुसलमान 'अल्लाहो अकबर' का नारा लगाते भीतर घुस आये। बादशाह सिर धुनता जहाज़ पर सवार हो, क़ुस्तुन्तुनिया भाग गया।

अब योहला ईसाई-वेश में साथियों समेत त्रिपुली जा पहुँचा। वहाँ के लोग उसने मुसलमान बनने और छल-कपट की बात नहीं जानते थे। उन्होंने इसे बादशाह का सेनापति समझ कर बड़ा सत्कार किया। अवसर पाकर उसने फाटक खोल कर तथा मुसलमानों को बुला कर क़िला फ़तह करा लिया। इसी प्रकार धोखे से उसने बाहर को भी फ़तह कराया।

इसी बीच में देश में भयानक महामारी फैली और उसमें देश भर तबाह होगया। सेनापति अबू अबीदा, इसके बड़े २ योद्धा तथा २५ हज़ार सैनिक मर गये।

ख़लीद ने एक कवि को अपनी प्रशंसा करने के उपलक्ष में ३० हज़ार रुपए इनाम दे डाले थे। इस क़ुसूर में उसे ख़लीफ़ा ने उसी की पगड़ी से बाँध कर अपने सामने बुलवाया और उसे पद-भ्रष्ट करके अपने घर चले जाने का हुक्म दिया। मरते वक्त उसके घर में सिर्फ़ एक घोड़ा और कुछ शस्त्र निकले थे।

इस प्रकार मुसलमानों ने निर्भय होकर सारे एशिया-माइनर को रौंद डाला। वह सीरिया देश, जिसे सीज़र के समतुल्य महान् पाम्पी ने ७०० वर्ष पहले रोमन राज्य में मिलाया था; वह सीरिया, जो ईसाइयों का परम पवित्र स्थान था और जहाँ से सम्राट हरक्यूलस ने एक बार फ़ारिस के आक्रमणकारी को परास्त किया था, मुसलमानों के हाथ आ गया। सम्राट् हरक्यूलस जब क़ुस्तुन्तुनिया को भाग रहा था तब जहाज पर बैठ उसने बड़े कष्ट से अदृष्ट होते हुए पहाड़ों पर उदास दृष्टि डाली और कहा—
"सीरिया, मेरा प्रणाम ले, और यह प्रणाम सदैव के लिए है।"

इसके बाद टिपोली, टायर और कैसरिया ले लिए गए। लेबेनन पहाड़ की लकड़ी और फुनेशिया के मल्लाहों से एक ज़बर्दस्त बेड़ा तैयार किया गया, जिसने रोम के प्रतापी बेड़े को हेलेस-पाण्ट में भगा दिया। साइप्रस, रोडस और साईक्लेडोज़ तबाह कर डाले गए। और वह पीतल की बड़ी मूर्त्ति, जो संसार के सात आश्चर्यों में गिनी जाती थी, एक यहूदी को बेच दी गई, जिसने उसका पीतल ६०० ऊँटों पर लादा था। अब ख़लीफ़ा की सेनाएँ कृष्ण-समुद्र तक बढ़ गई और क़ुस्तुन्तुनिया के मुक़ाबले में जा डटी।

इन विजयों ने मुसलमानों के राज्य को सिकन्दर और रोम के साम्राज्य से भी बड़ा बना दिया। टेसीफोन के घेरे जाने पर ख़ज़ाना सिलहख़ाना और बहुत सा लूट का माल मुसलमानों के हाथ लगा और यही कारण है कि निहावन्द की विजय को वे लोग सब विजयों की विजय कहते हैं। एक ओर तो वे कैस्पियन सागर तक बढ़े और दूसरी ओर हिक्कारिस नदी के किनारे २ परसी पोलीस तक दक्षिण की ओर फैले। केडॉम्पिया की लड़ाई में फ़ारिस के भाग्य का भी निबटारा हो गया। फ़ारिस-नरेश उस नगर के स्तूपों और मूर्त्तियों को छोड़ कर, जो सिकन्दर के बड़े भोज की रात्रि से अब तक उजड़ पड़ा था, अपने प्राण बचाने को बसरे के रेगिस्तानों में भाग गया। अन्त में अक्सस नदी के किनारे वह पकड़ कर मार डाला गया। उस नदी के पार का देश भी अधीन कर लिया गया और उस देश से कर-स्वरूप वार्षिक दो लाख अशर्फ़ियाँ बहुत दिनों तक मिलती रहीं। चीन के सम्राट् ने मुसलमानों की मित्रता की और फल-स्वरूप सिंध नदी के किनारे तक इस्लामी झण्डा फहराने लगा।

जिन सेना पतियों ने सीरिया-विजय में नाम पाया था, उनमें अमर, इब्ने आस नाम का एक जनरल था, जिसके भाग्य में मिश्र का विजता होना लिखा था। वह पूर्व की विजयों से सन्तुष्ट न होकर पश्चिम को मुड़ा। उसके साथ ५ हज़ार सवारों का जत्था था। उसकी दृष्टि अफ्रीका महाद्वीप पर थी। मिश्र उसका द्वार था। उसने मिश्र में पहुँचते ही वहाँ के ईसाइयों ने कहलाया कि हम यूनानियों के साथ इस लोक तथा परलोक का कोई

सम्बन्ध रखना नहीं चाहते और सदैव के लिए रोम के अत्याचारी और उसकी कैल्सीडोन की सभा को सौगन्ध खाकर त्यागते हैं। उन्होंने ख़लीफ़ा को सड़कें और पुल बनवाने के लिए तथा सेना की रसद और ख़बरें पहुँचाने लिए शीघ्र हो कर देना स्वीकार कर लिया।

मेम्फ़िस नगर, जो प्राचीन फ़िरऊन के समय में राजनगरों में था, विश्वास घातियों की सहायता से शीघ्र जीत लिया गया, और सिकन्दरिया भी घेर लिया गया। बहुत से आक्रमण और धावे हुए। अन्त में २२ हज़ार सैनिकों के कट जाने पर १४ महीने के घेरे के बाद उस नगर का पतन हुआ। अमरू ने ख़लीफ़ा को इस बड़े नगर के विषय में लिखा था—"इसमें ४ हज़ार महल, ४ हज़ार स्नानागार, ४ सौ नाट्यशालाएं, १२ हज़ार दुकानें केवल तरकारियों-भाज़ियों की और ४० हज़ार यहूदी साहूकार राज्य कर देने वाले हैं।"

हरक्यूलस ने अपने क़ुस्तुन्तुनिया के राजमहल में यह दुखदायक ख़बर सुनी तो इतना मर्माहत हुआ कि सिकन्दरिया के पतन के एक मास बाद ही मर गया।

इसी सिकन्दरिया में वह जगत्विख्यात पुस्तकालय था जिसमें पृथ्वी भर के विद्वानों की हस्तलिखित १० लाख पुस्तकें थीं। जब उमर ने ख़लीफ़ा से पूछा कि इन पुस्तकों को क्या किया जाय, तो तब ख़लीफ़ा ने लिखा कि यदि उनका विषय क़ुरान के अनुकूल न हो तो उन्हें रखने की कोई आवश्यकता नहीं। अतएव उन्हें नष्ट कर दिया जाय। अमरू ने उन्हें ईंधन के तौर पर जलाने के लिये हम्मामों में बाँट दिया और उनसे ६ मास तक ४ हज़ार हम्माम गर्म होते रहे।

मिश्र देश रोम-राज्य का अन्न-भंडार था, इसी कारण इसे लौटा लेने की बड़ी-बड़ी कोशिशें की गईं। अमरू को दो बार फिर चढ़ाई करनी पड़ी। उसने जान लिया कि समुद्र की ओर से खुला रहने से उसपर बड़ी सुगमता से आक्रमण किये जा सकते हैं। उसने कहा—"ख़लीफ़ा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यदि तीसरी बार आक्रमण किया जाय तो मैं सिक-

न्दरिया को ऐसा बना दूँगा कि वह प्रत्येक मनुष्य के लिये वेश्या के घर के समान हो जाएगी।" उसने अपने कथन से बढ़कर काम कर दिखाया और शहरपनाह ढहवा दी। इससे यह नगर बिल्कुल उजाड़ हो गया।

वह बीस वर्ष बाद अक़बानील नदी से एटलांटिक समुद्र तक बढ़ आया और अपने घोड़े को सागर-जल में हिलाकर ज़ोर से कहा कि—"हे सर्वोपरि ईश्वर, यदि यह समुद्र मेरा रास्ता न रोकता तो मैं पश्चिम के अज्ञात राज्यों में चला जाता और तेरे पवित्र नाम तथा अद्वैतता का उपदेश देता, और उन विद्रोही जातियों को, जो तेरे सिवा अन्य देवताओं को पूजती हैं, तलवार के हवाले करता।"

अब साद के पास ६० हज़ार सवार थे। वह उन्हें लेकर मदाइन राजधानी की ओर बढ़ा। बादशाह यज़्दगुर्द घबरा गया। सरदारों में फूट पड़ गई। वह अपने रत्न और परिवार सहित वहाँ से भागकर हल्दान पहुँचा। राजधानी में मुसलमान घुस पड़े और उसे लूट-खसोट कर तहस-नहस कर डाला।

जलूला नगर में फिर बादशाह की सेना से मुठभेड़ हुई। यह लड़ाई ६ मास चली। अन्त में जलूला और हल्दान मुसलमानों के हाथ में आ गए और बादशाह रै नगर को भाग गया।

इसी बीच में साद से नाराज़ होकर ख़लीफ़ा ने उसे पदच्युत कर दिया और उसका घर फूँक दिया। इस बीच में अवकाश पाकर ईरान के बादशाह ने डेढ़ लाख सेना फिर एकत्रित की। उधर नेमान की अधीनता में एक विशाल मुसलमानी सेना ने आकर नेहावन्द को घेरा। पारसी सेनापति बूढ़ा और कमज़ोर था, फिर भी उसने नेमान को मार डाला। पर उसके मरने पर हफ़ीज़ सेनापति बना और उसने सेनापति फ़ीरोज़ को मार डाला पारसी सेना भाग गई। इस युद्ध में १ लाख पारसी मारे गए। और लूट में बादशाह यज़्दगुर्द का एक जवाहरात से भरा हुआ डिब्बा मिला, जो ख़लीफ़ा के पास भेज दिया गया। उसे उसने यह कहकर लौटा दिया कि ये कङ्कड़-पत्थर हमारे काम के नहीं, इन्हें बेचकर मुसलमानों को बाँट दो।

इफ़ीज़ ने उन्हें तीन अरब, २० करोड़ रुपयों में बेंचा। उसके पास उस समय ४ हज़ार सिपाही थे, अतः प्रत्येक को ८०-८० हज़ार रुपये मिले। इसके बाद हमदान और रै को दख़ल करके लूट लिया गया और ख़ून की नदी बहा दी। फिर वे आज़ुरबाद जा पहुँचे और यहाँ का प्रसिद्ध मन्दिर ढा दिया। बादशाह की तीन बेटियाँ गिरफ़्तार करके ख़लीफ़ा के पास भेज दी गईं। जब वे ख़लीफ़ा के सामने पहुँची तो उसने एक मुसलमान को हुक्म दिया कि इनके ज़ेवर उतार लो। इसपर उन्होंने डाँटकर कहा—"ख़बरदार! हाथ न लगाना, ज़ेवर हम उतारे देती हैं।" यह सुनकर ख़लीफ़ा की आँखों में ख़ून उतर आया और उसने उन्हें नंगी करके कोड़े मारने का हुक्म दिया। पीछे अली ने ख़लीफ़ा को समझाकर ठण्डा किया और उन अबलाओं की जान बचाई। इनमें से एक लड़की से अली ने अपने बेटे हसन के साथ विवाह किया, दूसरी बेटी अब्दुल रहमान इब्ने अबूबकर को और तीसरी अब्दुल्ला इब्ने उमर को दे दी गई।

ईरान मसीह के जन्म से कोई ४०० वर्ष पूर्व बड़ा शक्तिशाली राज्य था। इसकी सीमा पश्चिम में यूनान और पूर्व में हिन्दुस्तान तक फैली हुई थी। विश्व-विजयी सिकन्दर ने इस देश को मसीह से ३२८ वर्ष पूर्व छिन्न-भिन्न कर डाला था। रोमन्स ने भी इसकी शक्ति को क्षीण कर दिया था।

मुहम्मद साहब ने अपने जीवन-काल में ईरान के बादशाह ख़ुशरू से कहलाया था कि हमारा धर्म ग्रहण कर लो। इसपर उसने हुरमुज़ के अपने हाकिम को कहला भेजा था कि या तो मुहम्मद को क़त्ल कर दो या क़ैद कर लो, वह पागल है। मुहम्मद की मृत्यु के बाद ख़लीफ़ा अबूबकर ने ख़ालीद इब्नेवली को ईरान पर चढ़ाई करने को तैयार किया, पर फिर उसे सीरिया भेज दिया। अब उमर ने अबू अबीदा को एक हज़ार सवार देकर ईरान भेजा। उस वक़्त वहाँ की गद्दी पर ख़ुशरू की दूसरी बेटी आरज़म दुख़्त थी। मुसलमानी सेना ने पहुँचते ही लूट मार मचा दी। रानी ने १० हज़ार सवार रुस्तम इब्न फ़रुख़ज़ाद के साथ भेज दिए। पीछे से वह मक-सहदेव के साथ तीन हज़ार सवार और १० जंगी हाथी रुस्तम की मदद को

भेजे। जब अबू अबीदा अपनी सेना सहित फ़रात नदी पर पुल बाँधकर पार हो रहा था, रुस्तम के धनुषधारियों ने बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। इससे बहुत से मुसलमान मारे गये। अबू अबीदा घोड़े से गिर गया और हाथी से कुचला जाकर मर गया। इसके बाद सेना भाग निकली।

ख़लीफ़ा उमर ने यह सुनकर फिर एक बड़ी सेना मस्ना की अधीनता में भेजी। मस्ना ने ईरानी सेनापति को द्वन्द्व युद्ध में परास्त करके मार डाला और ईरानी सेना छिन्न-भिन्न हो गई। इसके बाद साद इब्ने अवि-विकास ६ हज़ार सवारों सहित मदीने से चला। और मार्ग में ही लूट और स्त्रियों के लालच से उसके पास ३० हज़ार सवार मस्ना तक पहुँचते-पहुँचते हो गये। इसी बीच में मस्ना मर गया और उसकी पत्नी को साद ने जो ६० वर्ष का था, अपनी स्त्री बना लिया। इसके बाद रुस्तम से युद्ध हुआ, मुसलमानों को और भी सहायता मिल गई। भारी घमासान हुआ और रुस्तम का सिर काट लिया गया। ईरानियों की पराजय हुई। उनकी ३० हज़ार सेना कट गई। इस युद्ध में मुसलमान भी ७ हज़ार मारे गए। यह युद्ध क़ासदिया में हुआ था। इस विजय के उपलक्ष में फरात और दजला नदी के संगम पर बसरा नगर खलीफा उमर की आज्ञा से बसाया गया, जो एक मुसलमान को ग़ुलाम के तौर पर दिया गया था। एक दिन मज़्दगुर्द की लड़की ने खिड़की से उसे देखकर कहा—"तुम पर लानत है कि अपने मुल्क, बादशाह और धर्म के लिए कुछ नहीं कर सकते।" फिरोज़ को शाहज़ादी की बात चुभ गई। वह मौक़ा पाकर मसजिद में घुस गया। ख़लीफा गर्दन झुकाए नमाज़ पढ़ रहा था। उसने उसकी गर्दन में छुरी घुसेड़ दी। बहुत से मुसलमान दौड़ पड़े। वह ५-७ को मार कर स्वयं भी मर गया। ख़लीफा उन्हीं घावों से ७ वें दिन मर गया। मृत्यु के समय उसकी आयु ६३ वर्ष की थी। उसके समय में सीरिया, मिश्र, पैलेस्टाइन और ईरान मुसलमानों के हाथ में आए। ३१ हजार नगर और क़िले छीने गए, ४० हजार मन्दिर और गिरजे ढाए गए और कई लाख ग़ैर-मुसलिम क़त्ल किए गए।

(४)

ख़लीफ़ा उस्मान और अली

—:❀:—

उमर की मृत्यु के बाद ६ आदमियों की कमेटी ख़लीफ़ा चुनने को बैठी। अली से पूंछा गया कि क्या तुम क़ुरान व हदीस को क़ानून मान कर अबूबकर और उमर के मार्ग पर चलोगे? उसने कहा—मैं क़ुरान व हदीस को तो स्वीकार करूंगा, पर अबूबकर और उमर की पाबन्दी नहीं। मैं अपनी बुद्धि से काम लूंगा। इस पर कमेटी ने उस्मान से पूंछा। उस्मान ने स्वीकार किया।

इस लिये उस्मान इब्ने-अफ़ान ख़लीफ़ा हुए। इनकी उम्र ७० वर्ष की थी। गद्दी पर बैठते ही इन्हों ने यज़्दगुर्द को क़त्ल करने को फ़ौज ईरान भेजी। क्योंकि उमर मरती बार कह गए थे कि उसका नामोनिशान दुनिया से मिटा देना। बेचारा बादशाह इधर-उधर मारा-मारा और छिपता फिरता रहा। उसके साथियों ने उसे पकड़वा देने की सलाह की, पर उसे मालूम होगया और वह अपनी पगड़ी के सहारे मर्व के क़िले से उतर कर अंधेरी रात में भागा। रास्ते में एक नदी थी, उसे पार उतारने के लिये मल्लाह ने ४) मांगे, पर उसके पास रुपये न थे। उसने लाखों रुपये मूल्य की क़ीमती अंगूठी देनी चाही, पर मल्लाह ने न ली। इतने में मुसलमान पहुँच गए और उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला! इस प्रकार ४,००० वर्ष से चमकता हुआ पारसियों का सितारा अस्त होगया!

उस्मान ने अमर इब्ने-यास को मिश्र से बुला कर उसकी जगह अब्दुल्ला इब्ने-साद को दे दी। अब्दुल्ला सैनिक था प्रबन्धक नहीं। इससे लोग नाराज़ होगए और मिश्र में ग़दर मच गया। बादशाह कान्स्टेन्टाइन ने सिकन्दरिया को छीन लिया। मुसलमान वहां से मार भगाए गए। तब फिर उस्मान भेजा गया। इसने सिकन्दरिया को फिर छीना। पर ख़लीफ़ा ने फिर अब्दुल्ला को भेज दिया। इस बार उसने उत्तर अफ़रीक़ा पर धावा बोलने का निश्चय किया और ४० हज़ार सेना लेकर त्रिपली पर छावनी डालदी। उधर से जनरल ग्रेगरस एक लाख, बीस हज़ार रोमन्स सेना लेकर मुक़ाबले में आ डटा। कई दिनों तक घमासान युद्ध होता रहा। अन्त में एक दिन धोखे से ग्रेगरस मार डाला गया और उसकी युवती कन्या क़ैद कर ली गई। सेना भाग गई और नगर पर अधिकार कर लिया गया।

मुहम्मद साहब पढ़े लिखे न थे। वे अपनी चाँदी की मुहर वाली अंगूठी को दस्तख़त की भाँति काम में लाते थे, जिस पर 'मुहम्मद रसूल-ल्लाह खुदा था। यही अंगूठी पूर्व के दोनों ख़लीफ़ा काम में लाते रहे परन्तु इस ख़लीफ़ा ने उसे खो दी।

इस ख़लीफ़ा ने क़ुरान की प्रतियों का मुहम्मद साहब की स्त्री हफ़मा की प्रति से मुक़ाबला कराया। जिनमें पाठ भेद था उन्हें जलवा दिया और हफ़सा वाली प्रति की कई नक़लें कराकर सीरिया, मिश्र और फ़ारस आदि देशों में भेजा। वर्तमान क़ुरान यही है।

फिर यह उसी मेम्बर की सीढ़ी पर खड़े होकर वाज़ करते थे जिसपर मुहम्मद साहब। इस ख़लीफ़ा ने लाखों रुपए अपने सम्बन्धियों को और मुन्शी मरवान को बांट दिये थे, इससे मुसलमान इससे बहुत नाराज़ होगए। इनके छल-कपट के भी कुछ भेद खुले। इस पर बहुत से मुसलमान मदीने में आगए उसे तोबा करने को कहा—पर उसने ऐसा नहीं किया। मिश्र के कुछ नागरिकों ने शिकायत की कि अब्दुल्ला को वहां का हाकिम न रख कर मुहम्मद बिन अबूबकर को बनादें। इस पर उस ने ऐसा ही किया-पर

एक दूत चुपचाप अब्दुल्ला के पास भेज कर कहला दिया कि मुहम्मद को मार डालो। इससे क्रुद्ध होकर मिश्र वाले मदीने पहुँचे और कैफ़ियत तलब की तथा गद्दी छोड़ने को कहा—उसने इन्कार किया। इस पर लोगों ने उसके घर में घुस कर उसे क़त्ल कर दिया। मृत्यु के समय वह ८२ वर्ष का था। उसकी लाश तीन दिन तक वैसे ही पड़ी रही और जब सड़ने लगी तब बिना नहलाए और नए कपड़े पहिनाए वैसे ही गाड़ दी गई।

इसके बाद अली इब्ने-अबूतालिब ख़लीफ़ा हुआ। यह व्यक्ति दयालु, न्याय प्रिय और शान्त था। परन्तु ख़लीफ़ा पद के लिए कठोर स्वभाव पुरुष की आवश्यकता थी, इस लिए अली के ख़लीफ़ा होते ही भीतरी विद्रोह फूट पड़ा। मुहम्मद साहब की प्यारी विधवा आयशा इसकी शत्रु थी। उधर तलहा, जबीर और मुआविया भी ख़िलाफ़त के उम्मीद-वार थे। इन लोगों ने प्रसिद्ध कर दिया कि उस्मान के वध में अली का षड़यन्त्र था। इससे लोग भड़क गए। मुआविया ने दमिश्क की मस्जिद में उस्मान का खून में रंगा हुआ कुरता बाँस पर लटका कर खड़ा कर दिया, जिसे देखते ही सीरिया के लोग आपे से बाहर होगए। मुआविया ने ६ हज़ार सेना देखते-देखते एकत्र करली। उधर अली का दल भी काफ़ी था। आयशा ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि मैं खुदा और रसूल के नाम पर तलहा और ज़बीर के साथ बसरा जाती हूँ। जो मुसलमान मेरा साथ देना चाहें और उस्मान के खून का बदला लेना चाहें, वे मेरे पास चले आवें। मैं खाना, कपड़ा, घोड़ा और हथियार दूंगी। उसके साथ हज़ारों आदमी होगए। पर जब वह बसरे पहुँची तो वहाँ के हाकिम उस्मान ने फाटक न खोला और उल्टे मुक़ाबिले को तैयार होगया, खूब गाली-गलोज हुई। अंत में कौशल से यह लोग शहर में घुस गए और उस्मान को कैद कर लिया। बसरा पर आयशा का अधिकार होगया। अली ने ६०० आदमी साथ लेकर बसरे पर चढ़ाई करदी। मार्ग में ३० हज़ार सेना उसे और मिल गई। युद्ध हुआ, आयशा के साथी मारे गए और वह क़ैद हुई। पर अली ने उसे आदर-पूर्वक ४० दासियों सहित मदीने भिजवा दिया।

अब अली का एक मात्र शत्रु—मुआविया बच गया था। उसने उस्मान के ख़ून में रंगा हुआ कुर्ता बाँस में लटका कर दमिश्क की मस्जिद में खड़ा किया, और ८० हज़ार सेना लिये साम की सीमा पर आ डटा। अली ने ६० हज़ार सेना लेकर उस पर धावा बोल दिया। युद्ध हुआ और ४५ हज़ार आदमी मुआविया के तथा ३० हज़ार आदमी ख़लीफ़ा के मारे गए। अन्त में सन्धि चर्चा चली। फलतः परस्पर दोनों दल गाली-गलोज करने लगे। गाली गलोज का यह रिवाज जुमे की नमाज़ के पीछे अब तक चला आता है।

अब एक तीसरा और सम्प्रदाय खड़ा हुआ, जिस का नाम खार्जी था। अब्दुल्ला इब्ने-वहब इसका ख़लीफा बना। इस दल में २५ हज़ार आदमी थे। इस पर अली ने एक झण्डा खड़ा करके घोषणा की कि जो अमुक समय तक इसके नीचे चला आयगा, क्षमा किया जावेगा। इस पर २१ हज़ार आदमी चले आए। बाक़ी चार हज़ार अब्दुल्ला के पास बच रहे। जो वीरता से लड़ कर काम आये। सिर्फ़ ९ आदमी ज़िन्दा बचे।

उधर मुआविया ने मिश्र में विद्रोह फैला दिया। अली ६० हज़ार सेना लेकर मिश्र पर चला। वे जो ९ खार्जी बचे थे, उन्हों ने निश्चय किया कि अमर, अली और मुआविया, ये ही मुस्लिम-विद्रोह की जड़ हैं, इस लिए इन तीनों को एक साथ ही क़त्ल करदेना चाहिए। तीन आदमियों ने यह काम अपने ऊपर लिया। अमर और मुआविया तो किसी भाँति बच गए, पर अली पर कोफ़ा में अब्दुलरहमान ने नमाज़ पढ़ते वक़्त वार किया, जिससे उसकी खोपड़ी फट गई और ३ दिन के बाद, ६३ वर्ष की आयु में वह मरगया। उसके १५ पुत्र और १६ पुत्रियां थीं। अली के पक्ष वाले 'शीआ' कहलाते हैं और वे इसके पूर्व के तीनों ख़लीफ़ाओं को मानने से इन्कार करते हैं। और मुहम्मदसाहब के बाद अली ही को ख़लीफ़ा मानते हैं। कहा जाता है कि अली का जन्म काबे में हुआ था।

---

(५)

तदनन्तर

इसके बाद हसन इब्ने अली खलीफा हुआ, इसकी आयु ३० वर्ष की थी और यह शान्त सुशील और साधु स्वभाव का था पर इसका छोटा भाई हुसेन वीर था उसने ६० हजार फौज लेकर मुआविया पर चढ़ाई की, पर भीतरी कलह के कारण हार गया। खिलाफत छोड़ दी, अन्त में हसन की एक स्त्री ने उसे विष देकर मार डाला। जिस यजीद ने यह प्रलोभन दिया था कि मैं तेरे साथ विवाह कर लूँगा पर पीछे उसे इसी अपराध पर क़त्ल करवा दिया।

इसके बाद मुआविया खलीफा हुआ और उसने कुस्तुन्तुनिया पर फौज भेजी पर उसकी हार हुई उसने कुस्तुन्तुनिया के ईसाई बादशाह को ३० हज़ार अशर्फी ५० दास दासियाँ और ५० अरबी घोड़े प्रति वर्ष कर देना स्वीकार किया, और ३० वर्ष के लिये सन्धि कर ली। इसके बाद उसने १० हज़ार सवार अफ्रीका पर भेजे और वहाँ जंगल कटवाकर किरवान नामक एक शहर बसाया। वह २० वर्ष तक खलीफा रहकर मरा। इसके बाद इसका बेटा यजीद ३४ वर्ष की आयु में खलीफा हुआ। मुआविया ने अपने मृत्युकाल में अपने बेटे यजीद से कहा था कि तुम्हें ४ आदमियों से भय है।

१—हुसेन इब्ने अली से। परन्तु यह न्यायी और तुम्हारे चचा का बेटा है उसके साथ अच्छा बर्ताव करना।

२—अब्दुल्ला इब्ने उमर। यह सीधे मिजाज का है तुम्हें खलीफा स्वीकार कर लेगा।

३—अब्दुल रहमान। मूर्ख और कानों का कच्चा है, जुआरी भी है। वह तेरा कुछ न बिगाड़ सकेगा।

४—अब्दुल्ला इब्ने जबीर। धूर्त और वीर है। मुकाबिले आवे तो वीरता पूर्वक लड़ना। मेल चाहे तो सन्धि कर लेना और अधिकार में लाकर क़त्ल करवा देना।

गद्दी पर बैठते ही उसने मदीने के हाकिम वलीद को लिख भेजा कि हुसेन इब्ने अली और अब्दुल्ला इब्ने ज़बीर से इक़रारनामा लेकर भेजो। वलीद ने उन दोनों को बुलाकर क़त्ल करने की सलाह की पर वे दोनों सचेत हो गये और मदीने से भाग गये और यज़ीद के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। कोफे के लोगों ने उन्हें सहायता देने का बचन दिया और १॥ लाख के लगभग मनुष्य हुसेन के साथ हो गये।

यह समाचार सुन यज़ीद ने बसरे के हाकिम को लिखा कि कोफा पहुँचकर वहाँ के हाकिम नेमान को निकाल दो और कोफा पर अधिकार कर लो। बसरे का हाकिम अब्दुल्ला बड़ा चालाक था वह केवल २० आदमी लेकर कोफे पहुँचा। कोफे वाले उसे हुसेन समझे और क़िले में ले गये जहाँ पहुँचते ही उसने वहाँ के हाकिम का सिर काट लिया। यह देख जो सेना हुसेन के पक्ष में इकट्ठी हुई थी भाग खड़ी हुई। हुसेन को यह भेद मालूम न था वह कोफे में तैयारियों की ख़बर पाकर अपने बाल-बच्चों सहित कोफे को चल दिया था। सीमा प्रान्त पर सरदार हुर कुछ सवारों के साथ सामने आया, हुसेन समझा स्वागत को आया है। पर उसने कहा कि मुझे कोफे के हाकिम अब्दुल्ला ने भेजा है कि मैं आपको साथ कोफा ले चलूं। हुसेन ने उसे मिलाने की बहुत कोशिश की पर वह नहीं माना।

इसके बाद इसका बेटा अब्दुल मलिक खलीफा हुआ। इसकी आयु १० साल की थी। अब्दुल्ला अब भी मक्का और मदीने में खलीफा माना जाता था। इसलिये इसने बैतुल मुकद्दस फलेसटाइन को हज की

जगह नियत किया। उधर शिया लोगों ने अली के क़त्ल का बदला लेने की तैयारी की। मुन्तकिम उनका खलीफा बना और उसने ५० हज़ार आदमियों को क़त्ल किया। अब्दुल मलिक ने उसके सामने बड़ी भारी सेना भेजी। और वह युद्ध में ६२ वर्ष की आयु में मारा गया। इसके बाद मसअब हाकिम बना और वह भी मारा गया। जब उसका सिर खलीफा के सामने लाया गया, तो उसके क़ातिल को एक हज़ार अशर्फी इनाम देने का हुक्म दिया, परन्तु क़ातिल ने इनकार करते हुए कहा मेरी उम्र ७० साल की है, मैंने समय का ख़ूब रंग देखा है इसी कोफे के क़िले में हुसेन का सिर अब्दुल्ला इब्ने जयाद के सामने लाया गया इब्ने जयाद का मुन्तकिम के सामने और मुन्तकिम का मसअब के सामने और अब मसअब का सिर आपके सामने लाया गया है। बुड्ढे की बात सुनकर खलीफा बहुत शर्माया और किले को मिसमार करने का हुक्म दिया।

अब्दुल्ला अब भी मक्का और मदीने का खलीफा बना बैठा था उस पर चढ़ाई करने को खलीफा ने हज्जाज को सेना देकर भेजा, अब्दुल्ला वीरता से लड़कर मारा गया इससे मक्का और मदीना भी अब्दुल मलिक के हाथ आ गया। अब सिर्फ खुरासान रह गया था उसे भी हज्जाज ने फतह कर लिया अतः वह क़ासदिया की तरफ रवाना हो गया। रास्ते में उमर अपने ४ हज़ार सवार लिये मिला और कहा—कोफे के आदमी आपसे फिर गये हैं। आप मक्के की तरफ वापस चले जाँय। साथ ही उसने अब्दुल्ला को भी लिख भेजा कि हुसेन को मक्के की तरफ चले जाने दें। पर उसने स्वीकार न किया। और उमर को लिखा कि हुसेन को पानी मिलना बन्द कर दो। और यजीद की प्रभुता स्वीकार कराओ।

पानी बन्द होने से हुसेन और उसके परिवार के आदमी तड़पने लगे। फिर भी हुसेन ने यजीद को खलीफा नहीं माना। अन्त में अब्दुल्ला ने लिखा कि यदि वे नहीं मानते तो उनका सिर काट लो और शरीर को घोड़ों से रौंदवा दो। यह हुक्म पाकर उमर ने फिर हुसेन को समझाया पर उन्होंने न माना। और अपने साथियों से कहा मुझे मेरे भाग्य पर छोड़-

कर आ. लोग चले जांय। पर उन लोगों हुसेन के साथ मरना स्वीकार किया। हुसेन के साथ ३२ सवार और ४० प्यादे थे। सबों ने स्नान करके कपड़े पहने, इत्र लगाया और मरने को तैयार हो गये। इतने में ३० सवार शत्रु सेना से निकलकर हुसेन से आ मिले।

लड़ाई शुरू हो गई। थुमरशक अफसर था उसने हुसेन के डेरों में आग लगाने का हुक्म दिया। इसपर हुसेन की स्त्री और बच्चे चिल्लाने लगे। अन्त में उसका दिल भर आया और वह चला गया। एक एक आदमी जाता और मरता था। अन्त में हुसेन बहुत से घाव खाकर गिरा और एक सैनिक ने उसका सिर काट लिया। यह लड़ाई कर्बला में हुई जिसमें हुसेन के ७७ और शत्रु के ८८ आदमी मारे गये। हुसेन के मारे जाने पर उसका सारा माल असबाब लूट लिया गया और स्त्री बच्चों को कैद कर लिया गया। उमर हुसेन का सिर लिये रात को कोफा अपने घर पहुँचा तो उसकी स्त्री ने कहा—पाजी कुत्ते मुझे मुंह न दिखा, यह कहकर घर से निकल गई और सारी उमर उसका मुंह न देखा। दूसरे दिन जब अब्दुल्ला के सामने हुसेन का सिर रखा गया तो उसने उसपर थूका और ठोकर मारकर एक तरफ़ को फेंक दिया।

इसके बाद उसने सब स्त्री बच्चों के क़त्ल का हुक्म दे दिया। पर सर्दारों के मना करने पर उन्हें हुसेन के सिर के साथ यज़ीद के पास भेज दिया। यज़ीद ने उन्हें ख़ातिर से रखा और कुछ दिन बाद मदीने पहुँचा दिया। इसी घटना का शोक मुसलमान १० दिन तक मुहर्रमों में मनाते हैं।

अब इस शत्रु को नष्ट कर वह अब्दुल्ला इब्ने ज़बीर की तरफ़ मुड़ा। क्योंकि उसे मक्का और मदीने वालों ने अपना ख़लीफ़ा बना लिया था। यज़ीद के सम्बन्ध में इतने अपवाद फैल गए थे कि सारा अरब उसका विरोधी होगया था। यह सब सुन कर यज़ीद ने मदीने पर सेना भेजने की तैयारी की पर कोई सेनापति राज़ी न हुआ। अन्त में मुसलिम इब्ने अक़बा ने मन्ज़ूर किया और १२ हज़ार सवार और ५ हज़ार पैदल लेकर मदीने की तरफ़ बढ़ा। पहले तो उसने सब को समझाया। अन्त में युद्ध

हुआ। मदीने वाले भाग निकले। और मुसलिम नंगी तलवार लिये नगर में घुसगया। सबसे पहले अली इब्ने हुसेन को ऊँट पर सवार कर कुछ सिपाहियों सहित शहर से बाहर भेज दिया फिर बनी उम्पा के १ हज़ार आदमियों को जो मरवान के घर में थे अपने पास बुलवा लिया। फिर शहर में लूटमार और क़त्ले आम का हुक्म दे दिया। हज़ारों मारे गये हजारों कैदहुए। मदीने को इस प्रकार ईंट से ईंट बजा कर वह मक्के की तरफ गया। पर मार्ग में ही मारा गया। तब हसीन इब्नेहमीर सेनापति बना और जब वह मक्का पहुँचा तो अब्दुल्ला इब्ने ज़बीर मुक़ाबिले में आया परन्तु शीघ्र ही परास्त हुआ। हसीन ने नगर में घुसते ही काबे पर हाथ साफ किया। और उसे मिट्टी में मिला दिया। इसी समय यज़ीद के मरने की ख़बर एक सवार ने दी। अब्दुल्ला ने यजीद के मरने की घोषणा मस्जिद में करदी और हसीन से कहा कि अब किस लिये लड़ते हो सन्धि कर लो। हसीन ने सन्धि की और दमिश्क की ओर चला गया।

यज़ीद के बाद मुआविया दूसरा उसका बेटा गद्दी पर बैठा उस समय उसकी आयु २१ वर्ष की थी उसकी दृष्टि बहुत कमज़ोर थी ६ मास हुकूमत करके उसने गद्दी का त्याग दी और मर गया। इसके बाद मरवान ख़लीफा बनाया गया। और यह शर्त तै रही कि इसके बाद ख़लीद इब्ने यज़ीद खलीफा बनाया जाय। उधर मक्का मदीने में अब्दुल्ला इब्ने जबीर ख़लीफा बन गया था। साथ ही ख़लीफा इब्ने ज़याद भी ख़िलाफत के लिये प्रयत्न कर रहा था। मरवान की नियत अधिकार पाने पर बदल गई और अपने बेटे अब्दुल मलिक को उत्तराधिकारी बनाने का षड़यन्त्र रचने लगा। जब खलीफा को यह पता लगा तो उसने मरवान को अपनी माँ से ज़हर देकर मरवा डाला। वह बेचारा १ ही वर्ष खिलाफत कर सका।

वहाँ के हाकिम का सर काट लिया गया। अब खलीफा अब्दुल मलिक तमाम मुस्लिम साम्राज्य का एक-छत्र स्वामी हो गया। इस समय भी रोम सम्राट् भूमध्यसागर पर अधिकार रखते थे अब खलीफा अब्दुल मलिक ने कारथेज नगर को जो उस समय सब नगरों से बड़ा था और उत्तर अफ्रीका

का राज्य नगर था, ले लेने के लिये दृढ़ संकल्प किया। सेनापति हुसेन ने ४० हजार सेना द्वारा उसे वीरतापूर्वक विजय किया और जलाकर भस्म कर दिया और असंख्य स्त्री पुरुषों को काट डाला। हुसेन के बाद मूसा अफ्रीका का हाकिम बना और सारा अफ्रीका बुरी तरह लूटा खसोटा गया। इसने ३ लाख स्त्री बच्चों को भेड़ बकरी की भांति नाकाम कर दिया कुछ को क़त्ल कर दिया। और वह लूट का माल और दास दासी खलीफा के पास भेजे जिनके पहुंचने के पूर्व ही वह मर गया।

इस प्रकार ईसाई धर्म के पांच बड़े राज्य नगर जिनमें जेरूसलम और सिकन्दरिया भी थे जला दिये गये। इसके बाद शीघ्र ही कुस्तुन्तुनिया का भी पतन हो गया। इस समय मुसलमानों की तलार ने अल्टाई पर्वत से लेकर अटलांटिक समुद्र तक और एशिया के मध्य से लेकर अफ्रीका के पश्चिमीय किनारे तक अपना अधिकार जमा लिया था। संसार के इतिहास में इतना शीघ्र कोई धर्म नहीं फैला। अन्त में यह खलीफा ६० वर्ष की आयु में मरा। उसके बाद उसका बेटा वलीद खलीफा हुआ, वह लम्बा, मोटा, काला और मजबूत आदमी था। उसकी ६३ स्त्रियाँ और बहुत सी दासियाँ थीं।

गद्दी पर बैठते ही उसने दमिश्क में मस्जिद बनाने के लिये ईसाइयों का एक प्रसिद्ध गिरजा सेन्टजान जो बहुत प्राचीन और सुन्दर बना हुआ था, जबरदस्ती गिरजा गिरवा दिया।

इसके बाद वह यूरोप पर टूट पड़ा। उसका भाई मुस्लिम एशिया माईनर को रौंदता हुआ योरूप तक जा धमका और हजार स्त्रियों को पकड़कर दासी बनाकर बेच डाला इधर मुस्लिम का बेटा तुर्किस्तान में घुस गया और समरकन्द बुखारा और ख्वारिज़म पर दख़ल जमा लिया। उसका सेनापति मूसा अयडालूसिया पर चढ़ गया। स्पेन का सेनापति जुलियन उससे मिल गया। पादरियों ने भी विश्वासघात किया इससे युद्ध में स्पेन का राजकुमार मारा गया। तब बादशाह ने यह घोषणा की कि १५ से ४० वर्ष तक की आयु के सब लोग सेना में भरती हो जाँय। इस

प्रकार विशाल सेना लेकर वह डट गया पर वह विश्वासघातियों की मदद से उसे मुसलमानों ने परास्त कर दिया। जिरक्स में भयानक युद्ध हुआ, स्पेन का बादशाह रोडरिक हार कर भाग गया और अन्त में गाडस्लकिवर नदी में डूबकर मर गया।

वलीद इस समय मर गया। और उसका बेटा सुलेमान ख़लीफा हुआ। इसने सर्वप्रथम मूसा के परिवार को क़त्ल करवा दिया और मूसा की जगह हुर को स्पेन का सूबेदार बनाया। उसने निश्चय किया कि सेना में जितने सैनिक हैं या तो इन्हें मुसलमान बना लिया जाय या क़त्ल कर दिया जाय। उसने जुलियन सेनापति को बुलाया जिसके विश्वाघात की सहायता से स्पेन को फतह किया गया था पर वह हुर का अभिप्राय समझ गया और भाग गया। उसकी स्त्री और बच्चे घर में घेर लिये गये। उसने बच्चे को कब्र में छिपा दिया पर वह ढूँढ़कर निकाल लिया गया। स्त्री ने हुर के पैरों पर गिरकर दया की प्रार्थना की पर उसने कहा कि काफिर के लिये रहम नहीं है। उसने काजी को हुक्म दिया कि बच्चे को किले के बुर्ज पर ले चलिये, यही किया गया, बच्चा डरकर काजी से चिमट गया, उसने बहुत रोना पुकारना किया, पर उसे बुर्ज से नीचे फेंक दिया गया। इसके बाद सब स्त्री पुरुषों को बुलाकर एक खाई में खड़ा किया गया। उनके बीच में जूलियन की स्त्री भी थी। सबसे कलमा पढ़ने को कहा गया, लेकिन इन्कार करने पर खाई में मिट्टी डालकर सबको जिन्दा जमींदोज करा दिया। उधर एक दल सेनापति अब्दुल रहमान की अध्यक्षता में फ्रांस पर टूट पड़ा और उसे कुचल डाला, वह लायर नदी तक पहुँच गया। तमाम गिरजों और शहरों को लूट लिया गया। चमत्कारी पादरियों को कुछ भी न चली।

अन्त में सन् ७३२ में चार्ल्स मारहेल ने इस आक्रमण से टक्कर ली। रात दिन की कड़ी लड़ाई के बाद अब्दुल रहमान मारा गया और मुसलमान पीछे पीछे लौट आए। इस लड़ाई के विषय में इतिहासकार मि० गिबन कहते हैं कि जिबरालटर पहाड़ी से लायर नदी के किनारे तक अर्थात् १००० मील से अधिक दूर तक मुसलमानों की विजयी सेना बढ़ती चली गई थी

और यदि इतनी ही दूर वे और आगे बढ़ जाते तो पोलैण्ड और स्काटलैण्ड के पहाड़ी भागों तक पहुँच जाते।

अब इटली की वारी आई। सन् ८४६ में रोम का जो अपमान धर्मान्ध मुसलमानों ने किया था वह बड़ा ही नीच भाव से किया था। एक छोटीसी मुसलमानी सेना टाईगर नदी पार करके नगर के कोट के सामने आ डटी। यह फाटक तोड़ कर नगर में जाने योग्य शक्ति शाली न थी। सेण्ट पीटर और सेण्ट पोल के समाधिस्थलों को इसने विध्वन्स करके लूट लिया। सेण्ट पीटर के गिरजा की चाँदी की वेदिका तोड़कर उसकी चाँदी अफ्रीका भेज दी गई यह पीटर की वेदी रोमन ईसाइयों के धर्म का मुख्य चिन्ह था।

इस प्रकार रोम नगर का सर्वाधिक अपमान हुआ। एशिया माईनर के गिरजे मिट चुके थे। बिना आज्ञा लिये कोई ईसाई जेरूसलम नगर में पैर नहीं रख सकता था और सुलेमान के मन्दिर के सन्मुख ख़लीफ़ा उमर की मस्जिद खड़ी थी। सिकन्दरया नगर के भग्नावशिष्ट भागों में से दया की मस्जिद उस स्थान का चिन्ह बता रही थी जहाँ भयानक मारकाट के बाद कुछ मनुष्य दया करके छोड़ दिये गये थे कारथेज नगर में सिवा काले खण्ड हरों के कुछ न बचा था, सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न मुसलमानी राज्य का विस्तार अटलाँटिक समुद्र से लेकर चीन की दीवार तक और कैस्पीमन समुद्र के किनारों से लेकर हिन्द महासागर के किनारों तक फैला हुआ था अब भी उस की यह हविस बाक़ी थी कि वह सीजर के उत्तराधिकारियों को उनकी राजधानी से निकाल दे।

परन्तु अरब के आन्तरिक झगड़ों ने यूरोप की रक्षा कर ली। तीन समूहों ने जो अपने भिन्न २ रंग के झण्डे रखते थे ख़लीफ़ा के राज्य के तीन टुकड़े कर डाले। उमैया वंश वालों का झण्डा सफेद रंग का था फातिमा वंश वालों का हरा था और अब्बारियों का काला था यह अन्तिम झण्डा मोहम्मद के चचा के समूह का था। इस झगड़े का यह फल हुआ कि दशवीं शताब्दि में मुसलमानी राज्य तीन भागों में विभक्त होकर बग़दाद काहिरा और कारडोबा के राज्य बन गये। मुसलमानों की राजनैतिक एकता का अन्त

होगया और ईसाई संसार को दैवी सहायता से रक्षा मिली। अन्त में अरबी धर्म धीमा पड़ा और तुर्की और बर्बर शक्तियाँ उठीं।

मुसलमान बड़े भारी मग़रूर होगये थे और वे पूर्ण रीति से घर २ झगड़ों में फँसे हुए थे। आकले ने लिखा है कि मुसलमानों का कोई ऐसा मामूली अफ़सर न था जो तमाम यूरुप की सम्मिलित सेनाओं से हारने पर भी अपनी भारी बेइज्ज़ती न समझता रहा हो इनकी घृणा के विषय में यह उदाहरण काफ़ी है कि रोमन सम्राट् सेनीफरस ने ख़लीफ़ा हारूंन रशीद के पास एक पत्र भेजा था, जिसका उत्तर यह दिया गया था कि—अत्यन्त दयालू ईश्वर के नाम पर मुसलमानों का ख़लीफ़ा हारूंनरशीद रोमिय कुत्ते सेनीफरस के नाम पत्र लिखता है, "हे क़ाफ़िर-माता के पुत्र! मैंने तेरा पत्र पढ़ा, उस पत्र का उत्तर तू सुनेगा नहीं, देखेगा"। और इस पत्र का उत्तर रक्त और अग्नि के अक्षरों में फीजिया के मैदानों में लिखा गया।

यह सम्भव है कि हारी हुई जाति अपने देश को फिर से जीतले, परन्तु स्त्री हरण का प्रतिकार नहीं है। यह अमर पराजय है। जब अबुउबैदा ने रगरोट आक नगर लेने की ख़बर ख़लीफ़ा उमर के पास भेजी थी, तब उमर ने उसे कोमल शब्दों में मलामत दी थी कि तू ने वहाँ की औरतों के साथ सिपाहियों को ब्याह क्यों नहीं करने दिया। वे शब्द आज्ञापत्र पर इस ढँग के थे कि यदि वे लोग सीरियामें ब्याह करना चाहते हैं तो उन्हें कर लेनेदो और जितनी लौंडियों की उन्हें आवश्यकता हो उतनी लौंडियाँ रख सकते हैं।

बस यही बहु-विवाह का क़ानून था कि पराजित देशों से स्त्रियाँ अपहरण की जायें। फिर यही बात सदैव के लिये मुसलमानी रीति में समा गई। ऐसे दम्पत्तियों की संतान अपने विजेता पिताओं की सन्तान होने पर गर्व करती थी। इस नीति के प्रभाव का इससे अच्छा प्रमाण नहीं दिया जा सकता जो उत्तरीय अफ्रीक़ा में मिलता है। नवीन प्रबन्धों को करने में इस बहु-विवाह प्रथा का बे रोक प्रभाव बहुत ही विचित्र हुआ। एक पीढ़ी से कुछ ही अधिक समय में ख़लीफ़ा के अफ़सरों ने उसे सूचना दी कि राज्य कर बन्द करदिया जाय क्योंकि इस देश में पैदा हुए बालक सब मुसलमान हैं और सभी अरबी भाषा बोलते हैं।

(६)

खिलाफत का अन्त

मि० नोल्डेथी के शब्दों में ख़लीफा लोग—उनके इमाम, धर्मगुरु, अमीर, काज़ी कुमार और मजिस्ट्रेट थे। इस प्रकार मुस्लिम सत्ता में शुरु ही से प्रादेशिक और धार्मिक अधिकार संयुक्त होगये थे। और इसलिये इस्लाम 'धर्म' होने के साथ २ एक राष्ट्र भी हो गया था।

८ जून सन् ६२५ में हज़रत मुहम्मद की मृत्यु हुई। तब से सन् ६६१ तक ४ ख़लीफा हुए। अबूबकर, उमर, उस्मान और अली। पाठकों ने देखा होगा कि ख़िलाफत का यह अल्पकाल मुस्लिम इतिहास में कितना महत्व पूर्ण हुआ। इन दिनों धर्म की महत्ता थी, और ख़लीफा ग़रीबी से निर्लोभ भाव से विरक्त पुरुष की भांति रहते थे। अब सन् ६६१ से १२५८ तक ख़िलाफत के इतिहास का दूसरा काल आता है। इसी समय मुसलमानों में शिया-सुन्नी का भेद हुआ। इनदिनों तक अरबियों का दौरदौरा था और उन्होंने ख़िलाफत को वँशगत प्रादेशिक राज्य का रूप दे दिया था। ख़लीफा चुनने की प्रथा बन्द होगई थी और पिछले ख़लीफा के पुत्रादि उत्तराधिकारी माने जाते थे। सबसे प्रथम मोआविया ने अपने सामने ही अपने पुत्र को नामज़द किया था। इसके बाद ख़लीफाओं का जीवन ही बदल गया। अब तो उनमें न उमर की सी सादगी हो रह गई थी और न अली की सी साधुता। मुसलमानों में भेद हो गये थे। विदेशों में जो मुसलमान बनाए जाते थे उन्हें वे विशेषाधिकार

नहीं प्राप्त होते थे जो अरबों को प्राप्त थे। शिया और सुन्नी दोनों सम्प्रदाय परस्पर शत्रु थे। खास कर जबसे हुसैन की मृत्यु का बदला क्रूरतापूर्वक लिया गया। शियाओं का कहना था कि खलीफा का चुनाव हो। पर सुन्नी कहते थे—नहीं, खलीफा अपना उत्तराधिकारी नामज़द कर सकता है। यह मत भेद अभीतक चला आता है।

जब खिलाफत की बागडोर इनके हाथ से जाती रही तब अरबों का आधिपत्य भी नष्ट होगया। कुछ दिन फारितवाले खलीफा रहे पीछे तुर्क ने यह स्थान लिया।

सन् १२६१ से १५१७ तक खिलाफत का तीसरा काल आता है। इस काल में खिलाफत का प्रादेशिक अधिकार बहुत कुछ जाता रहा। इस्लाम धर्म की राज्य सत्ता इन दिनों मिश्र के सुलतान मामलूक और कुछ अन्य मुसलमान बादशाहों के हाथ में रही। खलीफाओं का एक उत्तराधिकारी अहमद ताहिर सीरिया में रहता था। मिश्रके बीवर वंश के बादशाह ने उसे अपने यहाँ बुलाया। और उससे एक खुतवा पढ़वाया। खलीफ़ा ने उसे सम्राट् की पदवी दी। और इस्लाम के प्रचारार्थ निरन्तर लड़ते रहने की सम्मति दी। यह खलीफा सन् १२६२ में मौज़ोलों से लड़ते हुए काम आया। इसके बाद बीवरों ने उसी के एक वंशज को खलीफ़ा बना लिया।

सन् १५१७ में तुर्की के प्रथम सलीम ने मिश्र पर धावा किया। और मामलूक सुलतान को पराजित करके उस पर अपना अधिकार कर लिया। उसी समय उसने खलीफ़ाओं के अन्तिम वंशधर से खलीफा की पदवी प्राप्त की तब से लेकर अब तक उसी वंश के बादशाह खलीफा होते आये हैं। यह समय की बलिहारी है—एक समय था जब तुर्क ने इस्लामी सभ्यता को प्रबल टक्कर से छिन्न भिन्न कर दिया था। सन् १२६८ में एक तुर्क बादशाह ने बग़दाद पर चढ़ाई करके उसे इस भयानक रीति से लूटा कि फिर आज तक इस्लाम का राजनैतिक या धार्मिक क्षेत्र वह नहीं बन सका। इस तुर्क आक्रमणकारी का नाम हलकू था। उसके विषयमें लिखा है—'वह आया,

आकर उसने नाश किया। आग लगाई, क़त्ल किया और सब कुछ लूट कर चलता बना।' परन्तु जब से हलकू के वंशजों ने इस्लाम धर्म ग्रहण किया तब से उन्हों ने इस्लामधर्म की रक्षा और प्रसार करने में कुछ उठा नहीं रक्खा।

सुल्तान सलीम अनेक कारणों से मुस्लिमधर्म का संरक्षक कहाया। अली के बाबा मुहम्मद ने अन्तिम रूप से पूर्वीय रूम के साम्राज्य को नष्ट करके उसके स्थान पर इस्लाम का साम्राज्य स्थापित किया था। अपने समय में वह सर्वाधिक शक्तिशाली मुसलमान बादशाह था और स्वयं ख़लीफा के वंशज ने उसे ख़लीफा की पदवी दी थी। जिस समय सलीम ने ख़लीफ़ा की पदवी को ग्रहण किया उस समय उल्माओं और मौलवियों में भारी विवाद उठ खड़ा हुआ था। अन्त में जब मक्का में उसे ख़लीफा स्वीकार किया गया तो यह विवाद मिट गया। अलबत्ता शिया लोगों ने उसे ख़लीफा न माना। क्योंकि वे किसी भी नामज़द व्यक्ति को ख़लीफा नहीं स्वीकार करते।

तुर्क का जब कोई नया बादशाह गद्दी पर बैठता तो कैरों में मिश्र के और अय्यूब की मस्जिद में तुर्की के उल्मा सभा करके उसे ख़लीफा क़रार देते। और ख़िलाफत की सनद देने की रस्म पूर्ण की जाती। सुल्तान को अय्यूब की मस्जिद में उल्माओं की स्वीकृति और शेखुलइस्लाम के हाथ से अली की तल्वार ग्रहण करनी पड़ती थी। तब से वह मक्का, मदीना, करबला, जेरूसलम आदि मुस्लिम तीर्थों का संरक्षक माना जाता था। वह पवित्र चिन्ह जैसे हज़रत मुहम्मद का लबादा, अली की तल्वार, और उनका झण्डा, तथा अन्य वस्तुओं को पास रखता था। इस प्रकार तुर्क सुलतान अब तक ख़लीफा होते आये थे।

जब योरुप में महायुद्ध हुआ। और तुर्क के सुलतान ने जर्मनी का साथ दिया। तब संसार भर के मुसलमानों में हलचल मचगई। परन्तु चतुर लायड जार्ज ने इस अशान्ति को दूर करने के लिये घोषणा कर दी कि हम युद्ध के बाद मुसलमानों के धार्मिक चिन्हों और काबे को कोई हानि

नहीं पहुँचावेंगे। हम तुर्क के उन मन्त्रियों से लड़ रहे हैं जो हमारे शत्रु से मिल गये हैं। ख़लीफ़ा से हमारा कोई झगड़ा नहीं है। परन्तु युद्ध के बाद विजयी मित्र राष्ट्रों ने तुर्क साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर डाला। महायुद्ध से प्रथम तुर्क साम्राज्य का क्षेत्रफल १७ लाख १० हज़ार २२४ वर्ग मील था। और आबादी २ करोड़ १२ लाख ७३ हज़ार ६०० । पर सीवर की सन्धि के आधार पर तुर्की के अफ्रीक़ा के प्रदेश छीन लिये गये और अरब, मक्का मदीना आदि तीर्थों पर ख़लीफ़ा का कोई अधिकार न रहा। मेसापोटामिया और पेलेस्टाइन को माण्डेम्ट के बहाने से ब्रिटेन ने क़ब्ज़े में कर लिया। जेरुसलम-करबला पर भी ख़लीफ़ा का अधिकार न रहा। इस प्रकार जर्मन महायुद्ध ने ख़िलाफत का श्राद्ध कर दिया। ख़लीफा अपने महल में लगभग नज़रबन्द कर दिये गये और १८ लाख वर्ग मील में फैला हुआ तुर्क साम्राज्य अब लगभग १ हज़ार वर्ग मील ही रह गया !!

१९२० में यह सन्धि हुई। उसी समय एक तुर्क युवक ने तुर्क राष्ट्र की रक्षा के लिये एशिया माइनर में तलवार उठाई। उसने पूर्वी एशिया माइनर पर क़ब्ज़ा कर लिया। और बोलशेविकों से सन्धि करके टर्की के बहुत से प्रदेश वापस कर लिये। इसके बाद यूनानियों से बहुत से प्रदेश छीन लिये। २ वर्ष में उसने ख़ासी ख्याति पैदा करली। प्रारम्भ में उसे अँग्रेज़ों ने एक विद्रोही डाकू समझा। पर अन्त में उससे सन्धि करनी पड़ी और उससे तुर्क और कमाल पाशा की प्रतिष्ठा बहुत ही बढ़ गई।

इस्लाम के धर्म सिद्धान्त

—:❀:—

हज़रत मुहम्मद साहब के कथनानुसार—१२४००० नबी संसार में हो चुके हैं। १०४ पुस्तकें ईश्वरीय हैं। १८००० योनिएं सृष्टि में हैं। इस्लामी साहित्य में मुहम्मद साहब की ६ लाख उक्तिएं हैं। हज़रत मुहम्मद साहब के कथनानुसार मुसलमानों के लिए नीचे लिखे २२ आदेश हैं:—

१—पांच वक्त निमाज़ पढ़ना।
२—मक्का की हज करना।
३ ४०वाँ हिस्सा ख़ैरात करना।
४—१ मास रोज़ा रखना।
५— अल्लाह और रसूल को मानना।
६—बहिश्त में हूरो ग़िल्माओं को मानना।
७—ईद मनाना।
८—पंक्ति बांध कर नमाज़ पढ़ना।
९—मक्का की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ना।
१०—चार स्त्रियों तक विवाह करना।
११—आवागमन न मानना।
१२—शराब न पीना।
१३—क़ुरान की आज्ञा मानना।

१४—काफ़िर को क़त्ल करना।

१५—काफ़िरों का धन छीन लेना।

१६—कपट-युद्ध करना।

१७—मूर्ति खण्डन करना।

१८—सूअर को हराम समझना।

१९—शुक्रवार की ख़ास नमाज़ पढ़ना।

२०—अज़ान देना।

२१—क़यामत के समय ख़ुदा का न्याय होना।

२२—भला-बुरा करने वाला ख़ुदा है।

यद्यपि साधारणतया यह समझा जाता है कि मुसलमानों का धर्म-ग्रन्थ '.कुरानशरीफ़' अरबी भाषा में लिखा गया है। परन्तु अल्लामः जलालुद्दीन सूयूती अपनी पुस्तक 'तफ़सीरे इत्तेकान फी उलूमिल-.कुर्आन' में लिखते हैं कि—.कुर्आन में ७४ भाषाओं के शब्द पाए जाते हैं। अपने पक्ष के समर्थन में वे अबूबक्रिब्ने अनसारी, इब्ने अबीबक्र अनवारी, सईदिबिब्ने मनसूर, अबूबक्र वास्ति, मुल्ला जलालुद्दीन, सआलबी, इब्ने जोजीजर कशी अबूनुईम, अबू हातिम, किरमानी, क़ाज़ी ताजुद्दीन इत्यादि की साक्षिएँ उपस्थित करते हैं। उन के विचार से नीचे लिखी ७५ भाषाएँ .कुर्आन में हैं।

(१) .कुरेशी (२) किनानी (३) हुज़ैली (४) ख़श्अमी (५) ख़ज़रजी (६) अश्अरी (७) नमीरी (८) क़ैसे गीलानी (९) ज़रहमी (१०) यमनी (११) अजदिशनोई (१२) कन्दी (१३) तमीमी (१४) हमीरी (१५) मधनी (१६) लहमी (१७) सादुल अशीरी (१८) हज़रमुती (१९ सुदूसी (२०) अमालकी (२१) अनमारी (२२) गस्सानी (२३) मजहजी (२४) खुजाई (२५) गतफ़ानी (२६) सबाई (२७) अम्मानी (२८) बनूहनीफ़िया (२९) सालबी (३०) तई (३१) आमरिब्न (३२) साअसी (३३) औसी (३४) मजीनी (३५) सफीफ़ी (३६) जुजामो (३७) बलाई (३८) अज़रही (३९) हवज़ानी (४०) अनमरी (४१) यमानी (४२)

सलीमी (४३) अम्मारी (४४) अथूएनी (४५) नसरिब्ने मुआवीय्यो ४६) अको (४७) हज्जाजी (४८) नवई (४९) ईसो (५०) कुआई (५१) काविब्ने उम्री (५२) काबिब्ने लवी (५३) तहारीय्यी (५४) रबीय्यी (५५) जम्वती (५६) तैमी (५७) रवावी (५८) आदिब्ने खुजैयो (५९) सादिब्ने वक्री (६०) हिन्दी (६१) इब्रानी (६२) अज़ज़ी (६३) जसमिब्ने वक्री (६४) संस्कृत (६५) हब्शी (६६) फ़ार्सी (६७) रूमी (६८) बंगी (६९) अजमी (७०) तुर्की (७१) निब्ती (७२) सुर्यानी (७३) बरबरी (७४) क़िब्ती (७५) यूनानी।

क़ुर्आन में समय २ पर परिवर्तन होने के भी प्रमाण पाए जते हैं।

नं०	किस के मत में	क़ुरान की अक्षर-संख्या
१	सुयूती-इब्ने अब्बास	३२३६७१
२	" उम्रिब्नेखत्ताब	१०२७०००
३	सिराजुलकारी अब्दुल्लाहिब्नेमसऊद	३२२६७१
४	" मुजाहिद	३२११२१
५	उम्दतुलब्यान अब्दुलाहिब्ने मसऊद	२२२६७०
६	सिराजुलकारी ग्रन्थकार	३२०२६७०
७	उम्दतुलब्यान "	३५१४८२
८	कसीदतुल किराअत "	३२०२६७०
९	दुआय मुतबर्रक "	४४५४८३
१०	रमूजुल क़ुर्आन मुहम्मद हसन अली	४०२६५

इसी प्रकार का मत भेद शब्द संख्या में भी है।

नं०	पुस्तक का नाम	किसके मत में	क़ुरान की शब्द संख्या
१	उम्दतुल ब्यान	हमीद आरज	७६२५०
२	" "	अब्दुलअज़ीज़िब्ने अब्दुल्लाह	७०४३९

नं०	पुस्तक का नाम	किसके मत में	क़ुरान की शब्द संख्या
३	सिराजुलकारी	हमीद आरज	७६४३०
४	,,	मुजाहिद	७६२५०
५	,,	अब्दुलअज़ीज़िब्ने अब्दुल्लाह	७०४३६
६	कसीदतुल् किराअत	ग्रन्थकार	८६४३०
७	सिराजुलकारी	,,	७६४२०
८	सुयूती का अनुवाद	मुहम्मद हलीम अनसारी	७७६३३
९	मुहम्मदहलीम के नोट	अनेकों के मत में	७७४३७
१०	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	७७२७७
११	रमूजुल क़ुर्आन	मुहम्मद हसन अली	७६४२

इसी प्रकार क़ुर्आन की सूरतों की संख्या में भी मतभेद हैं। सिराजुलकारी, उम्दतुलबयान फी तफ़सीरिल क़ुरान, तफ़सीरे इत्तेकान, कसीदतुल किराअत, रमूजुल क़ुर्आन और दुआएमुतबर्रिक में इमाम अबूहनीफ़, ज़ैदिब्ने साहब अन्सारी और मुल्ला मुहम्मदहसन अली के मत में क़ुर्आन में ११४ सूरतें थीं।

परन्तु मुल्ला जलालुद्दीन सुयूती अपनी तफ़सीरे-इत्तेकान फी उल-मिल क़ुर्आन में लिखते हैं कि—क़ुर्आन इब्ने मसऊद में ११२ सूरतें थीं। तथा उबैयिब्ने क़ाब के क़ुरान में ११६ सूरतें थीं। जलालुद्दीन के उल्लेख से सिद्ध होता है कि हज़रत उस्मान के क़ुरान में ११६ सूरतें थीं। उमियतिब्ने अब्दुल्लाह ने ख़ुरासान में एक क़ुरान पाया था जिस में ११६ सूरतें थीं। इसी प्रकार और भी बहुत से मतभेद हैं। परन्तु वर्तमान् क़ुर्आन में ११४ सूरतें हैं। जो साधारणतया सभी मुसलमान स्वीकार करते हैं।

सूरतों की भांति आयतों में भी मतभेद है। दुआएमुतबर्रिक, कसीदतुलकिराअत, उम्दतुलबयान फी तफ़सीरित क़ुरान, सिराजुलकारी तथा रमूजुल क़ुरान में क़ुरान की ६६६६ आयतें मानी हैं।

तफ़सीरे इत्तेकान फी उलमिल .कुरान के मत से आयतों की संख्या इस प्रकार है ।

मदीनियों के मत में	...	६२१४
मक्कियों ” ” ”	...	६२१२
शाम वालों ” ” ”	..	६२५०
बस्त्रियों ” ” ”	...	६२१६
ईराकियों ” ” ”	...	६२१४
कूफियों ” ” ”	...	६२३६
अ० इब्नेमसऊद के मत में	...	६२१८
इब्ने अब्बास के मत में	...	६६१६
अदानी के मत में	...	६०००
भिन्न भिन्न मत से	...	६२१४ आदि

.कुर्आन की आयतों में परस्पर मतभेद भी देखने को मिलता है। और इस प्रकार जब कोई आयत किसी के विरुद्ध आती है तो पूर्व आयतें मन्सूख़ मानी जाती हैं। इस भांति .कुर्आन की आयतों के 'नासिख़' और 'मनसूख़' दो भेद हैं। 'नस्ख' धातु से नासिख़ और मनसूख़ शब्द बना है, जिसका अर्थ मिटाना, बदलना, रद्द करना नाशित करना, आदि हैं।

.कुरान शरीफ़ ३ लाख २२ हज़ार ४५ फ़रिश्तों द्वारा उतरा माना जाता है और उस में ७० हज़ार विद्याओं का समावेश बताया जाता है।

.कुर्आन शरीफ़ में कुछ ऐसी भी बातें हैं जो अन्य धर्म-ग्रन्थों की दृष्टि से अनोखी सी प्रतीत होती हैं। सुनिए—

१—ख़ुदा आदमी को बहका देता है।

२—ख़ुदा सब से बड़ा कपटी है।

३—ख़ुदा ने क़ाफ़िरों के दिलों पर मोहर लगा रक्खी है।

४—अगर ख़ुदा चाहता तो सबको सीधा रास्ता दिखा देता।

५—ख़ुदा ने प्रत्येक शहर में पापियों के सरदार छोड़ रखे हैं ताकि वे लोगों को बहकाते और धोखा देते रहें।

६—शैतान ख़ुदा से कहता है कि जिस तरह तूने मुझे बहकाया उसी तरह मैं भी क़यामत तक क़ाफिरों को बहकाऊँगा ।

७—ख़ुदा ने क़यामत तक के लिये क़ाफिरों के दिलों में दुश्मनी और द्रोह भर दिया है ।

८—ख़ुदा घात में लगा रहता है ।

९—बहिश्त में शराब पीने को और मांस खाने को तथा ७० हूरें और लौंडे मौज करने को मिलेंगे ।

१०—बहिश्त वाले भोजन तो करेंगे परन्तु पेशाब और पाखाना नहीं होगा ।

११—बहिश्त वालों को सौ-सौ आदमी की काम शक्ति भोग विलास के लिये दी जायगी ।

इस्लाम के सम्बन्ध में सर्वोपरि यह बात तो हमें स्वीकार ही करनी होगी कि इस धर्म ने एक ईश्वर की सत्ता को सर्वोपरि माना—औ मूर्तिपूजा तथा भाँति २ की उपासनाओं को बलपूर्वक रोका। इस्लाम धर्म की दूसरी खूबी यह थी कि उसके नियम सरल, सुसाध्य और आकर्षक थे। फिर भी जैसा जातियों की जागृति के समय हुआ करता है मुहम्मद साहब की मृत्यु के थोड़े ही दिन बाद से इस्लाम की नई २ शाखायें फूटने लगीं थीं। जिस प्रकार अरब के विजेताओं ने पूर्व और पश्चिम में अपने साम्राज्य को विस्तार किया उसी प्रकार अरब के विद्वानों और साधुओं ने संसार भरके दर्शन, विज्ञान और विद्याओं को खोज २ कर अपने भण्डार को बढ़ाना प्रारम्भ किया। दर्जनों ईसाई धर्म ग्रन्थ अरबी में अनुवाद किए गये। सुक़रात, अफ़लातून, अरस्तू के गम्भीर दर्शन शास्त्रों, भारत के विज्ञान, वैद्यक, ज्योतिष आदि के विषयों की सहस्रों पुस्तकों का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ। भारत के साथ अरबों का सम्बन्ध नया न था—करोड़ों रु० का व्यापार होता था—उसी व्यापार के साथ भारतीय संस्कृति की भारी छाप अरबी समाज पर लगगई थी। प्रारम्भिक ख़लीफाओं के काल में बसरा में उच्च पदों पर हिन्दू नौकर थे। शाम कासगर में हिन्दू व्यापारियों की कोठियां थीं। ख़ुरासान अफ़ग़ानिस्तान, सीस-

तान, और बलूचिस्तान इस्लाम मत स्वीकार करने से पहले बौद्ध थे। बलख में एक बहुत बड़ा बौद्ध विहार था, जिसके मठाधीश अब्बासी खलीफाओं के वज़ीर हुआ करते थे। अनेकों बौद्धमत की किताबों के अनुवाद अरबी भाषा में हुए। किताबुलबुद, और बिलवहर वा बुदसिफ सुश्रुत-चरक, निदान, पंचतन्त्र-हितोपदेश, चाणक्य आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थ अरबी में अनुवाद किए गए। फलतः बुद्ध की शिक्षाओं और विचारों का अरब के मुसलमानों पर भारी प्रभाव पड़ा। धीरे २ अरबों में स्वतन्त्र विचार, नये २ दार्शनिक और धार्मिक भावनाओं का उदय हुआ।

उन्हीं दिनों मुसलमानों की 'शिया' सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इसे 'ग़लात' के खलीफाओं ने प्रचलित किया और प्रचलित मुसलमान धर्म से इस में यह विशेषता थी अवतार वाद [हुलूलतशबीह] आवागमन तनासुख) को सिद्धान्तों में स्थान दिया गया। और यह सिद्ध किया कि बढ़ते २ मनुष्य खुदा के रुतबे पर पहुँच सकता है।

'अली इलाई' सम्प्रदाय में एकसे अधिक स्त्रियों से विवाह करना तथा तलाक की प्रथा को नाजाइज़ क़रार दिया। मसजिदमें जाने तथा शारीरिक शरई, पवित्रता को भी उन्होंने अनावश्यक बतलाया। कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी पैदा हुए जिन्होंने कुरआन के अलंकारिक अर्थ किये। अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वर में भेद किया जाने लगा। इन सभी सम्प्रदायों में लोगों को खास 'दीक्षा' लेकर भरती किया जाता था। गुरु (पीर) को कहीं २ ईश्वर का रुतबा दिया जाने लगा।

इसके बाद एक मौतज़ली सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसका सिद्धान्त था कि कुरआन सदा के लिये निर्भ्रान्त ईश्वर वाक्य नहीं—प्रत्युत मनुष्य जाति और आत्मा की उन्नति के साथ २ समय २ पर इलहाम होता रहता है। अलग़िज़ाली सम्प्रदाय ने कुरआन-शरीयत, और सामान्य मुसलिम कर्मकाण्ड से असन्तुष्ट होकर एकान्त वासी हो तप (रियाज़त) अभ्यास (शग़ल) और ध्यान (जिक्र) शुरु किया। और प्राचीन आर्यों के योगाभ्यास का अनुकरण किया। इस प्रकार सूफी सम्प्रदाय का जन्म

हुआ। धीरे २ सूफियों के अनेक मठ (खानकाहें) स्थापित हुए जिनमें अद्वैत (वहदतुल वजूद) का उपदेश दिया जाता था; संयम (नफ़्स कुशी) भक्ति (इश्क) योग (शग़ल) को मुक्ति (निजात) का मार्ग बताया जाता था। धीरे २ ऐसे कवि और वैज्ञानिक भी अरब के अन्दर पैदा होने लगे जो नबी, कुरआन, बहिश्त, रोजे-नमाज सबका मज़ाक उड़ाने लगे। साकार ईश्वर को अस्वीकार करने लगे। ख़लीफा यजीद को जिसकी मृत्यु सन् ७४४ में हुई ऐसे ही विचार वालों में गिना जाता था।

अबुल-अला-अलम आका जो ११ वीं शताब्दी में अरब के एक महान् विद्वान् और महात्मा थे। आवागमन में विश्वास रखते थे, अत्यन्त निरामिषाहारी थे। दूध शहद और चमड़े का भी व्यवहार नहीं करते थे। प्राणिमात्र पर दया का उपदेश करते और ब्रह्मचर्य को आत्मा के लिये जरूरी बताते थे। मसज़िद, नमाज, रोजे, और दिखावट के कड़े विरोधी थे। वे वेदान्तियों की भाँति संसार को माया मानते थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस्लाम में इस गम्भीर परिवर्तन का कारण अरब की विचार स्वतन्त्रता तथा ईसाईमत, ज़रदुश्त मत, और भारतीय हिन्दू तथा बौद्ध मतों की छाप साफ़ दिखाई देती है। विरक्ति (अलफ़िरारोमिनद्दुनिया) का सिद्धान्त भी इसलाम में भारत से गया—क्योंकि मुहम्मद साहब तो इसके विरुद्ध थे।

प्राचीन मुल्ला मौलवी और सूफ़ियों में परस्पर विरोध बराबर चला आता रहा है। फिर भी लाखों मनुष्य इन सूफियों के ख़ानक़ाहों में जमा होते थे। और उनके विचारों का उनपर भारी प्रभाव पड़ता था।

मंसूर एक प्रसिद्ध सूफी फ़कीर था। और वह भारत में कुछ दिन रहा था। उसका मुख्य सिद्धान्त 'अनल हक़' अर्थात् 'सोऽहं' था। यह आदमी अपने विचारों ही के कारण सन् ६२२ में अनेक यातनाओं के बाद सूली पर चढ़ा दिया गया। वह सबको खुदा मानता था और दुई को धोखा समझता था। इसलाम में इस भाँति के प्रचारकों ने इसलाम की भावना में दूसरे मतवालों के लिये एकता, उदारता और प्रेम के बीज बो

दिए थे। यही कारण था कि इन साधुओं का भारत की जनता पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ा था। ये लोग खूब सत्संग करते, भक्ति रस के गीत गाते, नाचते और मस्त हो जाते थे। शेख़ बदरुद्दीन १३ वीं शताब्दी में भारत में था—वह इतना बुड्ढा हो गया था कि हलचल भी न सकता था। पर जब भगवत भजन होता तो वह अपने बिस्तर से उठकर नाचने लगता था—जब उससे कोई पूछता कि शेख इस कमजोरी की अवस्था में कैसे नाचता है तो वह जवाब देता —शेख़ कहाँ प्रेम नाच रहा है।

अब हम इस्लाम और मोहम्मद साहब के सम्बन्ध में कुछ निष्पक्ष विद्वान ग्रन्थकारों के कथन उद्धृत करते हैं—

मिस्टर ऐलफ़िन्सटन् साहब 'हिस्ट्री आफ़ इन्डिया' (History of India) नामक पुस्तक में लिखते हैं:—

"जिस समय अरब वालों की ऐसी व्यवस्था थी। उसमें झूठे नबी (मोहम्मद) का जन्म हुआ। मोहम्मद के सिद्धान्तों को मनुष्य जाति की एक भारी सँख्या बहुत दिनों से धारण किए हुए हैं। मोहम्मद के उद्योग और सिद्धान्तों का वास्तविक रूप कुछ ही क्यों न हो। इसमें सन्देह नहीं कि जिस कठोरता पक्षपात और रक्तपात से मोहम्मद के सिद्धान्तों का प्रचार हुआ उससे तो यही साबित होता है कि इन सिद्धान्तों का कर्त्ता मनुष्य जाति का अति भयानक शत्रु था।"

वाशिङ्गटन इरविङ्ग साहब 'मोहम्मद की जीवनी' (Life of Mohammad) में लिखते हैं:—

"मोहम्मद ने जो घोषणा-पत्र मदीने पहुँच कर मुसलमानों के लिये जारी किया था, उसमें उसने लिखा था कि–'जो मुसलमान मेरे धर्म का प्रचार करना चाहे उसको शास्त्रार्थ के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिये अपितु उसका कर्तव्य है कि जो आदमी इसलाम धर्म को अङ्गीकार न करे उसको यमपुर भेजदे क्योंकि जो मुसलमान इस्लाम के निमित्त लड़ता है चाहे वह मारे चाहे मरं इसमें संदेह नहीं कि उसके लिये बहु मूल्य इनाम तैयार है। तलवार ही स्वर्ग और नर्क की कुँजी है। जो मुसलमान धर्म के निमित्त तलवार चलाता है वह भारी

इनाम पाने का अधिकारी हो जाता है। लड़ने वालेके रक्त का एक बिन्दू भी व्यर्थ नहीं जाता। जो दुःख और कष्ट धर्म युद्ध में मुसलमानों को उठाना पड़ता है, वह ईश्वर के यहाँ ज्यूँ का त्यूँ लिख लिया जाता है इस्लाम के लिये मरना और कष्ट उठाना नमाज और रोजे से भी बढ़कर है जो मुसलमान इस्लाम के निमित्त युद्ध में मारा जाता है उसका सारा पाप क्षमा कर दिया जाता है। वह सदा के लिये मृगनयनी अपसराओं के साथ आनन्द भोगता है। काफ़िरों को इस्लाम में लाने के लिये तलवार से बढ़कर दूसरा उपदेश नहीं है मुसलमानों को चाहिये कि काफिर मूर्त्ति-पूजकों को जहाँ कहीं देखें मार डालें।' जिस समय मोहम्मद ने तलवार की धार पर इसलाम को फैलाने की घोषणा की और जिस समय उसने अरब के लुटेरों को विदेशियों के लूटने का चसका दे दिया उसी समय से उसके जीवन चरित्र में लूट मार का होना आरम्भ हो गया।

सय्यद मोहम्मद लतीफ़ 'हिस्ट्री आफ़ दी पंजाब' (History of the Punjab) नामक पुस्तक में लिखते हैं:—

"अरब की लुटेरी जातियों को मोहम्मद का लोक और परलोक के सुख और धन दौलत का लालच दिलाना उनके जोश को भड़काने के लिये काफी था इस लालच से उनकी युद्धशक्ति और विषय कामना भभक उठी मोहम्मद ने अरबियों की बुझी हुई कामना में बिजली भर दी। क़ुरान और तलवार को हाथ में लेकर और अपने अनुयायी मुसलमानों की शक्ति से उत्साहित होकर मोहम्मद ने संसार के शिष्टाचार और धार्मिक शीलता के साथ युद्ध छेड़ दिया। नई नीति और नवीन विचारों को प्रचलित करके समाज और राजनीति की सभ्यता में मोहम्मद ने क्रान्ति उत्पन्न करदी।"

डा० मिरचिल का कहना है:—

"क़ुरान की अधिकांश बातें दर्शन, ज्ञान, और बुद्धि से बाहर की है, उसकी शिक्षा सिर्फ अवैज्ञानिक ही नहीं है अपितु बुराईभी उत्पन्न करती है।"

डा० फोरमेन लिखते हैं—"जो आदमी क़ुरान को पढ़कर उसपर चलेगें अवश्य निर्दयी और कामी बन जावेंगे।"

(८)

भारत की ओर

—:❋:—

हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि मुसलमानी धर्म उत्पन्न होने के पूर्व से ही अरब का सम्बन्ध भारतवर्ष से रहा है। मुहम्मद साहब के जन्म से लगभग ६०० वर्ष पूर्व मसीह की प्रथम शताब्दि से ही अरब और ईरान के द्वारा ही भारतीय व्यापार का योरोप से तार तम्य रहा है। और भारत के पूर्वी एवं पश्चिमी तट के बन्दरगाहों जैरूचाल, कल्याण, सुपारा और मलावार के आस पास अरब सौदागरों की बड़ी २ बस्तियाँ बसी हुई थीं। दक्षिण भारत और लंका में तो अरबों और ईरानियों की अनेक बस्तियाँ थीं। यहाँ तक कहा जा सकता है कि रोम और यूनान के जो जहाज भारत आते थे उनके नाविक अरब होते थे। भारत और चीन के व्यापार भी इन्हीं के हाथ में थे इसलिये पूर्वीय तटों पर भी अरबों की बड़ी २ बस्तियाँ थीं।

उस समय के अरब सीधे सादे, वीर, साहसी, विश्वासी और अटल प्रकृति होते थे। वे अपने २ खान्दानों और क़बीलों के कुल देवताओं की मूर्तियों को पूजते थे। भारतवासियों से उनका खूब मेल जोल था और भारत में उनकी बस्तियाँ खुशहाल थीं।

भारत का अरब, फिलस्तीन, मिश्र, काबुल, असीरिया आदि देशों से सदैव ही व्यापार विनिमय होता रहा है। यहूदियों के प्रख्यात बादशाह सुलेमान ने अपने जगद्विख्यात मन्दिर के निर्माण कराने के समय भारत से बहुत सी

चीज़ें–जैसे स्वर्ण, रत्न, मोरपंख और हाथी दाँत आदि मँगाये थे। मिश्र के प्राचीन बादशाहों ने भारत से व्यापार करने के लिए ही लाल सागर के किनारे कई बन्दरों की स्थापना की थी। ईरान के बादशाहों ने फ़ारस की खाड़ी में कई बन्दरगाह इसी इरादे से बनाये थे। रोम और यूनान के विद्वानों को भारत के भूगोल का भलीभाँति परिचय था। प्यूटिंगीरियन टेबुल्स नामक पुस्तक से पता लगता है कि मसीह की तीसरी शताब्दि में करेगानोर में रोमन लोगों की एक बस्ती थी और मिश्र के बन्दरगाह सिकन्दरिया में हिन्दुओं की आबादी थी। जिन्हें रोमन सम्राट् काशकल्ला ने तीसरी शताब्दि में क़त्ल करा दिया था।

ईरानियों ने दज़ला और फ़रात के दहाने पर, बसरे के निकट, ओबोला का बन्दरगाह बनाया था।

अरब और भारत का व्यापार बहुत घनिष्ट था। उनके देश में पश्छिम तट पर बहुत से बन्दरगाह थे। दक्षिण में ऊदभ और पूर्व में सेहुर प्रधान थे। अरबी मल्लाह बहुधा भारतीय नौकाओं पर नौकरी करते थे और इस समुद्र के दोनों तटों पर इनकी बस्तियाँ थीं। रेनों के मत से १४ वीं शताब्दि तक अरबों का मलाबार तट पर वैसा ही आधिपत्य था जैसा कि बाद में पुर्तगीजों का होगया।

इस्लाम धर्म के प्रचार होने पर अर्थात् मुहम्मद साहब के जन्म होने पर भी अरबों का यातायात बराबर भारत में बना रहा। परन्तु अब उन में नई सभ्यता, विचारधारा, और नये आदर्शों का समावेश था।

यह बात हम सातवीं शताब्दि के मध्य भाग की कह रहे हैं क्यों कि सन् ६२४ में मक्का नगर ने मुहम्मद साहब की आधीनता स्वीकार की थी और सन् ६३१ में २ वर्ष बाद समस्त अरब ने। इसी सन् में हज़रत मुहम्मद मर गये। परन्तु सन् ६३६ में ईराक़ (मेसोपोटामिया) शाम (सीरिया को अरबों ने विजय किया। और ६३७ में वैतुल मुक़द्दस (जेरूसलीम) पर क़ब्ज़ा किया था। अन्ततः सातवीं शताब्दि के अन्त तक तमाम तातार और तुर्किस्तान तथा चीन की पूर्वी सरहद तक इस्लाम में मिल गया था।

इसी बीच में पच्छिम में मिश्र, कार्थेज तथा समस्त उत्तरीय अफ्रीका पर इस्लाम की फ़तह हो चुकी थी, और प्रबल रोमन साम्राज्य को चीर फाड़ डाला था। और स्पेनों पर अपना अधिकार कर लिया था।

अरबों ने बड़ी तेज़ी से चारों ओर फैलना प्रारम्भ कर दिया तब उनकी सेनाऐं जंगलों, मैदानों, पहाड़ों और नदियों को पार करती हुई भारत की सीमा तक पहुँच गई। उन्होंने ईरान के बेड़ों को सदैव के लिये समुद्र में समाधि दे दी थी और भारत महासागर पर अपना एकाधिपत्य जमा लिया था साथ ही हिन्द महासागर के व्यापार को भी सर्वथा हथिया लिया था।

मुसलमानों का पहला बेड़ा सन् ६३० में उमर की ख़िलाफ़त में हिन्दुस्तान में आया। उस समय उस्मान सक्रीफ़ी बहरैन का सूबेदार था। और उसने एक सेना समुद्री रास्ते से थाने के बन्दर भेजी। ख़लीफ़ा ने इस बात को पसन्द नहीं किया। और भविष्य में ऐसा न करने की ताकीद करदी। पर उस्मान की ख़िलाफ़त में भारत की ओर फिर कई फौजी दस्ते आये। पर विफल मनोरथ लौट गये।

सातवीं शताब्दी के मध्य में जबकि मध्य एशिया और योरोप में मुसलिम सत्ता अपना प्रताप दिखा रही थी भारत में सम्राट् हर्षवर्धन की सत्ता का अन्त हो रहा था। उत्तरीय भारत का साम्राज्य टुकड़े २ हो रहा था। कुछ पुरानी कुछ नई जातियों ने नवीन राजपूत शक्ति बनाकर पच्छिम से चल कर उत्तर पूर्वीय तथा मध्यभारत में अनेक छोटी २ रियासतें क़ायम कर ली थीं। और मुसलमानों के प्रथम आक्रमण के प्रथम ही वे पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक प्रदेश को अधिकृत कर चुके थे। परन्तु कोई प्रधान शक्ति इनको वशमें करने वाली न थीं- और आये दिन इन के परस्पर संग्राम होते थे। पुराने साम्राज्यों की राजधानियाँ खण्डहर हो गई थीं।

ऐसी दशा में धर्म क्षेत्र में भारत का पतन होना स्वाभाविक था, बौद्धों ने ब्राह्मण धर्म और उच्चजाति के विशेषाधिकारों को कुचल डाला था, उस के प्रतिफल स्वरूप ब्राह्मणों ने इन नवीन शासकों की सहायता से

फिर पुराने ब्राह्मण धर्म को नये रूप में खड़ा किया था। वेद के रुद्र देवता शिव की मूर्ति बन गये थे। और अब हिन्दू और बौद्ध प्रतिमा पूजन और कर्म काण्ड के प्रपंच में फिर फंस गये थे। कनिष्कके प्रयत्न से उत्तरीय भारत में महायान सम्प्रदाय की नींव जम गई थी, जिस में बोधि सत्वों की पूजा होती तथा बौद्ध मन्दिरों का समस्त कर्म काण्ड हिन्दू मन्दिरों के ढंग पर ढल गया था, प्रारम्भ में जो बौद्ध मत ने संस्कृत का स्थान छीन कर प्राकृत या पाली भाषा को दिया था—अब वह फिर संस्कृत को मिल गया था और ब्राह्मणों की अब बन आई थी।

धीरे २ वैष्णव मत, शैव मत और तान्त्रिक समुदाय ने मिल कर बौद्ध धर्म को भारत से निकाल बाहर कर दिया। कुछ उच्चश्रेणी के लोग उपनिषद् और दर्शन शास्त्र को मनन करते थे। पर सर्व साधारण का धर्म-पथ अन्धकारमय, अरक्षित और ऊजड़ था। जिस जाति भेद को बौद्ध धर्म ने नष्ट कर स्त्रियों और शूद्रों को मनुष्यत्व के अधिकार प्रदान करना चाहा था, वह फिर और भी अन्ध भित्ती पर क़ायम हो गया था। ब्राह्मणों के अब असाध्य अधिकार बढ़ गये थे। जनता को जाति पांति और ऊँच नीच की दलदल ने फाँस लिया था और असंख्य भयानक देवी देवता, शक्ति, जप, तप, यज्ञ, हवन, पूजा पाठ, दान, मन्त्र, तन्त्र, और जटिल कर्मकाण्ड के सिवाय कोई धर्म न रह गया था— इस बात का पता उस समय के साहित्य, चीनी तथा अरब के यात्रियों के वृत्तान्तों, सिक्कों, तथा शिला लेखों से लगता है।

५ वीं शताब्दि में फाहियान ने उत्तर पश्चिम में पुरातन काबुल से मथुरा तक हीनयान सम्प्रदाय देखा था, पर उसके दो सौ वर्ष बाद ही जब ह्वैनसाँग आया तो उसने महायान को उसके स्थान पर देखा। उसने शिव की पूजा को बड़ी तेज़ी से फैलते देखा, और अयोध्या के निकट दुर्गा के सामने मनुष्य बलि चढ़ती देखी थी। और बुद्ध की मूर्त्तियों के स्थानपर शिवमूर्त्तियाँ स्थापित होते, तथा बौद्धों को यन्त्रणा देकर निकालते देखा था। उसने नरमुण्डों की माला पहिने कापालिकों को भी देखा था। उस

ने ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, और मध्य एशिया तक बौद्धों और शैवों को बराबर पाया था। परन्तु इसके बाद के अरब के यात्रियों ने बौद्धों के धर्म को लुप्त हुआ पाया। अलबरूनी ने ११ वीं शताब्दि में शैव, वैष्णव, शक्ति, सूर्य चन्द्र, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, स्कन्ध, गणेश, यम, कुबेर आदि असंख्य मूर्तियों की पूजा देखी। बौद्धों और जैनों, शाक्तों और कापालिकों का मद्यमांस संघर्ष देखा—जो धर्म का अंग बन गया था। इस प्रकार उस समय भारत सैंकड़ों उत्तरदायित्व शून्य छोटी २ रियासतों, सैंकड़ों मत मतान्तरों और अनगनित सदाचारहीन कुरीतियाँ और अन्धविश्वासों का घर था।

पाठकों को स्मर्ण होगा कि ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक के शासन काल तक मुस्लिम शक्तियों में गृहयुद्ध ख़ूब जोर पर था। और वह ख़लीफा वलीद के काल तक भी जारी था। उस समय हज्जाज़ इब्ने यूसुफ कोफे का हाकिम था। उसके आधीन-प्रदेशों के अल्लाफी जाति के कुछ विद्रोही मुसलमान हिंदुस्तान में भाग आये थे और सिन्ध के राजा दाहिर के शरण में रहने लगे थे। इनका सरदार मुहम्मद वारिस अलाफी था। राजा ने उन्हें जागीर देकर अपनी सेना में रख लिया था। हज्जाज ने इन्हें मांगा पर दाहिर ने देने से इन्कार कर दिया। इसी बीच में अरब का एक जहाज लङ्का से आरहा था उसे कच्छ के लुटेरों ने लूट लिया। हज्जाज ने दाहिर से इसका हरजाना मांगा। दाहिर ने कहा—वह स्थान जहाँ जहाज लुटा है हमारे राज्य की सीमा से बाहर है अतः हम हरजाना नहीं देंगे।

इसपर हज्जाज ने सन् ७१२ ई० में मुहम्मद-बिन-क़ासिम को सिन्ध पर भेजा। यह हज्जाज का भतीजा था। यह २० वर्ष का साहसी मुसलमान बालक केवल ६ हज़ार सैनिक लेकर बलोचिस्तान की विस्तृत मरु भूमि को पार करता हुआ बिना किसी रोक टोक के सिन्ध पर चढ़ आया। दाहर के सेना पतियों और नारायण कोट के किलेदार (जो अब हैदराबाद कहाता है) को लालच देकर शरणागत मुसलमानों के सरदार मुहम्मद वारिस अल्लाफी ने प्रथम ही वश में कर लिया था। समय पर वे स्वयं भी युद्ध में विपरीत होगये। राजा १० हजार सवार और २० हजार पैदल ले

कर सन्मुख गया। ८ दिन तक घोर युद्ध हुआ। क़ासिम भागने ही को था कि एक ब्राह्मण ने उससे कहा कि यदि मन्दिर का झण्डा गिरा दिया जाय तो हिन्दू सेना भाग जायगी–क्योंकि हिन्दुओं का यही विश्वास है। कासिम ने झण्डे पर निशाना दाग़ कर गिरा दिया। उसके गिरते ही हिन्दू सेना भागने लगी। राजा दाहिर एक तीर से घायल होकर गिर गया और उसका सिर काट लिया गया। जिसे भाले पर लगाकर दिखाया गया। उसे देख सेना भाग खड़ी हुई और मन्दिर ध्वंस कर दिया गया। उसी ब्राह्मण ने कुछ दक्षिणा पाने के लालच में एक गुप्त ख़ज़ाने का पता क़ासिम को दिया जिसमें से ४० डेगें ताम्बे की मिलीं जिनमें १७२०० मन सोना भरा था जिसका मूल्य १ अरब ७२ करोड़ रु० होता था। इसके अतिरिक्त ६००० मूर्तियाँ ठोस सोने की थीं। जिनमें सबसे बड़ी का वज़न ३० मन था। हीरा-पन्ना मोती लाल और मानिक इतना था जो कई ऊंटो पर लादा गया।

जब यह ख़ज़ाना क़ासिम को मिल गया तब उसने ब्राह्मण को उसी दम क़त्ल करा दिया। साथ ही जिन सेनापतियों ने राजा से विश्वासघात किया था उन्हें भी कत्ल करा दिया गया। इसके बाद उसने असंख्य मन्दिरों और मूर्तियों को विध्वंस किया, हजारों हिन्दू स्त्री पुरुषों को कत्ल किया और अनेक गाँव लूट लिये। वह प्रत्येक गाँव के द्वार पर जाता और वहाँ के निवासियों को मुसलमान होने तथा बहुत सामान देने का आदेश करता था। आज्ञा पालन में तनिक भी देर होने पर वह कत्ल और लूट करा देता था।

यह धन ज़ज़िया कहाता था। अरब की शरह के मुताबिक काफिरों में धनवान को १२) साल मध्यम श्रेणी वाले को ६) साल और मज़दूरों को ३) साल देना पड़ता था। बादमें यह नियम होगया कि जीवन निर्वाह होने पर जो धन काफ़िर के पास बचे वह सब छीन लिया जाय।

फरिश्ता लिखता है कि मृत्यु-तुल्य दण्ड देना ही ज़ज़िया का उद्देश्य था। काफिर लोग इस दण्ड को देकर मृत्यु से बच सकते थे। क़ासिम ने अत्यन्त कड़ाई से वह कर वसूल करना शुरु किया। और आपस

की फूट के कारण कितने ही हिन्दू राजाओं ने इस नवागत अत्याचारी का स्वागत किया।

जिस समय सिन्ध पर यह गुज़र रही थी। उस समय भी अरब के व्यापारी मलावार तट पर अपनी बस्तियाँ बसा रहे थे। वे शान्त थे और हिन्दुस्तानी स्त्रियों से विवाह करते थे—तथा उनके रहने और घर बनाने में कोई भी बाधा न थी। 'हिशाम' का कबीला भागकर भारत में कोकण और कन्याकुमारी के पूर्वी तट पर बस गया था। लब्बे और नवायत जातियाँ उन्हीं के वंश की हैं। हिन्दू राजाओं ने इन विदेशी व्यापारियों की काफ़ी आवभगत की। उन्हें मसजिदें बनाने और ज़मीन ख़रीदने की आज्ञा देदी। इससे मालावार में बड़ी जल्दी ८ वीं शताब्दि में मुसलमान फैल गये। और उन्होंने अपने धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। वह झटपट फैला भी। इसके कारण थे। एक तो मुसलमानों में पादरी या पुरोहित न थे—प्रत्येक व्यक्ति धर्म प्रचारक था। दूसरे उनके वैभव, धन और वीरता से मलावार तट की दरिद्र जातियाँ प्रभावित हो गईं थीं। फिर उनके विचारों, स्वभावों रीतियों और चालचलन में एक नवीन कौतूहल था—और उनका धर्म सीधा सादा और सुबोध था। उनकी उपासना हृदयग्राही थी। वे दिनभर में अनेक बार ईश्वर का ध्यान करते थे। रेनान जैसे कट्टर नास्तिक और विद्वान् फ्रेंच लेखक ने एक बार लिखा था कि "जब मैं मस्ज़िद जाता हूँ तब मेरा हृदय एक अकथनीय शक्तिशाली भाव से उद्विग्न हो जाता है और मेरे मन में खेद उत्पन्न होता है कि मैं मुसलमान न हुआ।"

रेनान जैसों के हृदय पर जब यह प्रभाव पड़े तो औरों का तो कहना ही क्या है! उनमें नमाज़ की सफ़बन्दी, रोज़ों की सख्ती, खैरात और उश्र के नियम, परस्पर समता का व्यवहार ऐसी बातें थीं कि देखने वालों पर उनका असर पड़ता था।

यह वह समय था जबकि हिन्दू धर्म में एक विप्लव मच रहा था। बौद्ध जैनी, वैष्णव, शैव, शाक्त, परस्पर भयानक संघर्षों, कुरीतियों और अन्धविश्वासों में फँसे थे। ब्राह्मणों ने बौद्धों और जैनियों को नष्ट प्रायः

कर दिया था और शैव और वैष्णवों की प्रबलता हो रही थी। राजनैतिक व्यवस्था छिन्न भिन्न थी—प्राचीन राजघराने जर्जर हो गये थे और नये वंश उठ रहे थे। हार्दिक दुर्बलता और अन्धविश्वासों का हाल राज वंशों तक में गिर गया था। जिसका एक उदाहरण सुनिए—मालाबार कोदुंगलूर के राजा चेरामन पैरूमल ने स्वप्न देखा कि चांद के दो टुकड़े हो गये हैं। सुबह उसने अपने दरबारी विद्वानों से उसका अर्थ पूछा—पर किसी का भी उत्तर उसे न भाया। संयोग से एक मुसलमानों का काफिला लङ्का से लौट रहा था—उसके सर्दार तकीउद्दीन ने जो स्वप्न की व्याख्या की वह राजा को जंच गई। बस वह मुसलमान हो गया। उसका नाम अब्दुर रहमान सानीनी रक्खा गया। और अरब को चला गया। और वहां से उसने मलिक इब्ने दीनार शर्क़ इब्न मलिक, मलिक इब्न हबीब को मलाबार भेजा। इन्होंने ११ स्थानों पर मस्जिदें बनाई और इस्लाम का प्रचार किया।

राजा वहां से नहीं लौटा। ४ साल बाद मर गया। पर आज भी जब ज़मोरिन सिंहासन पर बैठाया जाता है उसका सिर मूँडा जाता है और उसे मुसलमानी लिबास पहनाया जाता है। एक मोपला उसके सिर पर मुकुट रखता है। राज्याभिषेक के बाद वह जाति बहिष्कृत हो जाता है। वह न तो अपने परिवार के साथ खा सकता है, न नायर लोग उसका छूआ खाते हैं। यह समझा जाता है कि ज़मोरिन अन्तिम चेरमन–पेरूमल का प्रतिनिधि है और उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है। अब भी जब कालीकट और ट्रावनकौर महाराज अभिषेक के समय तलवार कमर में बांधते हैं तब यह घोषणा करते हैं कि मैं इस तलवार को उस समय तक रक्खूंगा जब तक कि मेरा चाचा जो मक्के गया है, लौट न आयेगा।

दक्षिण के मोपले उन्हीं मुसलमानों के वंशधर हैं। उस समय उनका बड़ा महत्व था। मोपला-महा-पिल्ला का अपभ्रंश है। मोपला का अर्थ है "जेष्ट पुत्र या दूल्हा"। उन्हें बड़े अधिकार प्राप्त थे। मोपला नाम्बूतरी ब्राह्मणों के बराबर बैठ सकता था यद्यपि नायर ऐसा नहीं कर सकता था। मोपलों का गुरु थंगल राजा के साथ पालकी पर सवारी कर सकता था।

ज़मोरिन की कृपा से अरब के व्यापारी बहुत से उसके राज्य में बस गये राज्य को उनके व्यापार से अर्थलाभ भी था, साथ ही वे अपने पराक्रम से आस पास के राजाओं को परास्त करके उनकी ज़मीनों पर राजा का अधिकार करा देते थे, जहाँ २ राजा का अधिकार होता, मुसलमान व्यापारियों की मंडियाँ भी स्थापित हो जातीं। कालीकट के बंदरगाह की नींव इसी प्रकार पड़ी थी। राजा ने आज्ञा प्रचारित की थी कि मकवान जाति के प्रत्येक मल्लाह परिवार में से एक या अधिक आदमी इस्लाम धर्म ग्रहण करे। इसका फल यह हुआ कि जब मसूदी ने १० वीं शताब्दि में भारत की यात्रा की तब १० हज़ार मुसलमानों की बस्ती उसने चौल में पाई थी। इब्न बतूता ने खंभात से मलावार तक सर्वत्र मुसलमानों की अच्छी आबादी देखी थी और वे अच्छी हालत में थे। उसने गोआ को मुसलमानों के अधिकार में देखा था। हिनोर में भी मुसलमानों का राज्य था। मंगलौर में ४ हज़ार मुसलमान बसते थे। मद्रास की मुस्लिम जातियों का जीवन आरम्भ यहीं से होता है।

नज़ाद वली ने तेरहवीं शताब्दि में मदुरा और त्रिचनापल्ली में बहुत से मनुष्यों को मुसलमान किया। यह शख़्स तुर्क शाहज़ादा था। सय्यद इब्राहीम ने तेरहवीं शताब्दि के प्रारम्भ में पाण्ड्यों पर चढ़ाई की और १२ वर्ष उसने पाण्ड्यों पर राज्य किया। पर अन्त में वह हारा और मारा गया।

बाबा फख़रुद्दीन एक साधु था जो पेन्नुकोंडा में रहता था। उसने वहां के राजा को मुसलमान बनाया और मस्जिद बनाई। यह ११६८ ई० में मरा।

मदुरा प्रान्त में मुसलमानों ने १०५० ई० में प्रवेश किया। उनका नेता मालिकुल—मलूक था। इसके साथ एक बड़ा साधु अलियारशाह भी था, जो मदुरा की कचहरी में दफ़न है! पालेयन गांव में एक मस्जिद है जिसके लिये ११ वीं और १२ वीं शताब्दियों में ६ गांव धर्माते खाते कुण पाण्ड्य ने लगा दिये थे। यह दान १६ वीं शताब्दि में वीरप्पा नायक ने भी जारी रखा था।

चोल मण्डल के किनारे बहुतसी मस्जिदयां बन गई थी और वहां के राजाओं ने जो सुभीते इन मुसलमान व्यापारियों को दे रखे थे—उससे उन्हें बहुत लाभ था। 'वस्साफ़' लिखता है कि—"मावर समुद्र के उस किनारे को कहते हैं जो कोलम से नल्लोर तक फैला है। इसकी लम्बाई ३०० फरसङ्ग है। यहां के राजा को देव कहते हैं। जब यहां से बड़े २ जहाज़, चीन, हिन्द और सिन्ध के मूल्यवान् मालों से लदे गुज़रते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि ऊंचे २ पहाड़ बादबान लगाये पानी पर तैर रहे हैं। फारिस की खाड़ी व द्वीपों से ईराक़ और खुरासान, रूम और योरोप की सुन्दर चीजें यहां आती हैं और यहां से चारों ओर जाती हैं-क्योंकि यह व्यापार का केन्द्र है।" आगे चलकर वह लिखता है कि—

"कायल पहनम् में, किश के हाकिम मलिकुल इस्लाम जमालुद्दीन ने घोड़ों की आढ़त लगाई थी, प्रति वर्ष १० हज़ार घोड़े फारससे मावर आ थे जिनकी क़ीमत २२ लाख दीनार था।

रशीदुद्दीन के मतानुसार जमालुद्दीन १२९३ ई०में कायल का अधिकारी हुआ था और उसका भाई तक़ीउद्दीन उसका नायक था—यही व्यक्ति सुन्दर पाण्ड्य का मन्त्री रह चुका था। पाण्ड्य राज ने जमालुद्दीन के पुत्र फ़ख़रुद्दीन अहमद को दूत बना कर चीन के महाराज कुबुलेखां के साथ १२८६ में भेजा था।

इब्नबतूता का कहना है कि तामिल प्रान्तमें जब कि मदुरा का हाकिम ग़यासुद्दीन अहमनानी था—राजा पीरवल्लाल की सेना में २०००० मुसलमानों का एक दस्ता था। राजा के सूबेदार हरि अप्फा ओडयार की आधीनता में होनावर में मुसलमान हाकिम थे।

पाठक देखेंगे कि ७ वीं शताब्दि में दक्षिण में मुसलमान व्यापारी किस ढंग पर आकर धीरे-धीरे सैनिक, सेनानायक, मन्त्री, बेड़ों के अधिपति, दूत, अध्यक्ष और हाकिम तक बन गये।

परन्तु दक्षिण मे जिस प्रकार चुप चाप इस्लाम भारत में जड़ जमा रहा था—उत्तर में इसका रूप कुछ और ही था। मुलतान और सिन्ध को विजय

कर जब क़ासिम लौट गया, तब लगभग ३०० वर्ष तक और कोई आक्रमण नहीं हुआ। इस समय पच्छिम प्रान्त पर कुछ मुसलमान शासक थे–परन्तु काठियावाड़ गुजरात-कोकण—दायवल-सोमनाथ भडोत्र, खंबायत, सिहान, चोल में इनकी बस्तियाँ बस रहीं थीं। काबुल में एक ब्राह्मण राजा राज्य करता था। परस्पर के झगड़े खूब थे। परन्तु मुसलमानों से सभी की दिलचस्पी थी—यह अद्भुत बात है। सुलेमान सौदागर ने लिखा है—'बल्हार' (बल्लभिराय) के बराबर अरबों से हिन्दुस्तान में कोई राजा प्रेम नहीं करता।

८ वीं शताब्दि के अन्त में अफ़ग़ानिस्तान भी मुसलमानी तलवार के आधीन होगया था। और अफ़ग़ानों ने अब खैबर घाटी से छोटे २ धावे मारने प्रारम्भ कर दिये थे।

१०वीं शताब्दि में एक तुर्की गुलाम सुबुक्तग़ीन जो खुरासान को और ग़ज़नी को दख़ल कर बैठा था। भारत में घुस आया। उस समय पंजाब के राजा जयपाल थे। इन्होंने खैबर घाटी को सुरक्षित रखने का और उधर से किसी भी शत्रु को भारत में न घुसने देने की शर्तपर शेख़ हमीद नामक एक मुसलमान को पेशावर और खैबर का इलाका देकर नबाब बनादिया था।

सुबुक्तग़ीन को आगे बढ़ता देख महाराज जयपाल ने आगे बढ़ कर जलालाबाद पर छावनी डाल दी। यह स्थान खैबर घाटी के पच्छिमी मुहाने पर अफ़ग़ानिस्तान की सीमा में है। सुबुक्तगीन युद्ध का समय टालता रहा। महाराज जयपाल इस भेद को नहीं समझे। जब शीत पड़ने लगा और बर्फ गिरने लगी तब सुबुक्तगीन ने धावा बोल दिया। जयपाल की सेना सर्दी से निकम्मी हो गई थी उससे युद्ध करते न बना। निदान वे लौटे। परन्तु शेख हमीद ने इधर से घाटी का मुहाना रोकदिया। महाराज जयपाल घाटी में सेना सहित घिर गये। निरूपाय होकर उन्होंने बहुत सा धन हाथी घोड़े आदि देने का वचन देकर सन्धि करली। और सुबुक्तगीन के आदमियों को साथ लेकर लाहौर लौट आये। परन्तु देने लेने पर सुबुक्तगीन के आदमियों से महाराज का झगड़ा होगया। सुबुक्तगीन भारत में घुस आया। पेशावर

में युद्ध हुआ और राजा की पराजय हुई। उनकी समस्त सम्पदा लूट ली गई। राजा ने अग्नि कुण्ड में प्रवेश कर आत्मघात किया। यह शेख हमीद की नमक हरामी थी। पंजाब पर मुसलमानों का अधिकार होगया।

कासिम के आक्रमण के बाद बहुत से मुसलमान फकीर उत्तर भारत में फिरने लगे थे। उनकी तरफ हिन्दू शासकों का कुछ ध्यान भी न था। इनकी ज़ियारत करने तुर्किस्तान, फारस, अफ़गानिस्तान और बिलोचिस्तान से बहुत से मुसलमान आते, जिनकी कोई रोक टोक और देख भाल नहीं होती थी। बहुत से मुसलमान साधु हिन्दू साधुओं का वेश धारण करके मन्दिरों और मठों में रह जाते थे। प्रसिद्ध कवि शेखशादी सोमनाथ के मन्दिर में कुछ दिन हिन्दू साधु बनकर रह गया था—इस बात का ज़िक्र वह खुद अपनी 'बोस्ता' नामक किताब में करता है। ये सब लोग बहुधा जासूसी करते थे और भारत की खबरें मुसलमान शक्तियों तक पहुँचाते थे। तथा हिन्दू राजाओं की परिस्थिति का अध्ययन किया करते थे।

अली बिन उस्मान अलहज़वीरी जिसने कशाकुल महजूब की रचना की। यह गजनी का रहने वाला था। लाहौर में आकर बसा और १०७२ ई० में वहीं उसकी मृत्यु हुई। शेख इस्माइल बुखारी ग्यारहवीं शताब्दी में आया। फ़रीदुद्दीन अत्तार जो तज़किरतुल औलिया और मन्त कुत्तैर का रचयिता है, बारहवीं शताब्दी में आया। शेख मुईनुद्दीन चिश्ती ११६७ में अजमेर में आया। उस समय पृथ्वीराज जीवित थे। अजमेर के मन्दिर के महन्त रामदेव और योगीराज अजपाल ने इसके हाथों इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। चिश्तिया मठ के बड़े बड़े सूफियों में कुतुबुद्दीन बख्तियार काफ, फ़रीदुद्दीन गंजशकर निज़ामुद्दीन औलिया आदि थे। सुहरवर्दी सम्प्रदाय वालों में जलालुद्दीन तब्रीज़ी, क़ादरियों में जलालुद्दीन बुखारी, बाबा फ़रीद पाकपरनी थे। अब्दुल क़रीम अलजीली जिन्होंने सूफ़ी मज़हब के विद्वान इब्नल अरबी की पुस्तकों की टीका लिखी है, और इन्साने कामिल की रचना की है, १३८८ में यहाँ आया। इसी शताब्दी में सैयद मुहम्मद नेसूदराज़ ने महाराष्ट्र में बहुत कुछ इस्लाम का प्रचार किया। पीर सद्रुद्दीन

ने खोजा जाति को जन्म दिया और सैयद यूसुफ़उद्दीन ने मोमना को। इन सूफियों के अतिरिक्त बहुत से फकीर जिनका सम्बन्ध किसी भी मज़हब से न था। देश भर में घूमते थे इनमें शाह मदार, सखी सरवर और सतगुरु पीर प्रसिद्ध थे।

इन साधुओं ने छिन्न भिन्न हिन्दुओं में इस्लाम के प्रचार में कितनी सहायता दी है—इसपर विचार करना चाहिये। इन लोगों ने बिना ही ज़ोर ज़ुल्म के और बिना ही तलवार की सत्ता के मुसलमान धर्म का प्रचार किया। और यह उस समय अति सरल था क्योंकि जैसा अलबरूनी लिखता है हिन्दू धर्म इस योग्य न रह गया था कि उसमें कोई भी ब्राह्मणोत्तर व्यक्ति आत्मसम्मान से रह सके। ब्राह्मण और क्षत्रिय मानों उस काल में हिन्दू समाज के सर्वेसर्वा थे। इसके सिवा ये सभी समाचार-विनिमय करते थे।

बारहवीं शताब्दी में एक फ़कीर सैयद इब्राहीम शहीद भारत में आये और दक्षिण में बहुत से लोगों को इस्लाम की दीक्षा दी। इसके बाद बाबा फखरुद्दीन ने भी बड़ा भारी इस्लाम का प्रचार किया और पेन्नुकोण्डा के हिन्दू राजा ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। उधर यह प्रचार भीतर ही भीतर बढ़ रहा था और इधर इनके द्वारा दक्षिण भारत का व्यापार खूब उन्नत हो रहा था। मुसलमानों का इतना मान था कि उन दिनों हिन्दू राजाओं की ओरसे मुसल्मान एलची और राजदूत दूर देश चीन तक के दर्बार में भेजे जाते थे। मन्त्री और महामन्त्री के पद पर तो बहुत से मुसलमान थे। हिन्दू राजाओं की ओर से प्रान्तों के शासक मुसलमान नियत किये जाते थे और हिन्दू राजाओं के आधीन बड़ी बड़ी मुसलमान सेनाएँ थीं।

गुजरात के वल्लभी राजा बलहार ने अपने राज्य के अन्दर मुसलमानों का बड़े उत्साह से स्वागत किया था। काठियावाड़, कोकण और मध्य भारत के सभ्य हिन्दू राजाओं ने भी मुसलमान साधुओं का ख़ासा सत्कार किया था और उन्हें अपने राज्य में इस्लाम प्रचार में काफी सहायता दी थी। हिन्दू राजा इन मुसलमानों का इतना लिहाज़ करते थे कि एक बार

खम्भात में जब हिन्दुओं ने मुसलमानों की मसज़िद गिरा दी थी। तब राजाने हिन्दुओं को भारी दण्ड दिया और अपने ख़र्चसे मसजिद फिर बनवा दी।

११ वीं शताब्दी में वोहरों के गुरु यमन से आकर गुजरात में बसे। ये शिया सम्प्रदाय के थे। इससे प्रथम से, वहां नूरुद्दीन ने गुजरात के बहुत से कुनबियों, खेरवाओं और काछियोंको इस्लाम में शामिल कर लिया था। अभिप्राय यह है कि ८ वीं शताब्दि से लेकर १५ वीं शताब्दि तक बराबर समस्त भारत में मुसलमान साधु संत अपने धर्म का प्रचार करते रहे और लाखों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। इस समय तक भारतीयों पर इस्लाम का कोई राजनैतिक प्रभाव नहीं पड़ा था।

भारत पर क़ासिम के लगभग ३०० वर्ष बाद महमूद ने लूट का लालच देकर असंख्य बर्बरों को इकट्ठा कर धावा बोल दिया। इसने निरन्तर तीस बरस तक भारत पर आक्रमण किये और सत्तरह बार पश्चिमोत्तर भारत को तलवार और अग्नि से विध्वंस किया। इसने नगरकोट का मंदिर तोड़कर इसमें से ७०० मन सोना चांदी के बर्तन ७४० मन सोना २००० मन चांदी और २० मन हीरा मोती जवाहरात लूटे थे। थानेश्वर के आक्रमण में यह २ लाख हिन्दुओं को क़ैदी बनाकर ले गया। फरिश्ता लिखता है कि उस समय ग़ज़नी शहर हिन्दुओं की सी नगरी मालूम देता था। मदुरा की लूट में उसने ६ मूर्त्ति ठोस सोने की पाई। जिनके शरीर पर ११ रत्न थे। मदुरासे वह इतने ग़ुलाम बनाकर ले गया कि मुहम्मद अल-उटवी ने लिखा है कि महमूद ने ११ ग़ुलाम २।।) रुपये को बेचना चाहा था पर ख़रीदार न मिले। मदुरा को देखकर महमूद ने खुद कहा था कि यहां हज़ारों महल विश्वासी के विश्वास की भाँति दृढ़भाव से खड़े हैं जो संगमर्मर के बने हैं। यहाँ अनगनित हिन्दू मन्दिर हैं। अनन्त धन खर्च किये बिना नगरी इतनी सुन्दर नहीं बन सकती। दो सौ वर्ष के यत्न और परिश्रम बिना ऐसी नगरी का निर्माण भी नहीं हो सकता।

इसके बाद इसने गुजरात का प्रसिद्ध सोमनाथ का मन्दिर लूटा। यह विशाल मन्दिर ५६ खम्भोंपर आधारित था जिनमें अनगनित बहुमूल्य

रत्न लगे थे। ४० मन भारी सोने की जंज़ीर से एक भारी घन्टा लटक रहा था। उसमें ५ गज ऊँची शिवमूर्ति अधर थी। उसे अपने हाथों से तोड़कर असंख्य रत्नों का ढेर महमूद ने लूट लिया। और उस मूर्ति को गजनी ले गया। उसके टुकड़े टुकड़े करके एक टुकड़ा मस्जिद की सीढ़ियों और एक अपने महल की सीढ़ियों में लगा दिया। और उस मन्दिरके स्थान पर एक मस्जिद बनवा दी जो अब तक बनी है।

सुदूर गजनी से सिन्धु नदी को पार करके उजाड़ रेगिस्तानोंमें होकर गुजरना और इस तरह गुजरात के दक्षिण तक भारी २ धावे मारना कम आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि सिवाय दो चार राजाओं के और किसी ने उसे रोकने की चेष्टा तक नहीं की। इसका कारण तत्कालिक सामाजिक परिस्थिति की हीनता थी। जिसका वर्णन अलबरूनी--जो महमूद के आक्रमण में उसके साथ था इस प्रकार करता है—

"भारत बहुत छोटे २ राज्यों में विभक्त है। सब राज्य स्वतन्त्र हैं और परस्पर युद्ध में प्रवृत्त रहते हैं। ब्राह्मण अपने अधिकारों की रक्षा के लिए इतने व्याकुल हैं, और जाति भेद का ऐसा द्वेष भाव फैल रहा है कि वैश्यों और शूद्रों को वेद पाठ करते देखकर ब्राह्मण उनपर तलवार लेकर टूट पड़ते हैं। और उन्हें राज कचहरी में उपस्थित करते हैं जहाँ उनकी जिह्वा काट ली जाती है। ब्राह्मण सब प्रकार के राज कर से मुक्त हैं। हिन्दू बालाएँ सती हो जाती हैं। हिन्दू किसी देश को नहीं जाते, किसी जाति की श्रद्धा नही करते—वे अपने को और अपनी जाति को सर्व-श्रेष्ठ समझते हैं।"

हाय! मेगस्थनीज़ और हुएनसांग के काल का भारत यहाँ तक पतित हो गया था!!!

इस बीच में गज़नी और ग़ौरियों में तलवार चलपड़ी—ग़ौरियों ने महमूद का वंश नष्ट कर दिया। महमूद के कोई १५० वर्ष बाद मुहम्मद-ग़ोरी ने फिर भारत पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज ने युद्ध क्षेत्र के मैदान में उससे लोहा लिया और उसे परास्त करके बन्दी किया, फिर कुछ दण्ड

लेकर छोड़ दिया। ६ बार उसने आक्रमण किया और हार खाकर बन्दी हुआ तथा धन देकर छुटकारा पाया। यह तेरहवीं शताब्दी की बात है। इस समय भारत में चार प्रधान राजपूत वंश राज करते थे। १–दिल्ली और अजमेर में चौहान। २–कन्नौज में गहरवार। ३–गुजरात में सोलंकी और चित्तौड़ में सीसोदिया। ये चारों राजवंश यद्यपि परस्पर सम्बन्धी थे पर ये कट्टर शत्रु।

गुजरात के कुछ सोलंकी सरदार चौहानों की शरण में अजमेर चले आये थे। उनमें से एक ने राज सभा में अपनी मूछों पर ताव दिया–यह देख कर पृथ्वीराज के चचा कान्ह ने कहा—चौहानों के सामने कोई मूछों पर ताव नहीं दे सकता—और उन सरदारों का सिर काट लिया। पृथ्वीराज ने चचा की इस बात पर क्रुद्ध होकर आज्ञा दी कि कान्ह की आँखों पर चमड़े की पट्टी बाँध दी जाय जो सिवा युद्ध काल के कभी न खोली जाय। सोलङ्की सरदारों के मारे जाने के समाचार जब गुजरात के राजा मूलराज सोलंकी के पास पहुंचे तो वह सेना लेकर अजमेर पर चढ़ आया और सोमवती के युद्ध क्षेत्र में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का सिर काट लिया। इसलिये सोलंकी और चौहान जन्म शत्रु हो गये।

अनंगपाल तोमर दिल्ली का राजा था। दिल्ली उस समय छोटी सी राजधानी थी। पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द गहरवार दोनों ही उसके धेवते थे। उसने निस्सन्तान होने के कारण पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य दे दिया था। इससे जयचन्द मन ही मन में कुढ़ गया था। दूसरी बात यह थी कि देवगढ़ की यादवों की राजकुमारी की सगाई जयचन्द से हो गई थी। अभी विवाह न हो पाया था कि पृथ्वीराज बलपूर्वक राजकुमारी को ब्याह लाया। जयचन्द इससे क्रोध में जल भुन गया। उसने चिढ़कर राजसूय यज्ञ किया और उसी में अपनी पुत्री का स्वयंवर रचा। सभी आधीन राजाओं को बुलाकर सेना कर्म में नियुक्त किया, पृथ्वीराज नहीं बुलाये गये थे पर उनकी मूर्ति द्वारपाल के स्थान पर बनाकर खड़ी कर दी गई। पृथ्वीराज ने यह सुना, उसे यह भी मालूम था कि संयोगिनी उसे चाहती है, वह भेष

बदल कर अपने मित्र कवि चन्द बरदाई के साथ वहाँ पहुँच गया। संयोगिनी ने उपस्थित राजाओं को अतिक्रमण करके पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में जय-माल डाल दी। यह देख जयचन्द क्रुद्ध होकर उसे मारने को झपटा, पर पृथ्वीराज ने सिंह की भाँति झपटकर उसे उठा लिया और घोड़े पर चढ़ाकर तलवार खींचकर गहरवारों को ललकार कर कहा कि पृथ्वीराज चौहान जयचन्द की कन्या का हरण करता है, जो क्षत्रिय हो रोक ले।

तलवारें खटकीं। भयानक मारकाट मची। पृथ्वीराज की सेना में १०८ सेनापति थे, और वे दिल्ली से कन्नौज तक १।१ कोस के अन्तर पर अपनी २ सेना लिये सन्नद्ध खड़े थे। जयचन्द की सेना में १८ लाख सवार थे। जयचन्द के पुत्र ने ललकार कर कहा—क्षत्रिय होकर भागते क्यों हो, डोला रख दो और तलवारों से निबट लो, जो विजयी हो डोला ले जाय। संयोगिनी पालकी में बैठा दी गई, और घनघोर युद्ध हुआ। प्रतिदिन दिन भर युद्ध होता और सन्ध्या समय डोला आगे बढ़ता था। ६४ दिन युद्ध हुआ, ६४ सेनापति मारे गये। पृथ्वीराज के ६ लाख योद्धा इस युद्ध में काम आये। जयचन्द की भी आधी सेना कट गई।

सोरों में डटकर युद्ध हुआ। गंगा का जल लाल हो गया। अन्त में दिल्ली की सीमा आ गई और जयचन्द को हारकर लौटना पड़ा इससे उसकी क्रोधाग्नि कुचले हुये सर्प की भाँति भभक उठी।

सोलंकियों और गहरवारों ने मुहम्मदग़ौरी को लिखा कि यदि इस समय पृथ्वीराज पर आक्रमण किया जाय तो हम सहायता कर सकते हैं। मुहम्मदग़ौरी १ लाख २० हज़ार सवार लेकर चढ़ दौड़ा। जयचन्द और सोलंकियों की सेना भी सहायता के लिये पहुँच गईं। पृथ्वीराज उस समय संयोगिनी के प्रेम में मतवाला हो रहा था। उसने झटपट सेना तैयार की, परन्तु उसके बाँके बीर प्रथमही काम आ चुके थे। घरू शत्रुओं और विश्वास-घातियों की कमी न थी, केवल चित्तौर के अधिपति समरसिंह जो उसके बहनोई थे, अपनी सेना सहित उसके साथ थे। तलावड़ के मैदान में दोनों सेनाएँ छावनी डालकर पड़ गईं मुहम्मदग़ौरी ने छल करके कुछ अवकाश

माँगा और भयभीत होने का बहाना किया, फिर एक दिन रात को अचानक छापा मारा, चौहान झटपट तैयार होकर लड़ने लगे। मुसलमानों के पैर उखड़ गये, वे भागने को ही थे कि सोलंकियों और गहरवारों ने पीछे से धावा बोल दिया, मुसलमान फिर लौट पड़े। समरसिंह मारे गये। पृथ्वीराज पकड़े गये और मुहम्मदग़ौरी ने उन्हें क़त्ल करवा दिया। इस प्रकार दिल्ली के पतन के साथ भारत के हिन्दू साम्राज्य की तक़दीर का फैसला हो गया। और सदा के लिये हिन्दुओं का दीप निर्वाण हो गया।

इसके दूसरे ही वर्ष उसने कन्नौज पर धावा बोल दिया। उस समय जयचन्द की सेना में ५० हज़ार सवार मुसलमान थे। वे ठीक युद्ध के समय उलट पड़े और राजा की सेना को काटने लगे। राठौरों की सेना तितरबितर हो गई। और जयचन्द कुतुबुद्दीन एबक का तीर खाकर घोड़े समेत गंगा में गिर गया और डूब गया। कन्नौज पर उसका अधिकार हो गया। इसने कन्नौज में १००० मन्दिर तुड़वाये। लूट का सोना और चाँदी ४००० ऊंटों पर लादकर अफ़ग़ानिस्तान ले गया। वह सब लूट का माल और लाखों स्त्री पुरुषों को ग़ुलाम बनाकर साथ ले गया तथा अपने सेनापति कुतुबुद्दीन को दिल्ली का राज्य दे गया। यह कुतुबुद्दीन शहाबुद्दीन का ग़ुलाम था। यही ग़ुलाम प्राचीन भारत की क़िस्मत का विधाता बना और भारत में मुसलमानी राज्य की जड़ जमी।

---

(६)

पठान

—:※:—

इस प्रकार बारहवीं शताब्दि में दिल्ली के सिंहासन पर पठानों का साम्राज्य स्थापित हुआ जो ३३१ वर्ष तक स्थिर रहा।

पठानों के लोमहर्षण अत्याचार प्रसिद्ध हैं। पर उनमें भी आत्म-कलह का अन्त न था। वे छल, बल, कौशल से हिन्दू राज्यों को हड़पने लगे।

ब्लाकमैन साहब ने लिखा है कि—

"हिन्दुओं का धन ऐश्वर्य ही उनके नाश का कारण हुआ है। इसीसे पठान लोग उसे लूटने को अग्रसर हुये। हिन्दू धर्म उनके राजकीय कामों में विघ्न डालता था। अनगिनत तीर्थ पठानों ने विध्वंस कर डाले। तीर्थ जाने की शाही आज्ञा बिना प्राप्त किये कोई तीर्थ यात्रा नहीं कर सकता था। १४ वीं शताब्दि के मध्यम भाग में प्रत्येक हिन्दू परिवार के वयस्क मनुष्यों की गणना करके आज्ञा निकाली गई थी कि धनवान पुरुष से ४०) मध्यम से २०) और दरिद्र से १०) जज़िया लिया जाय।

कुतुबुद्दीन एबक ने हाँसी, दिल्ली, मेरठ, कोयल, रणथम्भोर, अजमेर, ग्वालियर, कालिंजर और गुजरात की ईंट से ईंट बजा डाली। हजारों मन्दिर विध्वंस कर दिये। लाखों नरनारी काट डाले।

कुतुबुद्दीन के गुलाम मोहम्मद इब्ने बख्तयार ने एक सेना लेकर बिहार और बंगाल की ओर कूच किया। मार्ग में उसने काशी के हज़ारों मन्दिरों को विध्वंस कर दिया। बिहार और बंगाल में पाल और सेनवंशी

राजा राज्य करते थे उन्हें छल से मार डाला। बिहार में उस समय १२००० बौद्ध भिक्षु रहते थे। वहाँ उनका एक बड़ा भारी पुस्तकालय और विद्यापीठ थी। उन सब भिक्षुओं को क़त्ल कर दिया गया और पुस्तकालय और विद्यापीठ को जलाकर ख़ाक कर दिया। इसके बाद ही अलतमश ने उज्जैन पर आक्रमण किया और महाकाल के मन्दिर को विध्वंस कर वहाँ की करोड़ों रुपये की सम्पदा लूट ली।

इस गुलाम वंश के कुल ८ बादशाह हुये और इन्होंने लगभग १०० वर्ष दिल्ली में राज्य किया।

इसके बाद ख़िलजी वंश का राज्य हुआ जो ३० वर्ष तक रहा। इस वंश के ३ बादशाह हुये। फिरोजशाह इस वंश का प्रथम बादशाह था। उसने जैसलमेर पर आक्रमण किया। उस समय अपने सतीत्व की रक्षा के लिये निरुपाय हो वहाँ की २४०० स्त्रियाँ आग में कूद कर जल मरीं। इसका भतीजा अलाउद्दीन दक्षिण गया और देवगढ़ के राजा रामदेव से कहा कि मैं चचा से लड़कर आया हूँ मुझे शरण दें। राजा ने शरण दे दी। पर अलाउद्दीन ने अवसर पाकर उत्सव के समय—जब कि राजा की सेना अन्यत्र गई थी, लूट मार मचा दी। करोड़ों का धन लूटकर महल भस्म कर दिया, राजवंश को क़त्ल कर दिया। चित्तौर को पद्मिनी के लिये चढ़ गया और युद्ध के बाद वहाँ १३ हज़ार राजपूत स्त्रियाँ प्रतिष्ठा बचाने को आग में पद्मिनी के साथ जल मरीं। गुजरात के राजा करण को मार उसकी रानी और बेटी को छीन लिया। रानी से स्वयं विवाह किया और बेटी से अपने पुत्र का।

इसके शासन में हिन्दुओं की अति दयनीय दशा हो गई थी। एक बार काज़ी ने उससे कहा था—"आपके राज्य में काफ़िरों की ऐसी दुर्दशा हो गई है कि उनके स्त्री बच्चे मुसलमानों के द्वार पर रोते और भीख माँगते फिरते हैं। इस शुभ काम के लिये यदि ख़ुदा आपको जन्नत न भेजे तो मैं जिम्मेदार हूँ।

फ़ीरोज़शाह के शासन में यह विधान था कि ज्यों ही कोई शाही नौकर हिन्दुओं से कोई कर चाहे त्योंही वह अति विनीत भाव से सिर झुका कर दे

दे। यदि कोई मुसलमान किसी हिन्दू के मुँह में थूकना चाहे तो उसको चाहिये कि सीधा खड़ा रहकर मुँह को खोले रहे जिससे उस मुसलमान को अपना मतलब हासिल करने का पूरा सुभीता रहे। मुँहमें थूकना किसी बुरी भावना से नहीं सिर्फ हिन्दुओं की राजभक्ति की परीक्षा के लिये है। केवल इस्लाम की महिमा प्रकट करना और हिन्दू धर्म से अतुलनीय घृणा प्रदर्शन करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। जो किसी प्रकार भी अनुचित नहीं। क्योंकि खुदा ने कहा है कि क़ाफ़िरों को लूटो, उन्हें गुलाम बनाओ और उन्हें क़त्ल कर दो। जो इस्लाम न कबूल करें उनसे ज़बरन कराओ। हिन्दुओं से निकृष्ट व्यवहार करना हमारा धर्म है यह मुहम्मद साहब की आज्ञा है। जज़िया लेकर काफिरों को छोड़ देना वाहियात है यह सिर्फ अबूहनीफ़ की राय है और सबने क़त्ल का ही हुक्म दिया है।"

पाठक सोच सकते हैं कि यह मनोवृत्ति कितनी ज़बरदस्त थी, और इसने किस प्रकार हिन्दुओं को विचलित कर दिया होगा।

इसके बाद तुगलक़ बंश के ६ बादशाहों ने लगभग १०० वर्ष राज्य किया। मुहम्मद तुग़लक़ एक भयानक ख़ूनी आदमी था। वह हज़ारों स्त्री पुरुष बालकों को एक जगह घिरवाकर उनमें शिकार के शौक से भीतर घुसता था और विविध प्रकार के खेलों से उन्हें क़त्ल करता था। नाक कान काट लेना, आँखें निकलवा लेना, सिर में लोहे की कील ठोकना, आग में जलवाना, खाल खिंचवाना, आरे से चिरवाना, हाथी से कुचलवाना, सिंह से फड़वाना, साँप से डसवाना और सूली पर चढ़वाना उस के दण्डों के प्रकार थे।

फिरोज़शाह तुगलक ने जब नगरकोट को विजय किया तब गोमांस के टुकड़े तोबड़ों में भरकर हिन्दुओं के गले में लटकवा दिये। और बाज़ारों में फिराकर खाने की आज्ञा दी। जिसने इन्कार किया उसीका सिर काट लिया। उसने सुना कि एक ब्राह्मण मूर्तिपूजा करता है और हिन्दुओं को दर्शन के लिये बुलाता है। उसने ब्राह्मण और दर्शक सभा को जिन्दा फूँक देने का हुक्म दे दिया। इसने सैकड़ों मन्दिर विध्वंस कर दिये। जब वह जम्बू गया और

वहाँ का राजा भेंट लेकर मिलने आया तो फिरोज़शाह ने उसके मुँह में गोमांस भरवा दिया।

एक पठान बादशाह ने एक हमले में मेवात के एक लाख मनुष्यों को मार डाला था। दूसरे पठान बादशाह ने एक हिन्दू राजा की जीती खाल खिंचवा ली थी। एक पठान बादशाह ने अपनी राजधानी दिल्ली से उठवा-कर देवगिरी ले जाने का इरादा करके दिल्ली के सब निवासियों को वहां चल बसने का हुक्म दिया था। जिससे हजारों नरनारी मार्ग ही में मर गये थे। एक पठान बादशाह ने कन्नौज के बालक, बूढ़े, बच्चों सभी को क़त्ल करवा दिया था। सैकड़ों नरमुण्ड उसने अपने नगर की प्राचीर पर कटवाकर लगा दिये थे। एक बादशाह ने दक्षिण में सत्रह वर्ष में ५ लाख हिन्दू मरवा दिये थे। दक्षिण के एक मुसलमान राजा का यह स्वभाव था कि यदि सड़क पर किसी की बारात जाती देखता तो दुलहिन को पकड़वा मँगाता और उसका सतीत्व नष्ट करके वापस कर देता था। इन लोमहर्षण अत्याचारों से छिन्न भिन्न होकर सारे देश का रस सूख गया और समग्र देश में विषाद और शोक की छाया भर गई। जातीयता अतल पाताल में जा डूबी।

———

(१०)

मुग़ल और तैमूर लंगडा

—:※:—

ईसा की तेरहवीं शताब्दि के प्रारम्भ से 'चंगेज़ खां' ने पूर्वीय एशिया से निकल कर उत्तरीय चीन तथा तातार और अधिकांश एशिया को विजय कर लिया था। सन् १२२७ में चंगेज़ खां की मृत्यु हुई। दूसरे ६८ वर्ष के अन्दर चंगेज़ खां के उत्तराधिकारियों ने भारत को छोड़ कर लगभग शेष समस्त एशिया और योरोप के एक बहुत बड़े भाग को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया। योरोप पर यह हमला सन् १२३८ में हुआ। योरोपियन इतिहास लेखकों का कहना है कि इससे पूर्व ईसा को ८ वीं शताब्दि में जब अरबों ने यूरोप पर आक्रमण किया था उस समय से इस आक्रमण तक और कोई भयङ्कर आपत्ति यूरोप पर नहीं आई थी। कुछ ही वर्षों में समस्त रूस पोलेन्ड वलकन हंगेरी, यहां तक कि वाल्टिक समुद्र और पश्चिम में जर्मन तक आधे से अधिक योरोप मुग़लों के आधीन हो गया। रूस पर २०० वर्ष तक मुग़लों का अधिकार रहा। ये मुग़ल बौद्ध धर्मानुयाई थे। स्वयं चंगेज़ खां बौद्ध था। और मंगोलिया के प्राचीन मूर्ति पूजक धर्म को भी मानता था। इन्हीं बौद्ध मुग़लों ने एशिया और योरोप को अधिकांश में विजय किया। इन्होंने मुस्लिम ईरान और मुस्लिम ईराक़ को फ़तह किया था। इसके बाद चंगेज़ खां के पौत्र हलाकू ने पराजित ईरानियों और अरबों से इस्लाम मत ग्रहण किया।

तैमूर लंगड़ा

इस नाम का चग़ताई खानदान और तातारी नस्ल का एक मुसलमान था जो कुछ गांवों पर अधिकार रखता था। और बहुत से रेवड़ों, ऊंटों और घोड़ों का स्वामी था। तथा अपने इलाके में दबदबे वाला आदमी था। इस की एक अति सुन्दरी पुत्री थी जिसे बड़े २ बादशाह मांगते थे। जिनमें तुर्किस्तान का बादशाह भी था। पर वह कहीं भी शादी करने को राज़ी न था। इसे गुप चुप गर्भ रह गया यह जान कर पिता को अत्यन्त क्रोध हुआ परन्तु कन्या ने कहा-पिता क्रोध न करो—यदि इस रहस्य को जानना है तो प्रातःकाल मेरे कमरे में आइये। पिता ने प्रातःकाल आकर देखा तो सूर्य की एक किरण कमरे में खेलती पाई गई और देखते २ गायब होगई, तब से पिता को निश्चय होगया कि कन्या सूर्य से गर्भवती है और उस गर्भ से तैमूर का जन्म हुआ। वह अपने को सूर्य का पुत्र कहता था और इसी कारण मुग़ल बादशाह और शाहज़ादे अपने झण्डे पर सूर्य का चिन्ह लगाते थे। उसके जन्म पर ज्योतिषियों ने कहा कि यह अनेक राजों को विजय करेगा। यह शस्त्रों का शौकीन साहसी और वीर था। वह बच्चों के साथ खेल में बादशाह बनता और किसी को वज़ीर और मुसाहब बनाता। एक बार ऐसा हुआ कि जब तैमूर बादशाह बना तख्त पर बैठा था ओहदेदार इधर उधर खड़े थे तब एक लड़के ने जो चौबदार बना था कहा—"हुजूर एक ऊंट वाला तालाब में गिर गया है"।

तैमूर—अगर तालाब में जङ्गला न था तो सारवान को हुक्म दिया जाता है कि ऊंट को जिन्दा निकाले। वरना जुर्माना दे।

दूसरा लड़का—हुजूर एक बकरी के बच्चे को भेड़िया लेगया।

तैमूर—इसका कारण गड़रिये की लापरवाही है उसके चूतड़ों पर दो दर्जन बेंत लगादो।

तीसरा लड़का—हुजूर हमने एक चोर को पकड़ा है।

तैमूर—उसे फांसी लगा दो।

लड़कों ने उसे फांसी चढ़ा दिया और वह मर गया। यह देख लड़के भय-भीत हो भाग गये। जब उस लड़के के पिता और गांव वालों ने सुना तो हथियार बांध तैमूर को मारने को चढ़ दौड़े इधर तैमूर के दोस्त हिमायती और घर वाले भी जुट गये। ख़ासा युद्ध ठन गया-अन्त में मैदान तैमूर के हाथ ही रहा। इस घटना से तैमूर की ख़ासी प्रसिद्धि हो गई। उसके पास लड़ाकू लोगों का गिरोह बढ़ने लगा। एक बार उसने एक पड़ौसी सरदार के एक गांव पर धावा मार कर गांव पर अधिकार कर लिया। यह गांव उसकी रियासत के बीच में था—अन्त में उसने तैमूर को मार पीट कर भगा दिया। तैमूर थका भूखा प्यासा लौटा तो एक स्त्री से कुछ खाने को मांगा। उसने एक तश्तरी गर्मा गर्म पुलाव दिया। तैमूर ने बहुत खाया—उसने जल्दी से हाथ घुसेड़ दिया ' हाथ जल जाने पर वह हाथ हिला २ कर कहने लगा ओफ़ बहुत गर्म है'। स्त्री ने हंस कर कहा—तुम भी तैमूर की तरह उतावले हो जिसे मुल्क फ़तह करना ही नहीं आता-पर बहादुर बनता है। जो किसी दुश्मन के मुल्क में बीच में एक गांव पर क़ब्जा पाकर समझ बैठता है अब मैं जल्द बादशाह बन जाऊंगा। मूर्ख यह भी नहीं जानता कि जो आदमी अपने हाथ को बचाना और सारा खाना खाना चाहे उसे पहले इर्दगिर्द को समेटना और फिर पीछे बीच में हाथ डालना चाहिये।

स्त्री की बात उसे लग गई। और उसने अपने गांव में आकर फिर से सेना भर्ती की और आस पासके इलाकोंपर कब्जा करना शुरू कर दिया। शीघ्र ही सुलतान मुहम्मद के सारे इलाके को कब्जे में कर लिया और अन्त में सुलतान को भी पकड़ कर मार डाला। कुछ दिन बाद काबुल के बादशाह को क़त्ल कर उस पर भी क़ब्जा कर लिया।

अब उसने भारत की ओर मुंह फेरा।

पहले उसने क़ुरआन शरीफ़ से शकुन लिया। उसको खोल कर नियत स्थान पर पढ़ा गया तो लिखा था...''ऐ पैग़म्बर काफिर और मूर्ति पूजकोंके साथ युद्ध करके उन्हें क़त्ल कर'' इसके बाद उसने २००० सवार अपने सामने बुलाए और कहा—आप जानते हैं कि हिन्दुस्तान के आदमी मूर्ति

और सूर्य की पूजा करने वाले काफिर हैं। खुदा और रसूले खुदा का हुक्म है कि ऐसे काफिरों को क़त्ल करें । मेरा इरादा हिन्दुस्तान पर जहादकी चढ़ाई करने का है। इस पर सब लोग 'आमीन अल्ला' चिल्ला उठे। तब अवसर पा तैमूर ने सन् १३८९ ई० में भारत की ओर बाग मोड़ी।

चौदहवीं शताब्दि पठानों के स्वच्छन्द अत्याचारों से भरपूर व्यतीत हुई थी तभी मध्य एशिया का यह प्रसिद्ध लंगड़ा तैमूर असंख्य तातारी भेड़ियों को लेकर भारत पर चढ़ आया उसके साथ ९२ हजार सवार थे। उस समय दिल्ली के तख्त पर मोहम्मद तुगलक था। तैमूर बिना रोक टोक सेना की सहायता से सिन्धु महानद को उतर आया। और तेज़ी से आगे बढ़ने लगा। जिस प्रदेश और नगरी में गुजरता उसी को लूटता हुआ· घरों को जलाता-निरपराध स्त्री पुरुषों को कैद करता बढ़ा चला आया । भटनेर में उसने १ घन्टे में १० हजार हिन्दूओं को करल किया। दिल्ली पहुँचते २ एक लाख कैदी उसके साथ होगये। उन्हें भोजन देना जब कठिन होगया तब हुक्म दिया कि १५ वर्ष की अवस्था से अधिक के स्त्री पुरुष कैदी करल कर दिये जांय। लाखों का ढेर लग गया और खूनकी नदी बह गई। पठानों की कायर और आलसी सेना शीघ्र ही छिन्न भिन्न होगई। दिल्ली में तैमूर ने प्रवेश किया बादशाह गुजरात भाग गया। दिल्ली वालों ने अभय बचन लेकर द्वार खोल दिया। और आत्म समर्पण किया। भीतर घुसते ही ५ दिन तक तैमूर ने कत्ले आम कराया। धांय धांय, नगर भस्म होने लगा। लूट, हत्या, सतीत्वनाश और नरहत्या का अखण्ड राज्य ५ दिन तक चला। तैमूरी सेना के एक एक आदमी ने सौ सौ नागरिकों को ध्वंस किया और १ लाख आदमी करल करके फिरोज़शाही मस्जिद में १६ वीं नमाज़ पढ़ी। तैमूर ने अपने विजय उत्सव के ये दिन सुरा और सुन्दरी सेवन में व्यतीत किये। दिल्ली से उसने मेरठ पर धावा बोल दिया और पहुँचते ही हिन्दुओं का सिर काटना शुरू कर दिया। ५० हजार स्त्री पुरुष करल कर दिये, और हजारों जवान स्त्री और बच्चे कैद कर लिये। प्रत्येक सिपाही के हिस्से में २० से लेकर १०० दी तक आये थे। यहां से वह हरद्वार गया—वहां गंगा का पर्व था—बहुत

भीड़ थी—उसने मेले में कत्लेआम बोल दिया—गङ्गा का जल खून से लाल होगया। फरिश्ता लिखता है—

"मुग़ल सेना लूटने की लालसा से महा नगरी दिल्ली के भिन्न २ स्थानों पर पाग़ल की भाँति छूटी थी। लूटे हुए द्रव्य को उठाना कठिन हो गया था। वे लोग जाति, आयु, धर्म किसी का भी ख़याल न करके सब को क़त्ल करते थे। मुर्दों से सड़कें रुक गईं थीं। वह भयंकर दृश्य वर्णन करना अशक्य है। अनुमान १ लाख नर नारी इन पाँच दिनों में दिल्ली में मारे गये थे। तैमूर अन्त में महामारी, दुर्भिक्ष और अराजकता भारत में छोड़कर अपरिमित धन और असंख्य क़ैदी लेकर स्वदेश को लौट गया। उसके साथ ही पठानों की शक्ति भी धूल में मिल गयी और शासन सैयदों के हाथ आया—परन्तु इनका शासन दिल्ली के आस-पास था। चारों ओर छोटे २ मुस्लिम राज्य बन गये थे। इन्होंने ३७ वर्ष राज्य किया। अब लोदी वंश आया। परन्तु पठानों के जुल्म तो उसी भाँति चल रहे थे। सिकन्दर लोदी मन्दिरों और मूर्तियाँ तोड़ने और हिन्दू तीर्थों और गङ्गा-यात्रा को रोकने में लगा हुआ था। एक ब्राह्मण को हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का उपदेश देने के कारण पकड़वा मँगवाया गया और अपना उपदेश लौटाने को कहा गया, पर उसने जब स्वीकार न किया तो उसका सिर कटवा लिया गया।"

तुजक तैमूरी में लिखा है कि प्रत्येक सिपाही के हिस्से में १५ हिन्दू आये थे। जो क़त्ल कर दिये गये। इस प्रकार दिल्ली में १३ लाख ८० हज़ार हिन्दू क़त्ल किये गये!

इस कार्य को करके उसने ज़मीन में गिरकर ईश्वर को धन्यवाद दिया कि जिस काम के लिये वह हिन्दुस्तान आया था वह काम पूरा हुआ।

इस विजय के बाद वह क़ाबुल लौट गया, अब वह बेशुमार धन का स्वामी और महान् वैभव का अधिकारी था। इतिहासकार कहते हैं कि कोई आदमी इसकी वीरता और सम्पत्ति का अनुमान नहीं कर सकता था। वह ८ साल तक सेनाओं को पेशगी तनख़ाह देता रहा। और २५ साल

२ मास २ दिन शासन करने के बाद मृत्यु को प्राप्त हुआ। और क़ाबुल में दफ़ना दिया गया।

तैमूर के बाद उसका पुत्र सुल्तान मीराशाह क़ाबुल की गद्दी पर बैठा। इसकी सारी शक्तियाँ सुल्तान काशगर से युद्ध करने में ख़र्च होती रहीं। इसने उन्नीस वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद इसका पुत्र सुल्तान अबू-सईद गद्दी पर बैठा। यह निष्ठुर और ऐयाश था—इससे नाराज़ होकर सरदारों ने इसे मार डालने का इरादा किया, पर यह भाग गया। तब उन्होंने इसके छोटे भाई को गद्दी पर बैठाया उसने गद्दी पर बैठते ही अपने तमाम सरदारों को क़त्ल करने का हुक्म दे दिया। इसपर सरदार बड़े घबराये और उसे गद्दी से उतार फिर बड़े भाई को गद्दी पर बैठाया। इसके बाद इस का बड़ा पुत्र सुल्तान शेख़उमर गद्दी पर बैठा—यह दयालु और न्यायी था, प्रजा इसे बहुत पसन्द करती थी। इसने लड़ाई झगड़े न किये अपर प्रजा पालन में ही सन्तुष्ट रहा। इसे कबूतर उड़ाने का बड़ा शौक़ था—एक बार वह कबूतर उड़ाते हुए महल से पैर फिसल जाने से गिर गया और मर गया। इसने ४ वर्ष २ मास ७ दिन राज्य किया।

इस ख़ानदान का पाँचवाँ बादशाह सुल्तान महमूद कट्टर मुसलमान था—इसने बारम्बार हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की। यह सदा अपने राज्य के बढ़ाने की धुन में रहता और दिन भर में कई बार क़ुरान पढ़ता। हिन्दुस्तान पर चढ़ाइयाँ कीं और बहुत से मन्दिरों को ढाया और लूटा।

एक बार उसने एक पठान बादशाह पर चढ़ाई की और विजय प्राप्त की। सायंकाल को जब वह रणक्षेत्र में हज़ारों लाशों को रौंदता हुआ गर्व से फूला जा रहा था तब एक घायल ने तीर मारकर उसका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार इस प्रसिद्ध योद्धा का अन्त हुआ।

इसके बाद बाबर ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया। उस वक्त दिल्ली की गद्दी पर कमज़ोर पठान बादशाह इब्राहीम लोदी राज्य करता था।

इन्हीं दिनों में मेवाड़ में महाराना संग्रामसिंह जी चमके थे। इन्होंने सम्मुख युद्ध में १८ बार दिल्लीश्वर को और मालवा के मुसलमान बादशाह

को परास्त किया था। इस प्रकार १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही पठानों की लीला समाप्त हुई थी और मुगलों की शक्ति सञ्चित होने के लिये समय की प्रतीक्षा करने लगी थी।

परन्तु इतना होने पर भी हिन्दू संगठित नहीं हो रहे थे। तैमूर के बाद से अकबर के समय तक १५८ वर्ष का दीर्घ काल एक प्रकार से अराजक-काल था। दिल्ली के तख़्त में न शक्ति थी, न दृढ़ता थी। परस्पर के युद्ध जारी थे। पठानों की मुसलमानी सत्ता निर्मूल वृक्ष की भाँति अधर काँप रही थी। हिन्दू यदि उसे उस समय एक धक्का देने योग्य भी होते तो वह बह जाती।

क़ासिम ने जब ७ वीं शताब्दी में आक्रमण किया था तब से और ८०० वर्ष बीत जाने पर १६ वीं शताब्दी में बड़ा अन्तर था। क़ासिम से लड़ाई से मुठभेड़ की गई थी। किसी ने क़ासिम को आत्म समर्पण नहीं किया था। लाहौर का राजा जयपाल जब महमूद से पराजित हुआ तो उस ने ग्लानि के मारे स्वेच्छा से अपने को अग्निकुण्ड में डालकर यश स्थिर रखा था, यह हम पीछे लिख चुके हैं।

क़ासिम के आगमनकाल में प्रायः सर्वत्र ही हिन्दू राज्य था। महमूद के आक्रमण तक भी इसमें कमी न हुई थी। महमूद ने चेष्टा करके पंजाब का कुछ अंश अधिकृत किया, पीछे मुहम्मदग़ौरी के अन्तिम आक्रमण के समय बारहवीं शताब्दी के अन्त में भी दिल्ली की हद को छोड़कर सर्वत्र हिन्दू राज्य था। इसके बाद धीरे २ एक-एक करके हिन्दू राज्य नष्ट होने लगे और मुसलमानी राज्य स्थापित होते गये। प्रथम बिहार फिर पच्छिमी बंगाल उसके बाद पूर्वी बंगाल भी मुसलमानों के आधीन होगये। मालवे और उज्जैन में अभी तक हिन्दू राज्य थे—तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक गुजरात में हिन्दू राज्य रहे। काश्मीर चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में मुसलमानों के हाथ पड़ा। अकबर के समय तक उड़ीसा हिन्दू राज्य के आधीन था। बदाऊँनी ने लिखा है—उड़ीसा का राजा अन्य राजा की अपेक्षा सैन्य बल में प्रसिद्ध थो। अकबर ने उससे मेल करने को दूत भेजे थे। सन् १९६० में वह मुसलमानों के हाथ में आया।

इसीके ५ वर्ष पीछे दक्षिण का हिन्दू राज्य विजयनगर मुसलमानों के हाथ लगा। उसके दक्षिणी भाग के हिन्दू राजाओं ने १८ वीं शताब्दी तक स्वाधीनता की रक्षा की।

सब से प्रथम अकबर ने दिल्ली में बैठकर मध्य भारत के हिन्दू राज्यों को छीनना शुरू किया। १६ वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में हिन्दू राजा हिमालय के उच्च प्रदेशों में शक्तिशाली थे। उनके पास प्रायः १ लाख पैदल और १० हज़ार सवार थे। राजपूताने ने यद्यपि सिर झुका लिया था, पर हिन्दू शक्ति वहाँ भी प्रभावशाली थी। बाबर ने लिखा है कि जिस समय मैंने दिल्ली अधिकृत की थी, उस समय दक्षिण में विजयनगर और राजपूताना में चित्तौड़ ये दो प्रबल शक्तियाँ थीं। अकबर के समय तक जोधपुर के हिन्दू राजा के पास ८० हज़ार सवार थे। उस समय बुन्देलखण्ड का भी राजा महा शक्तिशाली था। आसाम कूचविहार टिपरा और अफ़ग़ान प्रबल हिन्दू राजाओं के आधीन थे। और मुसलमानों के भी अधिकृत प्रदेशों में अधिक शक्तिशाली हिन्दू ज़मींदार और हिन्दू प्रजा थी।

बदाऊँनी ने लिखा है:—

"हिन्दुओं की बराबर प्रबल प्रतापान्वित पठान और मुग़लों में एक भी जाति विद्यमान न थी।" ब्लाकमैन साहेब भी कहते हैं कि—"भारत वर्ष एक दिन भी सम्पूर्ण रूप से मुसलमानों के आधीन नहीं हुआ। भारत का सुविस्तृत क्षेत्रफल और असंख्य हिन्दू अधिवासी गण आक्रमण करने वालों से कहीं अधिक थे।"

परन्तु इतना होने पर भी हिन्दू संगठित न हो सके और उनकी राज-नैतिक शक्ति छिन्न भिन्न ही रही।

---

(११)

महान् मुग़ल साम्राज्य

बाबर ही का आगमन-भारत में सच्चे मुग़ल साम्राज्य की नींव जमाने का कारण हुआ और मुग़लों का आगमन भारत में सच्ची मुस्लिम सत्ता की स्थापना का कारण हुआ। यद्यपि वह काल भी हिन्दुओं के विपरीत न था। इस समय देश में कई हिन्दू और मुसलमान शासक थे--और देश भर में अराजकता फैल रही थी। पर चित्तौर की गद्दी पर प्रबल पराक्रमी राणा सांगा उपस्थित थे। यह हम पहले कह चुके हैं कि उसने १८ बार दिल्ली के पठान बादशाहों को विजय किया था।

मुग़लवंश का संस्थापक बाबर एक उद्यमी साहसी योद्धा था। यह दयालु और उदार भी था। वह तैमूर की छठी पीढ़ी में था-और इस लिए दिल्ली को अपनी सम्पत्ति समझता था। उसने सरहद और बुख़ारा प्राप्त करने की बड़ी चेष्टा की पर विफल रहा। तब उसने काबुल फतह किया और २२ वर्ष वहां राज्य किया। इसके बाद उसने भारत पर धावा बोल दिया-और अनायास ही दिल्ली आगरा उसके हाथ आगये। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने पुत्र हुमायूं को आस पास ते प्रान्त विजय करने को भेज दिया और शीघ्र ही बियाना धौलपुर ग्वालियर जौनपुर उसके अधिकार में आगये। उसकी इस सफलता में उसका हिन्दू वजीर रेमीदास को भारी श्रेय है जो अत्यन्त बुद्धिमान, चतुर और दूरदर्शी आदमी था।

अन्त में उसे राणा सांगा के साथ युद्ध करना पड़ा। कनुवा के मैदान में मुठभेड़ हुई-और बाबर को सांगा से हार खानी पड़ी और सन्धि कर सांगा

को कर देने का प्रण किया। परन्तु इसी बीच में कुछ विश्वास-घातियों के कारण सांगा को हार खा कर भागना पड़ा और बाबर विजयी होकर लौट आया। इस विजय के उपलक्ष में जो उत्सव मनाया गया था उस समय लाखों हिन्दू कत्ल किये गये थे। और शाही तम्बू के सामने खून की नदी बह निकली थी।

परन्तु बाबर को दिल्ली के तख्त पर बैठना नसीब न हुआ वह शीघ्र ही मर गया—उसका पुत्र हुमायूं भी जीवन भर युद्ध करता और इधर उधर भागता फिरा इस बीच में एक बार पठान राज शेरशाह और उसके एक हिन्दू सरदार हेमू ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया हुमायूं काबुल को भाग गया पर यह चिरस्थाई न रहा। परस्पर की फूट और द्वेष ने सबका नाश किया। कुप्रबन्ध ने सुव्यवस्था न होने दी और सैनिक शासन ने सुप्रबन्ध न होने दिया। इस बादशाह ने बहुत सराऐं बनवाईं। जिसमें एक विवाहित गुलाम रखा जाता था। जिस का यह काम था कि मुसाफिरों के लिये भोजन बनावे, पीने को ठण्डा पानी और नहाने को गर्म पानी का प्रबन्ध रखे। सराय में प्रत्येक मुसाफिर के लिये एक एक चारपाई चादर सहित मिलती थी। इन सबका ख़र्च सरकारी खजाने से मिलता था। बहुतसी सराऐं सेठों और साहूकारों ने बनवाईं थी। जिनमे बाग, तालाब और आराम की बहुतसी चीजें थीं।

इसी बादशाह के राज्य में तोल नियुक्त की गई। बाट बनाये गये। गज़ नियत किये गये और सिक्के ढाले गये, इससे पहले प्रायः कपड़ा बालिश्तों से तथा जिन्स नज़र से अन्दाज़ करके बिकती थी। यद्यपि यह प्रजाहित करने की चेष्टाएं करता था पर एकबार इसने चित्तौर के राणा संग्रामसिंह पर धावा बोल दिया। और भारी हार खा अन्तिम दिनों वह बंगाल में रहा और उधर ही मरा।

उसके मरने पर देश भर में क्रान्ति मच गई उस समय एक फकीर शाह-दोस्त रहते थे—उन्होंने अपने एक चेले को हुमायूं के पास एक जूता और एक चाबुक लेकर भेजा। हुमायूं ने फ़कीर का मतलब समझ लिया। और

उसने फिर से भारत पर चढ़ाई की तैयारियां कीं। शाह फारिस से उसने सहायता माँगी, हुमायूं—ईरान, काबुल घूम फिर कर १५ हजार सेना इकट्ठी करके फिर भारत में आया और दिल्ली आगरे पर कब्जा कर लिया। परन्तु इसके ६ मास बाद ही वह मर गया।

उस समय अकबर सिर्फ १३ वर्ष का था, और राज्य की परिस्थिति अनिश्चित थी। दिल्ली और आगरे को छोड़ कर उसके पास और कुछ न था। फिर सिकन्दरसूर और हेमू उसके विरुद्ध तैयार हो रहे थे। बाबर ने अपने मित्र बैरम के हाथ में अकबर को सौंपा। बैरमखां एक वीर सेनापति और उच्च वंश का तुर्क था। अकबर ने उसे प्रधान मन्त्री और संरक्षक बनाया। बैरम ने पानीपत के मैदान में सिकन्दर और हेमू की संयुक्तसेना को पराजित किया। हेमू कत्ल कर दिया गया और सिकन्दर को पंजाब में पराजय कर क्षमा दान दे बंगाल जाने दिया। २ वर्ष बाद अकबर ने स्वाधीन होकर राज्य सम्भाला और बैरम को मक्का भेज दिया-पर वह मार्ग ही में मार डाला गया।

उस समय अकबर की शक्ति डाँवाडोल थी। पंजाब, ग्वालियर, अजमेर दिल्ली और आगरा तो उसके आधीन हो गये थे। पर बङ्गाल में अफगानों की अभी शक्ति थी। उसकी फौज में भी जो सिपाही थे अधिकांश तुर्की लुटेरे थे जो लूट मार के लालच से ही सेना में भरती हुए थे। और जो सेना पति थे-वे अपने २ अधिकारों को बढ़ाने की चिन्ता में ही रहते थे। जो सरदार जिस प्रान्त में शासक बना कर भेजा गया वह वहां का मालिक हाकिम बन बैठा। पर अकबर बड़ा मुस्तैद सिपाही था। वह रात दिन कूंच करके उनके सावधान होने से प्रथम ही उन्हें धर दबाता। इस प्रकार ७ वर्ष इसे अपने अनुयाइयों के दबाने में लगे। अन्त में काबुल के शासक ने पंजाब पर धावा किया जो उसका भाई था, परन्तु वह हरा कर भगा दिया गया।

अब आन्तरिक विवादों को मिटा कर वह राजपूतों को दबाने के लियेझपटा। उसकी नीति पूर्ववर्ती मुसलमान शासकों से भिन्न थी। वह सिर्फ यही चाहता था कि राजे अपने राज्य पर बने रहें केवल उसकी आधीनता स्वीकार करलें।

आमेर का राजा उसका मित्र बन गया और अपनी पुत्री अकबर को ब्याह दी। अकबर ने उसके पुत्र को प्रधान सेनापति बना दिया। जोधपुर और अन्य राजपूत शक्तियां थोड़ा विरोध करके उसके आधीन होगईं। ये सब लोग उसके सहायक और मित्र बन गये और अकबर ने इन हिन्दू राजवंशों से अपने वंश में रिश्तेदारियां करलीं। केवल चित्तौर ही अकेला रह गया था जिसने अब तक विरोध किया। और आधीनता स्वीकार नहीं की।

अकबर ने स्वयं चित्तौर को घेरा। राणा उदयसिंह पर्वतों में चले गये। और राठौर जयमल ने युद्ध किया। भयानक युद्ध के बाद चित्तौर का पतन हुआ। सहस्रों स्त्रियां जल गईं और बचे हुये योद्धा केसरिया बाना पहन कर जूझ मरे।

प्रतापसिंह ने २२ वर्ष अकबर से युद्ध किया और चित्तौर के अतिरिक्त सब प्रदेश छीन लिया। अब राजधानी उदयपुर बसादी गई।

बंगाल में दाऊदखां अफ़ग़ान की अमलदारी अब भी थी। समय पाकर अकबर ने आगमहल के युद्ध में सदा के लिये उन्हें भी नाश कर दिया। राजा टोडरमल बङ्गाल के हाकिम बने। ये प्रथम श्रेणी के सेनापति और प्रबन्धक थे। मुसलमान बादशाह का यह पहला हिन्दू सरदार था इसके बाद उसने काश्मीर सिन्धु और क़न्धार को फतह किया था इन प्रान्तों को राजा बीरबल ने फतह किया। और वे वहीं काम भी आये।

जिस समय दिल्ली में बैठ कर अकबर समस्त उत्तर भारत को अधिकृत कर रहा था—उस समय दक्षिण में एक प्रबल हिन्दू राज्य था जो विजयनगर का था। यहां के राजा के पास ७ लाख सेना थी और वहां का वैभव अद्भुत था। उस प्रबल राज्य को पड़ोसी मुसलमान राज्यों ने मिल कर तालीकोट के मैदान में विजय कर लिया। और बड़ी क्रूरता से हिन्दुओं का विध्वंस किया। फिर वे स्वयं परस्पर लड़ने लगे। अवसर पाकर अकबर ने अपने पुत्र मुराद को सेना लेकर दक्षिण में भेजा और शीघ्र ही अहमद नगर—बराड और खानदेश अधिकृत कर लिये।

इसने अपनी चतुराई और विलक्षण राजनीति से शक्तिशाली राजपूतों को

मित्र बना लिया। उसने राजपूत सरदारोंकी आधीनतामें राजपूतों की सेनाएँ भेजी और उन्हें परास्त किया। उसने गुजरात को विजय किया। फिर बरहानपुर और दौलताबाद तक फतह करता चला गया और दक्षिण में अपना पूरा दबदबा पैदा कर लिया। इसके बाद उसने काश्मीर को फतह किया। जिसमें उसको कुछ भी कष्ट न उठाना पड़ा। उसके बाद उसने चितौर पर आक्रमण किया। और बड़ी कठिन लड़ाई के बाद उसे विजय किया। इसके बाद उसने बङ्गाल, ठठा या सिन्ध का इलाक़ा फ़तह किया। इसी बीच में बादशाह के पुत्र सलीम ने विद्रोह किया पर वह क़ैद कर लिया गया। इसके बाद उसने फतहपुर सीकरी और आगरा बसाया। क्योंकि मथुरा साम्राज्य के विद्रोह का एक मज़बूत अड्डा था। कहा जाता है उसने आगरे के महल और किला ताम्बे का बनाने का इरादा किया था परन्तु कारीगरों के सहमत न होने से लाल पत्थर के बनवाये। बादशाह मस्त हाथियों की लड़ाई का बहुत शौकीन था वह स्वयं बेधड़क ऐसे हाथियों पर सवार होता जिसमें प्राणों का बड़ा भारी भय था। अकबर को छोटे २ विद्रोहों को दबाने में बार बार बहुत परिश्रम उठाना पड़ा इन विद्रोहियों को पकड़ कर बहुधा इनके सर काट डाले जाते थे। 'मनूची' योरोपियन ग्रन्थकार लिखता है—

"ये सर २४ घण्टे शाही दालान में रखे रहकर मार्ग में दरख्तों या मीनारों में लटका देने को भेज दिये जाते थे। मीनारें ख़ास तौर पर इसी काम के लिये बनाई गई थीं। हर एक मीनार में १०० सर आसकते थे। शहर के बाहर मैंने कई बार इनमें चोर देहातियों के सर देखे हैं जो अपनी बड़ी २ मूंछों, लाल रङ्ग और मुडे हुए सर से पहचाने जाते हैं!...आगरे से देहली जाती बार रास्ते में सड़कों पर वध किये डाकुओं के इतने सर लटके हुए थे कि बदबू के मारे सर फटा जाता था और मार्ग चलने वालों को नाक पर कपड़ा देकर रास्ता तै करना पड़ता था।"

अन्त में उसने पठानों पर चढ़ाई की। ८० हजार सेना प्रथमवार भेजी गई। पठान बड़े लड़ाके और योद्धा होते हैं। पठानों ने ऐसा मोर्चा लिया कि एक भी सैनिक जीता बचकर न आया। पथ-प्रदर्शक उन्हें खैबर की

घाटी में घुसाकर ग़लत मार्ग में ले गये और नष्ट कर दिया। इस बादशाह ने तोपख़ाने की उन्नति की और फिरङ्गी तोपची रक्खे। एक बार ऐसी घटना हुई कि उसने तोपों की चांद मारी की ठानी। प्रधान तोपची जो ५००) वेतन पाता था बुलाया गया। जमना पर चादर तानी गई पर तोपची ने जान बूझ कर ग़लत गोला चलाया। बादशाह ने क्रुद्ध होकर उसे सम्मुख बुलाया और कहा—

बादशाह—"क्या तुम ऐसे ही निशानेबाज़ हो? तुम्हारी तो बहुत तारीफ़ सुनी थी।"

तोपची—"ख़ुदावन्द, बन्दा निशाने को देख नहीं सका, यदि शराब पी होती तो सम्भव न था निशाना ख़ाली जाता।"

बादशाह ने शराब लाने का हुक्म दिया तोपची ने सारी बोतल चढ़ाली। और फिर मूंछें पूछता हुआ बोला। हुजूर, चादर हटाली जाय और एक लकड़ी पर एक बर्तन रखदिया जाय। यही किया गया। तोपची ने ऐसा गोला मारा कि लकड़ी और बर्तन के धुर्रे उड़ गये। बादशाह ने तब से फिरङ्गियों को अपने पीने के लिये शराब खींचने की आज्ञा देदी। वह बहुधा कहा करता था-फिरङ्गी और शराब साथ ही साथ पैदा हुए हैं। और शराब के बिना उनकी वही दशा होती है जो पानी के बिना मछली की। अकबर के दर्बार में सुनार, तोपची, डाक्टर आदि बहुत से फिरङ्गी नौकर थे। इन्होंने अर्ज़ की कि हमें एक पादरी दिया जाय। तब अकबर ने गोआ से पादरी बुलवाया और आगरे में गिरजा बनाने की आज्ञा देदी।

इस बादशाह ने यह क़ानून अपने वंश के लिये बनाया कि शाही ख़ानदान की लड़कियों की शादियां न की जायें। यह काम इस प्रकार हुआ कि बादशाह ने अपनी पुत्री की शादी एक अमीर के साथ कर दी थी—कुछ दिन बाद वह विद्रोही हो गया। और प्राण दण्ड दिया गया। उसी समय से यह क़ानून बनाया गया। जिसे औरङ्गज़ेब ने अपनी बेटी की शादी करके तोड़ा। शाहजादियों की शादी न होने से मुग़ल ख़ानदान में बहुत से भीतरी गुल खिलते रहे यह बात सभी जानते हैं। बादशाह पकानों से सख़्त

सतर्क रहता था और उसका हुक्म था कि किसी पठान को ४ हज़ार रु० वार्षिक से अधिक का वेतन न दिया जाय। न सूबे का अधिकारी बनाया जाय। बादशाह ने यह भी नियम बनाया था कि दर्बार में सिवा शाहज़ादों और एलचियों के सब सर्दार खड़े रहें। यह नियम मुग़ल दर्बार में अन्त तक बना रहा। इसके बाद उसने 'दीने इलाही' नामक मज़हब चलाया।

बादशाह को शिकार का बहुत शौक़ था एक बार वह एक शेर के पीछे दौड़ते २ बीहड़ जङ्गल में घुस गया अन्त में एक स्थान पर थक कर सुस्ताने लगा। उसने देखा कि एक अगरवानी रङ्ग का सांप पेड़ से उसकी तरफ़ आ रहा है। बादशाह ने एक तीर से उसे बींध दिया। तीर सांप को मार कर बादशाह के पास आ गिरा इतने ही में एक हिरन चौकड़ी भरता उधर गुज़रा। बादशाह ने वही तीर उठा कर हिरन पर छोड़ दिया यद्यपि तीर ने हिरन को छुआ ही था कि हिरन मर गया। बादशाह यह देखकर आश्चर्य चकित हो गया—इतने में शिकारी लोग आ पहुँचे। बादशाह ने उन्हें हुक्म दिया कि हिरन को यहाँ घसीट लाओ। उन्होंने हिरन को छुआ ही था कि उसके बन्द २ अलग हो गये। यह देख शिकारी बोले जहाँपनाह यहाँ से जल्दी भागिये वरना इस ज़हरीले सांप की हवा से हम सब मर जायेंगे। हुज़ूर हवा के रुख़ के विरुद्ध बैठे हैं यही ख़ैरियत हुई है।

बादशाह ने उस सांप को एक बोतल में बन्द करके रखने का हुक्म दिया और एक अफ़सर नियत किया कि जब बादशाह चाहे ज़हर तैयार करे। तब से एक महकमा इसी ज़हर का बन गया जो कई भाँति के विष तैयार रखते थे। यह विष तब काम में लाए जाते थे जब बादशाह किसी सर्दार को गुप्त रीति से मारने के काम में लाते यह विष या तो वस्त्रों में लगाकर उसको दर्बार में पहना दिया जाता था यो यदि वह दूर पर हो तो भेजदिया जाता था जिसे सम्मान प्रदर्शन करने के लिये उसे पहनना पड़ता था और उसके प्राण जाते थे। मुग़ल ख़ानदान में इस रीति से प्राण नाश करने का रिवाज़ पीछे तक जारी रहा।

इस महान् बादशाह की मृत्यु ऐसी ही एक दुर्घटना से हुई। बादशाह

यदि अपने हाथ से किसी को पान देते थे तो वह उसकी भारी प्रतिष्ठा समझी जाती थी पर इस प्रतिष्ठा को पाकर कुछ ही मिनटों में बहुत से सर्दार जीवन लीला समाप्त कर चुके थे। बादशाह के पानदान में तीन ख़ाने थे। जिन में एक में पान दूसरे में सुगन्धित गोलियाँ रहतीं थीं जिन्हें बादशाह स्वयं खाता था तीसरे में वैसी ही सुगन्धित गोलियाँ थीं परन्तु वह हलाहल ज़हर होती थीं बादशाह प्रसन्न होने पर उसे पान देता—फिर एक खुशबूदार गोली देता—पर जिसे मारना होता ज़हर की गोली देता था। एक बार एक अमीर को ज़हर की गोली देते हुए भूल से वह स्वयं ही गोली खा गया और इस प्रकार अजमेर में उसकी मृत्यु हुई। इसने ४९ वर्ष ७ मास ३ दिन राज्य किया और अनेक मुल्क विजय किये। तथा मुग़ल सल्तनत कायम की।

उसके अन्तिम दिन अशान्ति ही में कटे। इसके सभी पुत्र शराबी और लम्पट थे। शराब ही के कारण मुराद दान्याल की मृत्यु हुई।

आमेर का मानसिंह चाहता था कि उत्तराधिकार में उसके भांजे खुशरू को तख़्त पर बैठाया जाय। मगर अकबर सलीम को बादशाह बनाना चाहता था। उधर मानसिंह बड़ा प्रतापी था, उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी, बादशाह ने उसे विष देना चाहा था, पर वह स्वयं खा गया।

इस बादशाह ने आमेर से ३ फर्लाङ्ग के फासले पर एक विशाल मक़बरा बनाया और एक भारी बाग़ लगाया जिसका नाम सिकन्दरा रक्खा। यह मक़बरा बहुत ऊँचा और भारी गुम्मद वाला है। यह संगमर्मर और बहुमूल्य जवाहरात से जड़ा हुआ था। तमाम छत पर गिलिट का काम बहुत कारीगरी का किया हुआ था। और भाँति २ के रंग से दीवारें रंगी हुई थीं। बाग़ बहुत बड़ा और सफीलों से घिरा था, जगह २ बैठने के स्थान बने थे। औरंगजेब ने सब चित्रकारी पर सफेदी करा दी थी, क्योंकि वह चित्रकारी को इस्लाम धर्म के विपरीत समझता था।

वीनस निवासी 'मनूची' इस सम्बन्ध में लिखते हैं—

"मेरी इच्छा थी कि औरंगजेब की आज्ञा कार्यरूप में परिणत होने

से प्रथम ही एक बार इन चित्रों को देख लूँ। अतएव इस विचार से कई बार इस मकबरे को देखने के लिये बाग़ में गया। बाग़ के बड़े द्वार पर सलीब कुवांरी मरियम और स्नेर इगनेस के चित्र थे। मेरे मनमें उपरोक्त गुम्मद के अन्दर जाकर देखने को बड़ी इच्छा थी। चुनांचे एक अफसर ने जो मुझसे राजवैद्य होने के कारण कुछ काम लेना चाहता था, मुझे इस शर्त पर वहां ले जाना स्वीकार किया कि मैं बड़े अदब और प्रतिष्ठा से इस प्रकार कबर को सलाम करूँ जिस तरह पर कि वह करे। गोया कि बादशाह ज़िन्दा है और उसे ही अभिनन्दन कर रहे हैं। उसने द्वार खोला और मैंने चुपचाप अदब से कबर को सलाम करके भीतर प्रवेश किया। जिसके पश्चात् नंगे पाँव चारों तरफ घूम फिरकर हर वस्तु को देखा, जैसा कि मैंने लिखा है, दीवार में पवित्र सलीव खड़ी थी, जिसके दाँयी ओर कुवांरी मरियम और बाँई ओर इगनेस के चित्र थे। गुम्मद की छत पर फरिस्तों के, बलियों के और दूसरे कई एक प्रकार के चित्र थे एवं कई एक ऊदसोज़ (वह पात्र जिसमें ऊद रखकर जलाया जाता है) थे—जिनमें प्रति दिवस ऊद जलाया जाता था। इस कमरे में चारों तरफ भिन्न २ प्रकार के पत्थर लगे थे। मकबरे के बाहर बाग़ में बहुत से मुल्ला कुरान पढ़ रहे थे। खुद गुम्मद के बाहर की तरफ सबसे ऊँची चोटी पर एक गुम्मद था और इसपर गिलट का बना हुआ दीनर था। मुझे एक सबसे बढ़कर आश्चर्य इस बात पर था कि इन चित्रों के होने की तह में क्या कारण था और बहुत सोचने के पश्चात् यही फल निकाल सका कि इसका कारण मज़हब नहीं था बल्कि चूँकि यह वस्तुएँ उन दिनों में अद्भुत गिनी जाती थीं इसलिये ऐसा किया गया था। जिन दिनों में औरंगजेब शिवाजी से लड़ रहा था तो सन् १६९१ ई० में विद्रोही देहातियों ने मक़बरेमें घुसकर तमाम मूल्यवान पत्थर और सुनहरी काम चुरा लिया। और बादशाह की हड्डियों को मकबरे में से निकाल कर जला डाला।"

———

जहांगीर

अकबर के पुत्र जहांगीर ने २२ वर्ष राज्य किया। वह शराबी ऐयाश और निष्ठुर था, पर राज्य शासन उसने बड़ी ही चतुराई और तत्परता से किया। उसके काल में राज्य में कला कौशल, व्यवस्था और शान्ति रही। मलिका नूरजहां का भी इस शासन में भारी हाथ रहा।

उसके गद्दी पर बैठनेके बाद ही उसके पुत्र खुसरू ने विद्रोह किया पर उसे क़ैद कर लिया गया और उसके साथी क़त्ल करा दिये गये। इसने उदय-पुर के राणा से सन्धि की और उसका पद दर्बार में जहांगीर से दूसरा नियत किया। इसी के शासनकाल में इङ्गलैंड का दूत टामस रो भारत में आया, और अपनी कम्पनी के लिये व्यापार का अधिकार प्राप्त किया, इस विदेशी यात्री ने अपने अनुभव से जो कुछ लिखा है उसका अर्थ यह है—

"राजसभा की विशालता और वैभव आश्चर्ययुक्त है, पर सरदार क़र्ज़-दार हैं। प्रबन्ध सदोष है, किसान दरिद्र हैं, कुशासन के चिन्ह देश में है, प्रजा का वैभव नष्ट हो रहा है। ठगों और डाकुओं के ज़ुल्मों से गाँव और पब्लिक अरक्षित है। बहुत सी भूमि जंगल है, और दक्षिण के नगर खण्डहर हो रहे हैं। जो प्रान्त राजधानी से दूर हैं उनकी हालत निकृष्ट है।"

वह एक अद्भुत ऐयाश और खुशमिज़ाज तबियत का आदमी था। यह न रोजे रखता न मुसलमानी धर्म की परवाह करता था, खूब शराब और अफीमका सेवन करता था। एकबार इसने पादरियों को बुलाकर पूछा—

"सुअर का मांस स्वाद में कैसा होता है?"

इसपर पादरियों ने उसकी तारीफ की। बादशाह का जी ललचाया, और पादरियों के घर जाकर शराब पी और सुअर का मांस खाया। इसके बाद वह खुल्लमखुल्ला खाने लगा। 'मनूची' कहता है कि मौलवियों को चिढ़ाने के लिये उसने सोने की सुअर की मूर्तियाँ बनवा कर महल में रख छोड़ी थीं और प्रातःकाल उन्हीं का मुँह देखकर उठता था और कहता था—'मैं मुसलमान का मुँह देखने के बजाय सुअर का मुँह देखना अधिक अच्छा

समझता हूँ। ये सोने के सुअर शाही महल में शाहजहाँ के समय तक रहे। जिसने उन्हें लाहौर के क़िले में शाही तख्त के सामने ज़मीन में गड़वा दिया था। रमज़ान के दिनों में जहांगीर प्रतिदिन दो दफा दरबार करता और सबके सामने खाता पीता तथा मुल्लाओं को तंग करता था, और अपने हाथ से खाना देता जिसे दर्बारी कायदे के मुताबिक अदब से लेकर उन्हें खाना पड़ता था। बादशाह की इस प्रणाली की अवज्ञा करने से भय था कि वे आदमी शेरों से फड़वा दिये जाँय, जो दर्बार के नज़दीक बँधे रहते थे।

बादशाह नश्तरों से भरे एक बर्तन को अपने पास रखता था। यदि कोई व्यक्ति उसके सामने वीरता की डींग हाँकता तो नश्तरसे उसकी नाक में छेद करा देता, इस पर यदि वह कष्ट प्रकट करता तो उसे मुक्कों से पिटवा-कर बाहर निकलवा देता और यदि सह जाता तो दूनी तनख़ा कर देता। एक बार एक दर्बारी ने शेर मारा और उसकी खाल का कोट पहनकर दर्बार में आया। यह देखकर बादशाह ने अपनी बन्दूक उठाई और अमीर को निशाना बनाया। वह बेचारा चिल्लाकर गिरा। गोली टाँगों में लगी थी, बादशाह बोला—यदि मैं इस शेर को न मारता तो मेरा शेर जोश में आ जाता। यदि कोई नवयुवक स्त्रियों का अत्यन्त प्रेमी होता तो बादशाह उसे पकड़कर किसी नीच जाति की मैली और गन्दी स्त्री के साथ कई दिन तक बन्द रखता था।

जहांगीर अपने हकीम से बहुत चिढ़ता था। वह पक्का मुसलमान और धर्मात्मा आदमी था। एकबार यह उस समय दर्बार में पहुँच गया जब बादशाह शराब पिए था। इसे देखते ही बादशाह ने कहा—मेरा तीर कमान लाओ, मैं इस खूसट को ख़तम करूँगा। नूरजहाँ पर्दे में बैठी थी उसने गुलामों को इशारा किया कि असली तीर न दिये जाँय बेत के तीर दिये जाँय। बस बादशाह ने तीर बरसाने शुरू किये। यह सब कुछ होने पर भी हकीम साहब झुक २ कर सलाम किये जाते तथा आदाब बजाये जाते थे, अन्त में मलका के इशारे पर गुलामों ने उसे संकेत किया कि 'अभागे खेर

आ क्यों जान का दुश्मन बना है।' हकीम बेचारा लेट गया। बादशाह ने समझा कि मर गया। तब बोला; अच्छा हुआ इसने भी बहुतों की जानें ली हैं।

बादशाह का नूरजहाँ को हथियाना इतिहास की प्रसिद्ध घटना है। कदाचित् ही कोई ऐसा प्रेम दीवाना पुरुष हो जो किसी एक स्त्री पर इस भाँति मुग्ध हो जाय। नूरजहाँ का जीते दम तक बादशाह पर असाध्य अधिकार रहा। सारी सल्तनत नूरजहाँ के अधिकार में थी, सब स्याह सफेद करने का उसे अधिकार था। नूरजहाँ ने एकबार उससे प्रतिज्ञा कराई कि वह शराब पीना कम कर देगा। और दिन भर में ६ प्यालों से ज़्यादा न पीवेगा। कुछदिन तो प्रतिज्ञा चली। एकबार ऐसा हुआ कि एक जलसा हुआ, बादशाह को खुद मलका प्याले भर २ कर देती गई। जब नौ प्याले बादशाह पी चुका तो और मांगा—पर मलका ने इन्कार कर दिया। बादशाह ने बहुत मिन्नत चापलूसी की पर बेकार। अन्त में बादशाह को गुस्सा आगया, और हाथापाई होने लगी। शीघ्र ही गुत्थम गुत्था हो गई। अब इन्हें अलग कौन करे?

बाहर भांडों ने यह देख स्वयम् गुत्थम गुत्था होना, धमा चौकड़ी मचाना, चिल्लाना शुरू कर दिया। बाहर का शोर सुनकर बादशाह लड़ाई रोक बाहर निकले—और पूछा यह क्या शोर गुल है। भांडों ने दस्तबस्ता अर्जी की, हुजूर की लड़ाई रोकने की यही तर्कीब समझ में आई। इसपर मलका बादशाह दोनों खूब हँसे और खूब इनाम दिया। परन्तु नूरजहाँ इस घटना से बहुत नाराज हुई। और उसने बादशाह से बोलना भी छोड़ दिया। उसके तमाम तोफ़े वापस भेज दिये, बादशाह ने बहुत खुशामद की पर उसने न माना। तब एक दिन बादशाह जब मलका धूप में टहल रही थी इस भाँति उसके सामने आ खड़ा हुआ कि उसके सिर की परछांई मलका के पैरों पर पड़ी। तब बादशाह बोला—अब तो खुश हो जाओ, अबतो तुम्हारे पैरों पर मेरा सिर हाज़िर है। इसपर नूरजहाँ प्रसन्न होगई और इस सुलह की खुशी में मलका ने ८ दिन भारी जल्सा किया। जिसमें उसने

बाग़ के सब तालाबों और फव्वारों को अर्क़ गुलाब से भरवा दिया और हुक्म दिया कोई इन्हें गन्दा न करे। दैवयोग से एक तालाब के पास ही मलका सो गई। प्रातःकाल उसने तालाब पर चिकनाई तैरती पाई मलका ने समझा किसी ने गन्दगी डाल दी है, उसने बाँदी को हुक्म दिया हाथ से देख यह चिकनाई कैसी है। जब उसने देखा तो अति उत्तम सुगन्ध पाई। और तब समझी कि यह गुलाब की चिकनाई ओस की भाँति जम गई है। उसने चिकनाई अपने हाथों में लेकर कपड़ों में मल लिया, और दौड़ी हुई बादशाह के कमरे में गई और बादशाह को आलिङ्गन किया बादशाह सो रहे थे। उठे तो खुशबू से महक उठे। इस भाँति गुलाब का इत्र ईजाद हुआ जो बाज़ार में १००) तोला बिकने लगा। पीछे जब गुलाब की खेती बढ़ी तो उसका भाव भी कम हो गया।

इस बादशाह ने मुलतान से इलाहाबाद तक शाही सड़कों पर पेड़ लगाने का हुक्म दिया। यह फासला ५१३ फरसंग का था। एक २ फरसंग पर बुर्ज़ बनाए गये। प्रत्येक बुर्ज़ के निकट एक गाँव होता था— जहाँ सब आवश्यक सामग्री मिल सके। इसके सिवा स्थान २ पर सराय, बाग़ और कुएं भी बनवाए थे।

इस बादशाह को एक सेनापति महावत खाँ ने जो राजपूत से मुसलमान बना था। और बड़ा वीर था, बादशाह को ऐयाशी से क्रुद्ध होकर एक बार अवसर पाकर बादशाह को कैद कर लिया और १ साल तक रखा— और उसे समझाया कि इस भाँति शराब और औरत के फेर में पड़ना बादशाहों के लिये उचित नहीं—फिर सम्मान पूर्वक छोड़ दिया।

जहाँगीर बड़ा दाता था। यदि किसी को कुछ देता तो उसकी तादाद १ लाख से कम न होती थी। इस बादशाह से इनाम पाने के लिये कुछ चिकनी चुपड़ी बातें काफ़ी थीं इसी पर ख़ुश होकर यह जो चाहे दे डालता था।

वह बहुधा भेष बदल कर शहर में घूमा करता था। एकबार का ज़िक्र है कि वह भेष बदल कर घूमता फिरता एक शराबख़ाने में जा घुसा। वहाँ

एक जुलाहा बैठा मज़े से ठर्रा जमा रहा था। जहाँगीर उसके पास बैठ गप्पें उड़ाने लगा। दोनों दोस्त हो गये और प्याले पर प्याले लगे उड़ाने। चलती बार बादशाह ने उसका नाम पता पूछा उसने कहा-सिकन्दर जुलाहे के नाम से मशहूर हूँ। तुम कल मेरे मकान पर आना ऐसा खाना खिलाऊँ और शराब पिलाऊँ कि खुश हो जाओ। इस पर बादशाह ने अवश्य आने का वादा किया, दोनों दोस्त हँसते हुए हाथ मिलाकर विदा हुए।

दूसरे दिन जब वह हथौड़ी से कीलें गाड़ कर ताना बुनने की तैयारी कर रहा था कि बादशाह की सवारी आती दिखाई दी। बादशाह हाथी पर था—सेवक गण दायें बांये चल रहे थे। जब उसके घर के निकट सवारी पहुँची तब गुलाम ने आगे बढ़ कर पूछा सिकन्दर जुलाहे का घर कौनसा है बादशाह उसके घर दावत खाने आ रहे हैं। इस पर जुलाहे की आँखें खुलीं और रात के दोस्त का भेद पहचान गया। वह इतना घबराया कि जवाब ही न दे सका। इतने में सवारी आगई। जुलाहे ने बिना आँख उठाये पुकार कर कहा "जो शराबी की बात पर एतबार करे इस हथौड़ी से पीटे जाने के लायक है।" बादशाह यह सुन कर ठहाका मार कर हँस दिया। और इतना रुपया उसे दिया कि वह अमीर बन गया।

एकबार बादशाह हाथी पर सवार हवाख़ोरी को जारहा था—एक शराबी रास्ते में मिला, बोला—ओ हाथी वाले हाथी बेचोगे?

बादशाह ने उसे पकड़ कर हवालात में बन्द करने का हुक्म दिया, अगले रोज़ जब वह बादशाह के सामने पेश किया गया तब बादशाह ने कहा—"कहो क्या हाथी खरीदोगे?"

शराबी ने कहा—हुज़ूर, हाथी ख़रीदने वाला निकल गया, मैं तो एक ग़रीब दलाल हूँ। इस जवाब से ख़ुश होकर बादशाह ने उसे बहुतसा इनाम दिया।

बहुधा बादशाह हाथी पर सवार हो सैर सपाटे को निकल जाता सब सरंजाम हाथियों ही पर होता था, किसी पर शराब की प्याली बोतल, किसी

पर रोटियां पकतीं, किसी पर गोश्त पकता, किसी पर मेवों की डालियां होती। किसी पर गाने बजाने का सरंजाम। बादशाह खाता पीता मौज करता जाता था।

एक दिन बादशाह इसी प्रकार हाथी पर खाता पीता जा रहा था कि चांदनी चौक में बेकैद फ़क़ीरों का एक गिरोह मिला। उन्होंने पुकार कर कहा—"अरे अकेले ही खाते हो—हमें न शरीक करोगे?"

यह सुन बादशाह हाथी से उतर पड़ा और फ़कीरों के बीच में बैठ गया। सबने मिल कर ख़ूब खाया पीआ।

जहांगीर बहुधा रो देता था। और थोड़ी ही बात से वह सन्तुष्ट भी हो जाता था। उसके न्याय की भी बड़ी धाक थी, एक बार एक राजपूत सिपाही को क़ाज़ी ने क़त्ल का हुक्म दिया था – उसका अपराध किसी मुसलमान स्त्री पर बलात्कार करना था। बादशाह ने उसे और स्त्री को बुला कर पूछा—

"इस आदमी को सूंडी के नीचे बाल हैं या नहीं।"

स्त्री झूठी थी–उसने समझा जैसे हिन्दू दाढ़ी मुड़ाते हैं—वहाँ भी बाल नहीं रखते होंगे। उसने कहा—'नहीं हुजूर'

फिर बादशाह ने हुक्म दिया राजपूत को नंगा करके देखा जाय। इस पर औरत झूठी साबित हुई। बादशाह ने राजपूत को छोड़ दिया और औरत को क़त्ल करा दिया। जहांगीर की भांति इसके पुत्र ख़ुर्रम ने भी विद्रोह किया पर अन्त में हारा। जहांगीर ने भी लाहौर में अपना मक़बरा स्वयं बनाया जो लाहौर में शहादरे के नाम से मशहूर है। इसमें बहुमूल्य पत्थर लगवाये थे जिन्हें औरंगजेब ने पीछे उखड़वा लिया था।

बादशाह अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अङ्गरेज़ों से क्रुद्ध होगये थे और उन्होंने सूरत बन्दर में मक्का के कुछ यात्रियों के साथ अनुचित काम किया था। बादशाह ने प्रथम तो बहुत कुछ नर्मी से काम लिया, पर जब न बना तो गिरफ्तारी का हुक्म दिया, जिसे उन्होंने मानने से इन्कार कर दिया इस पर क्रुद्ध होकर बादशाह ने उनके कत्लेआम का हुक्म दे दिया, इस पर

बहुत से अंग्रेज़ काट डाले गये। यह सन् १६२२ ई० की घटना है। इस समय कन्धार फिर ईरानियों के हाथों में चला गया। बंगाल में उसने पुर्तगालों को कोठियां बनाने की आज्ञा देदी थी। वह ग्रीष्म ऋतु में काश्मीर चला जाता और सर्दियों में लाहौर लौट आता था। एकबार वह जब काश्मीर से लौट रहा था तो मार्ग ही में दमे से उसका शरीरान्त हो गया। उसने २१ वर्ष ७ मास ११ दिन राज्य किया। उसकी आयु उस समय ६० वर्ष की थी।

जहांगीर की मृत्यु के बाद उसका पोता सुलतान ब्लाकी गद्दी पर बैठ गया। शाहज़ादा ख़ुर्रम उन दिनों बीजापुर राजा के यहाँ आश्रित था। ब्लाकी ने राजा को कहला भेजा कि ख़ुर्रम को नज़र बन्द करलो—यदि हुक्म की पाबन्दी में ढील हुई तो बीजापुर की ईंट से ईंट बजा दूंगा। बीजापुर के राजा ने डरकर शाहज़ादे पर पहरे बैठा दिये। शाहज़ादे के साथ उसके चारों पुत्र तीनों लड़कियां, और बेगमें थीं। औरङ्गजेब अभी बच्चा था—पर उसे ख़ुर्रम सफैद सांप कहा करता था—किसी साधु ने उसे कहा था कि यह तुम्हारे राज्य को नष्ट करने वाला होगा। ख़ुर्रम ने कई बार मार डालने का भी विचार किया पर रोशनआरा ने सदैव उसकी रक्षा की। ख़ुर्रम को यहां उसके स्वसुर आसफ़खां की चिट्ठी मिली कि किसी तरह भाग कर बुरहानपुर के हाकिम महाबत खां से मिल जाओ। और उसे ले यहां पहुँच जाओ तो ताज तुम्हारा है। यह सुन युक्ति से शाहज़ादा यहां से भाग निकला। आगरे पहुँचने पर आसफ़खां १२ हज़ार सवार ले उससे जा मिला। ख़ुर्रम ने धूम धाम से नगर में प्रवेश किया। और अनायास ही तख्त पर अधिकार कर लिया और शाहजहां के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शाहेजहां

इस बादशाह के शासन काल में मुग़ल साम्राज्य का वैभव मध्याह्न के सूर्य की भांति शिखर पर पहुँच चुका था। गद्दी पर बैठते ही उसने सुलतान ब्लाकी की तलाश करवाई। पर वह घर से भाग गया था। उसके दो पुत्र लाहौर में रहते थे। बादशाह ने हुक्म दिया उन्हें मकान में बन्द कर

दर्वाज़ों में दीवार चुन दी जाय। जब उनके पास यह हुक्म पहुंचा वे जहांगीर के दीवानेख़ास के कमरे में बैठे पढ़ रहे थे। उन्हें उसी दालान में तत्काल चुन दिया गया। इसके बाद उसने हुगली के पुर्तगीजों पर सेना भेजी। वे लोग प्रजा पर बड़ा अत्याचार कर रहे थे। जब बादशाह पितर से विद्रोही होकर भागा फिरता था, तब उन्होंने बादशाह की बेगम मुमताज महल की दो बांदियों को पकड़ लिया था। ४००० पुर्तगीज पकड़ कर लाये गये। पर उनके आगरे पहुंचते २ मुमताज का स्वर्गवास होगया। कुछ कैदी मारे डाले गये। कुछ गुलाम के तौर पर बेच दिये गये। उनकी स्त्रियों को अमीरों में बांट दिया गया—कुछ को हरम में रख लिया गया।

मन्त्री सादुल्ला खां के प्रबन्ध से आय बढ़ गई थी। देश में शान्ति का राज्य था। उसने ६० करोड़ की लागत का तख्ते ताऊस बनवाया जिस पर बैठना उसे नसीब नहीं हुआ।

मुमताज़ की मृत्यु पर उसके लिये बादशाह ने ताज महल बनवाया। जो मुग़ल काल का अनोखा रत्न है जिसे संसार के प्रमुख कारीगरों ने बनाया था। इसके बनाने में कारीगरों ने ८ वर्ष लगाये और इस पर करोड़ों रुपया व्यय हुआ था, तैयार होने पर बादशाह ने प्रमुख कारीगरों के हाथ कटवा डाले थे जिससे कि वे ऐसी इमारत अन्यत्र न बना सकें। औरंगजेब के समय तक इसमें कोई जा नहीं सकता था—इस पर औरतों और ख़ाजा सराओं का पहरा रहता था। इसके बाद इस बादशाह ने वर्तमान दिल्ली की नींव डाली इसमें बे-अन्दाज़ रुपया ख़र्च किया गया इसकी नींव में कुछ कैदियों के सिर काट कर बतौर कुर्बानी के डाल दिये गये यह इन्द्र धनुष की शकल में जमुना किनारे बसाया गया था। सफीलों के १२ दर्वाजे थे। चहार दीवारी आधी ईंट और आधी पत्थर की बनवाई हर सौ क़दम पर एक बुर्ज बनाया गया था, पर तोपें नहीं चढ़ाई गई थी, लाहौरी दर्वाजा और दिल्ली दर्वाजा बहुत प्रसिद्ध थे। बाजार ख़ूब सज धज का था। उस दिल्ली का वर्णन 'मनूची' इस भाँति करता है—

देहली में अमीरों के महल हैं और बहुत से घर ऐसे हैं जिनकी छतें

फूस की हैं लेकिन अन्दर से बहुत सजे हुये सुन्दर और आराम दायक हैं शहर के पूर्वी ओर जिधर जमना बहती है उस तरफ दिवार नहीं है उत्तर की ओर एक कोने में पूर्व सामना किला है जिसके सामने और दरिया के इस ओर हाथियों की लड़ाई के लिये मैदान छुटा हुआ है बादशाह यह दृश्य देखने के लिये एक झरोके में बैठ जाते हैं औरतें भी झरोकों में होती हैं लेकिन परदों के पीछे। इसी जगह बैठ कर बादशाह राजाओं, अमीरों और नवाबों की प्रेड देखते हैं बादशाह के बैठने के स्थान के नीचे दिन रात एक मस्त हाथी नुमायश के तौर पर बंधा रहता है।

किले के चारों तरफ लाल पत्थर की बड़ी २ दीवारें हैं जिनमें एक बारह महराब का पुल है जिस पर से गुजर कर सलीमगढ़ के किले में जो दरिया के बीच एक टापू पर है जा सकते हैं उसे शाह सलीम पठान ने बनवाया था—और उसी के नाम से मशहूर है।

शाही किले के दो दरवाजे शहर को गये हैं बीच में बहुत खुली जगह छोड़ी गई है शाहजहां ने किले में दो बड़े भारी बाग लगवाये थे एक तो उत्तर की तरफ दूसरा दक्षिण की तरफ और चूंकि दरिया जमना का पानी इतना नहीं चढ़ता कि इन बागों में पानी मिल सके इस लिये इसने बड़ा भारी खर्च करके सर हिन्द के पास एक गहरी नहर खुदवाई थी। जो देहली से सौ फरसंग की दूरी पर है। यह नहर किले में बहती और पानी की होजों को भरती है जिनमें शाहजहां के हुक्म से खुब सूरत मछलियां डाली गई हैं। जिनके सिरों पर सुनहरी कण्ठे थे और हर कण्ठे में एक २ लाल और एक २ मोती जड़ा था। यह नहर जमना की तरफ़ के हिस्से के सिवाय तमाम क़िले में इधर उधर घूमी है। क़िले के सामने पश्चिम की ओर शाही मस्जिद है जिसमें बादशाह सप्ताह में एक बार नमाज़ पढ़ने जाते हैं।

देहली के बनियों का मनोरञ्जक वर्णन मनूची ने बड़े अद्भुत ढंग से किया है उसे हम यहां उद्धृत करते हैं—

बनिये हिन्दुओं की एक क़ौम है। जो न मान्स और न मछली खाते हैं। यह लोग प्रायः अनाज, सब्ज़ी, घी और दूध बहुत खाते हैं। यह गाय

को घर में रखते और उसकी पूजा के बहुत प्रेमी होते हैं। गउओं पर वह ऐसे मोहित होते हैं कि मृत्यु के समय भी गऊ की पूँछ को हाथ में लेकर मरते हैं। उनका विचार है कि इससे पाप क्षमा हो जाते हैं। और गाय उन्हें आसमान पर उन अग्नीमय स्थानों से छुए बग़ैर ले जाती है जिनके कि वह अपने पापमय जीवन के कारण योग्य होते हैं। इनकी इस श्रद्धा की बेवकूफ़ी आश्चर्यजनक है कि यदि इत्तिफ़ाक़ से गाय उस शख़्स पर पेशाब कर दे जो मरते समय उसकी दुम को थामता होता है। तो बजाय इसके कि उसे पैर हटाये वह बहुत अच्छा समझते हैं। और ख्याल करते हैं कि उसका शरीर पवित्र हो गया और बहुत खुशियाँ मनाते हैं।

पाठक समझ लें कि गाय को ऐसा समझना सिर्फ़ बनिये ही नहीं करते बल्कि तमाम के तमाम हिन्दू उसे पूजनीय समझते हैं। लेकिन इस बारे में बहुत अन्ध विश्वासी हैं। यहाँ तक कि अगर किसी से कोई पाप हो जाय जैसा कि मूर्तियों का अपमान या धर्म युक्त होना इत्यादि तो वह ब्राह्मणों के पास जाते हैं, जो इनके प्रोहित हैं। ब्राह्मण पापी को कुछ गाय का गोबर गाय के पेशाब में घोलकर और कुछ मीठा-घी और दूध मिलाकर पीने को देते हैं जिससे वह पवित्र हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ प्रायश्चित भी कराया जाता है। मैंने उनमें से एक मनुष्य को देखा है, जो कई दिन तक प्रायश्चित के तौर पर अपने होठों पर ताला लटकाये फिरता था।

प्राकृतिक यह बनिये लोग बहुत डरपोक होते हैं और हथियार उठाने से बचते हैं। यह अपने घरों में कोई शस्त्र तो एक तरफ चाकू या छुरी तक नहीं रखते जिससे किसी को कष्ट पहुँचने की सम्भावना हो। प्रश्नों का उत्तर देने में यह बहुत कतराते हैं। जैसे कि उस किस्से से किस्से पढ़ने वालों को पता लग गया होगा जिसका बयान मैं पीछे कर चुका हूँ। प्रायः लोग कहते हैं कि यदि उनसे केवल यह पूछा जाय कि आज कौन दिन है। तो इसपर भी वह बहुत झेंपते हैं, और जवाब बड़ा भद्दा देते हैं। अगर कुछ पूछने वाला फिर ज़िद् करे तो कह देते हैं कि हम नहीं जानते अगर इसपर भी वह फिर पूछे तो कहेंगे क्या तुम्हें नहीं मालूम कि कल रविवार था। अगर

वह फिर भी न माने तो जवाब देंगे तुम्हें पता नहीं कल शनीचर है। और अगर इसपर भी पूछने वाला पूछता चला जाय तो बहुत ठहर के और सोच के जवाब देंगे कि आज शुक्र (जुम्मा) है।

और यदि व्यापार के विषय में कोई प्रश्न किया जावे तो उसका फौरन उत्तर देते हैं। और ऐसा अच्छा हिसाब जानने वाले होते हैं कि थोड़े से थोड़े समय में बड़े से बड़े सवाल को हल कर देते हैं। और हिन्दसे की भूल नहीं करते।

यह लोग किसी जीव को मारना बड़ा पाप समझते हैं। और इस कारण यदि इनके शरीर पर कहीं कोई मच्छर, खटमल, जूँ, च्यूँटी या कोई दूसरा जीव चलता हुआ नजर आ जाय तो मारने के बजाय उसे आहिस्ता से उँगलियों के सिरों में पकड़कर दूर रक्षा के स्थान में जा रखते हैं। उनके घरों में खास २ ख़ाने बने होते हैं। जो इन जानवरों से भरे होते हैं। जिनकी खुराक का प्रबन्ध इस तरह से होता है कि यह लोग किसी ज़रूरतमन्द कमबख़्त को ढूंढ़कर और रुपया देकर सारी रात उन स्थानों में जो इन जानवरों के लिये होती है ले जाकर चारपाई से बाँध देते हैं। और इस तरह से वह जानवर इनके खून पर गुज़ारा करते हैं। क्योंकि यह बनिये लोग मनुष्य से ज्यादा जानवरों पर दयालू होते हैं। इसी तरह से यह शख्स अपने घरों की दीवारों पर सूराख़ रख छोड़ते हैं। जहां कई प्रकार के परन्द घोंसले बना लेते हैं। इन परन्दों को यह लोग नित्य प्रति खाने को देते हैं। गुजरात में कम्बे नामी शहर में इन लोगों ने बीमार परन्दों के लिये एक हस्पताल खोल रखा है। जहाँ पर एक जर्राह को इनकी चिकित्सा के लिये इनाम व इक्राम मिल जाते हैं। यहाँ एक बार एक जख्मी शाहीं आ गया। जिसे दूसरे परन्दों के बीच रखा गया। इस कम्बख्त ने यहाँ इन्हें मारना और खाना शुरू कर दिया। अतएव उन्होंने उसे यह कह कर निकाल दिया कि यह अवश्य फिरंगी नसल का होगा।

यह बनिये दरिया गंगा को बड़ा मानते हैं, और कहते हैं कि इसमें स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं। और यदि मुरदे की राख इसमें डाली

जावे तो भी उसके पापों का नाश हो जाता है। चुनांचे बड़े २ अमीरों की राख बड़ी शान और बाजे गाजे के साथ बड़ी २ दूर से यहाँ लाकर डाली जाती है। बहुत से हिन्दू राजा इस दरिया का जल पीना अपना धर्म समझते हैं। और इसी अभिप्राय के लिये हर रोज़ ऊँट भेजते हैं चाहे दो तीन मास का रास्ता क्यों न हो। यह लोग एक मूर्खता भी करते हैं और वह यह कि जब कोई शख्स मरने के करीब हो तो उसे इस दरिया के किनारे ले जाते हैं और पानी पिला २ कर ही मार डालते हैं।

प्रायः ऐसा होता है कि भक्तिभाव से ही कुछ मनुष्य इस दरिया के किनारे पर आ मरते हैं। और मैंने स्वयं देखा है कि आने जाने वाले हिन्दू इसकी लाशों को दरिया में ढकेल देते हैं—मेरे विचार में उन लोगों के विषय में जिन्हें मनुष्य कहना मनुष्य नाम का अपमान करना है। और जो मुग़लिया सल्तनत में बहुत बड़ी तादाद में हैं।"

'मनूची' दिल्ली के फ़कीरों का भी मज़ेदार वर्णन लिखता है वह भी सुनिये—

"उनके दो गिरोह हैं। एक तो बेकैद अर्थात् स्वतन्त्र और दूसरे बेतरस अर्थात् निर्दय। बेकैद फकीर बहुत अक्खड़ होते हैं और बातचीत में बहुत आज़ादी बर्तते हैं। इच्छा हो तो गाली भी सुना बैठते हैं कि तोबा ही भली यह बड़ी निर्भीकता से लोगों के घरों में घुस जाते हैं, और अगर दर्बान इन्हें रोकने की चेष्टा करे तो उसके स्वामी और बच्चों को ऐसी २ अनुचित गालियाँ सुनाते हैं कि कुछ न पूछिये तिस पर भी कोई इनकी बातों पर नाराज़ नहीं होता और खुशामद व चापलूसी से इनके क्रोध को कम करते, क्षमा माँगते हैं और भिक्षा देकर टालते हैं। यदि इन लोगों को दरवाज़े पर न रोका जाय तो यह सीधे मालिक के पास जाकर बिना सलाम बन्दगी किये उन्हीं फटे पुराने कपड़ों और मिट्टी में भरे हुए हाथ पाँव के साथ उसके पास जा बैठते हैं और उसके मुँह से हुक्का छीनकर खुद पीने लग जाते हैं। घर का स्वामी इसे बड़ी भारी प्रतिष्ठा समझता है और उसके लिये उन्हें धन्यवाद देते हुए उन्हें रुपया इत्यादि देकर खुश करते हैं किसी

दिन यह लोग ऐसी ज़िद करते हैं कि जो मुँह से माँगे लेकर छोड़ते हैं। यह लोग कभी परमेश्वर के नाम पर भिक्षा नहीं माँगते क्योंकि कहते हैं कि उसके नाम पर कुछ माँगना उसका अपमान करना है। हर मनुष्य शक्ति अनुसार इन्हें कुछ न कुछ अवश्य देते हैं क्योंकि एक तो यह लोग ईश्वर के बड़े विश्वासी हैं और दूसरे प्राकृतिक ही बड़े दयालू होते हैं।

बेतरस फकीर वह हैं जो अपने हाथों में तेज छूरी लिये हुए भीक माँगते हैं। उनके भिक्षा माँगने का कायदा यह है कि वह दूकान के सामने खड़े हो जाते हैं और जिस वस्तु की आवश्यकता होती है उसकी तरफ इशारा कर देते हैं, ये जो माँगते हैं वह अगर दूकान वाला दे दे तब तो खैर वरना अपने हाथ की छूरी से हाथ पाँव सर इत्यादि में जख़म करके खून दूकान के भीतर फेंक देते हैं यह लोग प्रायः बनियों की दूकान पर जाकर माँगते हैं क्योंकि वह डरपोक होने के कारण खून का दृश्य नहीं देख सकते और शीघ्र ही उनकी इच्छा अनुसार वस्तु देकर छुटकारा पाते हैं।'

बादशाह अपने छोटे पुत्र औरङ्गजेब से बहुत सतर्क रहता और उससे घृणा करता था। चारों शाहजादों में अल्पावस्था ही से द्वेषाग्नि भड़कने लगी थी। अतः उसने चारों को अलग २ करने की सोची। शुजा को बंगाले का हाकिम नियत किया, औरंगजेब को मुल्तान और मुराद को गुजरात का हाकिम बनाया। दारा को दरबार में रहने दिया। औरंगजेब पिता के मन की जानता था—पर ऊपर से मीठा बना रहता था–यह दारा को भी लल्लो चप्पो में ही रखता था। और दारा भोला भाला और सीधा सादा पुरुष था वह उसकी बातों में आजाता था। उसे भरें पर रख कर औरंगजेब ने दक्षिण को अपनी बदली करा ली। इस काम में उसका गूढ़ उद्देश्य गोलकुन्डा और बीजापुर की सैनिक शक्तियों का अध्ययन करना था। वहाँ पहुँचते ही उसने नया शहर औरंगाबाद बसाया। बादशाह बहुधा दारा से कहा करता था कि तुम सांप को पाल रहे हो जो तुम्हें अन्त में कष्ट देगा।

यह बादशाह गाने बजाने का शौक़ीन, काम का प्रेमी, और इमारतों के बनाने का बड़ा इच्छुक था। इसे स्त्रियों से भी विशेष रुचि थी, वह

अपने महल ही की स्त्रियों पर सन्तुष्ट न था बल्के उमराओं की स्त्रियों पर भी हाथ साफ़ करता था। अन्त में यही दोष उसके पतन का कारण बना। उसने ज़फर खां की स्त्री के प्रेम में अन्धा होकर ज़फर खाँ को मारने का इरादा कर लिया—पर उसने प्रार्थना की कि उसकी जान बख्श दी जाय और उसे पटने का हाकिम बना कर भेज दिया जाय। यही किया भी गया। इसी प्रकार खलीलुद्दीन के साथ उसने किया। जिसने औरंगजेब के युद्ध में दारा से बदला लिया। एक बार किसी ने बादशाह से कहा कि ख़लीलउद्दीन की स्त्री के पैर में जो जूता है वह २० लाख रु० मूल्य का है। बादशाह यह सुन कर क्रुद्ध हो गया और अगले दिन भरे दर्बार में ख़लील-उद्दीन से पूछा—

"हम सुनते हैं कि तुम्हारी औरत इस क़दर क़ीमती जूते पहनती है, इससे मालूम होता है तुम्हारे पास बहुत धन है जिसका अधिक भाग चोरी से अवश्य एकत्र किया गया है इस लिये अपना हिसाब हमें समझा दो।"

ख़लीलुल्लाह चुप होरहा। इस पर इसका एक दोस्त बोला—'जहांपनाह, हुक्म हो तो बन्दा इसके जवाब में कुछ अर्ज करे।

बादशाह—"अच्छा कहो"

दोस्त—'खुदावन्द, ख़लीलखां की सारी सम्पत्ति इन्हीं जूतों में सुर-क्षित है। क्योंकि इसकी स्त्री नित्य इसके मुंह पर वे जूते मारती है: और इस प्रकार सारी सम्पत्ति उसे देदेती है।

बादशाह यह जवाब सुन मुस्कुराये। और ख़लीलुद्दीन लज्जित हो दर्बार से चले आये।

बादशाह ने अपने साले नवाब शाइस्ताखां की स्त्री पर भी हाथ साफ करके छोड़ा। वह राज़ी न होती थी—इस पर बादशाह ने चालाकी से काम लिया। इससे उसे इतना रंज हुआ कि उसने खाना कपड़ा त्याग दिया और इस भांति जान देदी, शाइस्ताखां ने उस समय तो चुप साधली पीछे बदला लिया। जफ़र खां और खलीलखां की स्त्रियों का शाह से सम्बन्ध इतना प्रसिद्ध हो गया था कि रास्ते में जब वे गुज़रती तो फ़क़ीर कहते—

ऐ नाश्ते शहन्शाह ! हमें भी याद रखना, या-लुक़्मे शाहजहाँ, हमें भी कुछ दिलवा।

बादशाह ने अपने ऐश के लिये २४ हाथ लम्बा और ८ हाथ चौड़ा एक कमरा बनवाया था। जिसमें चारों ओर बड़े २ शीशे लगे थे। इसकी सजावट में जो सोना ख़र्च हुआ था वह १।। करोड़ की लागत का था। जवाहरात की क़ीमत का कहना ही क्या। इसकी छत में दो शीशों के बीच में सोने की क्यारियाँ जड़ी थीं जिनमें जवाहरात जड़े थे। शीशों के गोशों में मोतियों के गुच्छे लटकते थे। इस कमरे की दीवारें संगेयशब की थीं। इसी में वह अमीरों की स्त्रियों के साथ विहार करता था।

यह बादशाह क़िले में मोना बाजार भी लगाता था जो ८ दिन तक लगा रहता था। इन ८ दिनों में कोई मर्द क़िले में नहीं आ सकता था—फाटक बन्द रहता था। किले के भीतर खूब नाचरंग तमाशे होते थे। सब काम स्त्रियां करती थीं। वहाँ नीच ऊंच सब जाति की स्त्रियां जातीं और वस्तुऐं बेचा करती थीं। जाने वालियों का उद्देश्य बादशाह की दृष्टि में पड़ जाना होता था—इसी कारण कोई प्रतिष्ठित स्त्री वहां नहीं जाती थी फिर भी इन आने वाली स्त्रियों की संख्या ३० हजार तक पहुँच जाती थी।

बादशाह नित्य बाज़ार में आता। वह एक सुन्दर छोटे तख्त पर सवार होता। जिसे कुछ तातारी बांदियां उठाये होतीं थीं आस पास कई स्त्रियां हाथों में स्वर्ण के आसा लिये और कई ख़्वाजा सरा रहते थे। जो चीज़ों की ख़रीद फ़रोख़्त में बड़े निपुण होते थे। बादशाह इस रूप सागर को बारी से निरखता जाता था—ज्योंही कोई सूरत उसे पसन्द आती कि वह उधर रुख़ करता और उससे कुछ ख़रीद लेता। मुँह माँगा दाम देता फिर वह एक इशारा करता और आगे चल देता था—साथ वाली कुटनियों का यह काम होता कि वह उस स्त्री को नियत समय पर उस कमरे में पहुंचा दे। और बादशाह के सामने पेश करे। वहां से बहुत स्त्रियाँ तो मालामाल हो कर लौटतीं पर बहुत सी हरम में ही दाख़िल करली जाती थीं।

नाचने वाली स्त्रियां जिन्हें कंचनी कहते थे उनको भी दर्बार में भारी

क़द्र थी। ऐसी ५०० स्त्रियां दरबार से तनख़ा पाती थीं इनमें से एक को तो एकबार हरम में दाख़िल कर लिया था। चहेतियों की बुद्धि परीक्षा भी लेता था—और कभी २ अज़ब मसख़रे पन का काम करता था। एक बार ऐसा हुआ कि बादशाह की नींद टूट गई। और वह एक चहेती के कमरे में जाकर बोला "क्या सुबह होने वाली है ?"

"जी नहीं, क्योंकि अभी मेरे मुख में पान का स्वाद वैसा ही मौजूद है फिर वह दूसरी के कमरे में गया और उससे भी यही प्रश्न किया—

उसने कहा—जी नहीं, क्योंकि कमरे में दीपक की रोशनी धीमी नहीं हुई है।

तीसरी ने पूछने पर कहा, नहीं हुजूर, जब सुबह होने को होती है तब मेरे गले के मोती ठण्डे मालूम होने लगते हैं।

चौथी ने कहा—हुजूर अभी सबेरा कहाँ ! क्योंकि जब सबेरा होने को होता है तब मुझे पाख़ाने की हाजत बड़े ज़ोर की हो जाती है, बादशाह उस समय चुप चाप चला गया। दूसरे दिन चारों को बुला कर पहली को पानों का दूसरी को चिराग़ों का तीसरी को मोतियों का और चौथी को पाख़ानों का चार्ज देदिया।

इतना होने पर भी बादशाह न्याय और राजकाज के मामलों में बड़ा चाक चौबन्द था उसने एक अफ़सर रख छोड़ा था जो बहुत से सांप पिटारों में बन्द रखता था—बादशाह ज्यों ही किसी अफ़सर से नाराज़ हुआ कि सांप से डसवा दिया। एक बार एक कोतवाल ने जिसका नाम मुहम्मद-शहीद था रिश्वत लेकर मुकदमों का ग़लत फैसला किया था—बादशाह ने उसे सांप से कटवाने की अपने सन्मुख आज्ञा दी। जब सांप ने उसे डस लिया तो बादशाह ने पूछा कि यह कितनी देर में मर जायगा ? 'अफ़सर ने कहा—एक घन्टे में"

बादशाह तब तक बैठा रहा जब तक उसने दम न तोड़ दिया। इस के बाद २ दिन तक उसके शरीर को वहीं पड़े रहने की आज्ञा दी। वह मस्त हाथियों से भी अपराधियों को कुचलवा दिया करता था। पर कोई

ऐसे उस्ताद ओहदेदार थे कि बादशाह को पूरा चकमा देदेते थे। एक मुक़-द्दमे में एक क़ाज़ी साहब ने २० हज़ार मुद्दई से और ३० हज़ार मुद्दायले से वसूल कर लिये। मुद्दायला झूठा था—अतः क़ाज़ी ने बादशाह के सन्मुख ३० हज़ार रु० रख कर कहा—हुज़ूर, यह आदमी मुझे ३० हज़ार रु० रिश्वत देकर इन्साफ से हटाना चाहता है, बादशाह ने क़ाज़ी की पीठ ठोकी और वह निहायत मज़े से २० हज़ार रु० पचा गया।

गुजरात का हाकिम नासर खाँ बड़ा दुष्ट था। वहाँ की प्रजा ने तङ्ग होकर कुछ नक़ालों को इस काम के लिये ठीक किया कि वे बादशाह तक उनकी अर्ज़ी पहुंचादें। इनमें कुछ प्रतिष्ठित व्यापारी भी नकाल बनकर मिलगये। बादशाह ने जब सुना कि मशहूर नक़ाल आये हैं तो तमाशा करने का हुक्म दिया। उन्होंने उन सब जुल्मों की नकल की जो उनपर हुए थे। यह देख बादशाह ने हुक्म दिया- क्या ऐसा भी जुल्म किसी बाद-शाह की प्रजा पर होना मुमकिन है। तब सौदागरों ने कोशिश कर के सब भेद खोल दिया। बादशाह ने जांच की और हाकिम को गिरफ़्तार कर रोहतासगढ़ के क़िले में कैद करा दिया। जहाँ से कैदी का जीवित निकलना असम्भव था। उसकी सब सम्पत्ति भी ज़ब्त कर ली।

एक और न्याय का नमूना सुनिये। एक बदमाश ने एक स्त्री को खूब तङ्ग किया कि मुझ से शादी करले। पर वह राज़ी नहीं हुई। उसने एक बुढ़िया से सांठ गांठ की जो उसे न्हिलाती थी, और उसके शरीर के गुप्त चिह्न मालूम कर लिए। तब दावा कर दिया कि यह स्त्री मुझ से विवाह का वादा करके वादे से हटती है, स्त्री ने इन्कार किया तो युवक ने कहा कि मैं इसके गुप्त अङ्गों के भेद जानता हूँ। अब परीक्षा से युवक की बात सच हुई तो काज़ी ने हुक्म दिया कि यह झूठी है इसे शादी करनी पड़ेगी। स्त्री ने मोहलत माँगी। और समझ गई कि बुढ़िया ने पते दिये हैं। एकदिन वह दो मजबूत दासियों को संग लेकर उसके घर जा पहुँची। और कहा-तू चोर है, मेरा कङ्गन उतार लाया है। ला; उसके इन्कार करने पर वह उसे ज़बर्दस्ती पकड़ कर हाकिम के पास ले आई और अपना आरोप कह

सुनाया—पुरुष ने कहा—मैं इसे जानता भी नहीं। तब उसने कहा—उस दिन तुमने कहा था कि तुम मेरे साथ मुद्दत तक रहे हो अब कहते हो कि जानता तक नहीं—यह क्या बात है? फिर वह बादशाह के पास गई और सब कारगुज़ारी कह सुनाई। बादशाह ने सुनकर बुढ़िया और युवक को कमर तक ज़मीन में गड़वाकर तीरों से छिदवा दिया।

बादशाह अपने भारी अमीरों को भी ऐसी ही भयानक सज़ायें दिया करता था। एक अमीर ने अपने नौकर की तनख़ा कई महीने तक नहीं दी, अवसर पाकर शिकार के समय उसने बादशाह से शिकायत करदी। उसने उसी समय अमीर को बुलाकर पूछा। जब उसने अपराध स्वीकार कर लिया तो बादशाह ने हुक्म दिया कि वह घोड़े से उतर जाय और नौकर सवार हो अमीर उसके साथ २ पैदल चले। यही किया गया। अमीर जब दौड़ते २ बेदम होकर गिर गया तब बादशाह ने कहा—जब मैं तुम्हें ठीक समय पर तनख़ा देता हूँ तब तुम क्यों नहीं देते? एक अमीर जिसे दो हज़ारी मन्सब प्राप्त था और ४० हज़ार रु० प्रति मास की आय थी और उसपर बादशाह अत्यन्त प्रसन्न था। यहाँ तक कि उसे एक पुर्तगाज़ औरत भी बांट दी गई थी। उसकी शाही पान देने की नौकरी थी। शाही पान के लिये बादशाह का हुक्म था कि किसी को न दिया जावे। परन्तु वह गुप्त रूप से उमरा को पान दे दिया करता था। एक दिन बादशाह ने उसे पान देते देख लिया। उस समय तो वह चुप रहा। और जब वह शाम को बाग़ में पहुंचा तो बुलाकर हुक्म दिया—इसे इतना पीटो कि इसकी जान निकल जाय—क्योंकि यह शाही हुक्म की परवाह नहीं करता। इसके मरने पर इसकी सब सम्पत्ति उसकी स्त्री को देदी गई। यद्यपि शाही क़ानून से उस का अधिकारी बादशाह होता था। एकबार एक हिन्दू मुन्शी की दासी को एक मुसलमान सिपाही ने ज़बर्दस्ती छीन लिया। मुन्शी ने बादशाह से अर्ज़ की। सिपाही ने कहा दासी मेरी है। दासी ने भी यही कहा। बादशाह ने हुक्म दिया कि दासी को महल में बुलाया जाय। रात को जब बादशाह लिखने बैठे तो दासी से दवात में पानी डालने को कहा। उसने

ठीक अन्दाज़ से पानी डाला। जिस से बादशाह को निश्चय होगया कि यह अवश्य मुन्शी की दासी है। और उसे मुन्शी को दिला दिया। तथा सिपाही को दण्ड दिया। बादशाह चोरों को कड़ा दण्ड देता था। वह बहुधा उन्हें सरहद्दी पठानों के पास भिजवा देता और पठानो कुत्तों से बदलवा लेता था। यदि अफ़सर चोर को न पकड़ पाते तो चोरी का धन उन्हें गाँठ से देना पड़ता था।

कुछ लोग ऐसे जीवन वाले भी दुनिया में होते हैं जो बड़े २ बादशाहों को हेच समझते हैं। ऐसे ही एक धृष्ट सेनापति का मज़ेदार किस्सा यहाँ हम लिखते हैं।

पाठकों को मालूम है कि बादशाह के सामने कोई बैठ नहीं सकता था। एक सेनापति पर बादशाह बड़े क्रुद्ध हुए और उसे नौकरी से बर्खास्त कर दिया। वह आन की पर्वाह न कर बादशाह के सामने पलौथी मार कर बैठ गया और बोला—अबतो मैं हुज़ूर का नौकर न सेवक, अब कम से कम इतना तो हुआ कि आराम से बैठ तो सकूँगा! बादशाह उसकी दबंगता पर दंग हो गया। और फिर उसे बहाल कर दिया। यह हुक्म सुनते ही वह उठ खड़ा हुआ और कोर्निस बजा लाया। एकवार शाह गोलकुण्डा का एक मन्त्री दर्बार में हाज़िर था, बादशाह ने उस से मज़ाक किया और अपने पीछे खड़े ख़ास बर्दार की ओर ईशारा करके पूँछा-क्या तुम्हारे आक़ा का क़द इस आदमी के बराबर है? उसने कहा—जहांपनाह, मेरा आक़ा क़द में हुज़ूर से चार अङ्गुल ऊँचा है! बादशाह बहुत खुश हुआ, और दर्बार में उसकी स्वामी भक्ति की बहुत तारीफ़ की तथा शाहे गोलकुण्डा के जुम्मे ३ साल का कर जो ३ लाख रु० के लगभग था छोड़ दिया। और उसे पान तथा एक घोड़ा इनाम दिया।

हम यह पीछे कह चुके हैं कि बादशाह अपने सर्दारों और सेवकों की सम्पत्ति के मालिक होते थे। एक सिपह सालार बड़ा धनवान् समझा जाता था। पर वह अपने पीछे बादशाह को कुछ सम्पत्ति छोड़ जाना नहीं चाहता था। जब वह मर गया तो राज-कर्मचारी उसकी सम्पत्ति पर क़ब्ज़ा करने

को गये। तो देखा नौ बड़े २ भारी और मज़बूत सन्दूकों में सोने की मेखों के ताले लगे हैं। और सब तालों पर सील मोहर लगी है। उस पर एक २ चिट भी चिपकी हुई है कि यह सब बादशाह को समर्पित है। जब वे भरे दर्बार में खोले गये तो किसी में सींग और किसी में पुराने जूते थे। बादशाह यह देख अत्यन्त लज्जित हुआ, और कहा—मालूम होता है इसका बाप कसाई और माँ चमारिन थी, इन्हें ले जाकर उसके साथ दफ़न करदो।

इस प्रकार जो हक मिलता था। उसे बादशाह ख़जाने में नहीं भेजता था। किन्तु इसके लिये दो प्रथक ख़जाने थे। एक सोने के लिये, और दूसरा चाँदी के लिये। ये दो बड़े २ हौज़ थे। जिनकी लम्बाई ७० फुट और गहराई ३० फुट थी। बीच में २ सुन्दर संगमर्मर के स्तून थे। इनमें सोने वाले को ख़ज़ीरा और चाँदी वाले को भौरा कहा जाता था। इनको चोर दर्वाजों से बन्द किया जाता था। इन हौजों पर बड़े २ कमरे थे जो खर्च होने वाले ख़जाने के तौर पर काम में लाये जाते थे। यह जबर्दस्त ख़जाना और नूर जहाँ का भारी ख़जाना औरंगजेब के जमाने में मालगुजारी की कमी से ख़र्च हो गये।

इन ख़जानों में से उच्च अधिकारी असाधारण चोरियाँ भी करते थे। एक बार बादशाह प्रातःकाल बागीचे में घूमने और अपने हाथों से फल तोड़ने लगे। फिदाईखाँ अमीर साथ था। बादशाह उसे फल देता जाता था। महल में जाकर जब बादशाह ने फल माँगे तो उसने कहा—हुजूर! मेरे पास फल कहां हैं? वह इधर उधर तलाश करने के बहाने करने लगा। बादशाह ने नाराज़ होकर कहा—'यह तुम मेरे ही सामने झूंठ बोल रहे हो? इस पर फिदाईखां ने कहा—जहां पनाह! इन मामूली फलों की चोरी भी हुजूर ने मुझे नहीं करने दी परन्तु जहां पनाह वज़ीर की चोरियों से किस प्रकार आँखें बन्द किये हैं जो रोज़ाना ३० हज़ार रुपये जेब में डाल लेता है। बादशाह ने धीरे से कहा—हमको सब मालूम है। मगर मसलहतन चश्मपोशी करनी पड़ती है।

अमरसिंह राठौर की प्रसिद्ध दुर्घटना इसी बादशाह के भरे दर्बार में हुई। अमरसिंह के मरने पर उनका दर्जा उनके छोटे भाई जसवन्तसिंह को दिया गया। बुन्देलखण्ड के राजा चम्पतराय ने भी इसी बादशाह के ज़माने में ६० हज़ार सेना लेकर विद्रोह खड़ा कर दिया और कर देने से इन्कार कर दिया। और कई ज़िले लूटकर क़ब्जे में कर लिये। इस पर बादशाह ने स्वयं उसपर चढ़ाई की। और मन्त्री सईदुल्लाखां की चतुराई से उस पर विजय पा सका। परन्तु काश्मीर पर चढ़ाई में असफल रहा।

जिस समय बादशाह आखेट को जाना चाहता तो व्याधों को सूचना दी जाती, ये लोग वन में सिंहों का पता लगा कर वहां गधे—बैल—गाय—भेड़, बकरी आदि भेज देते जिससे कि सिंह इस वन को छोड़कर दूसरे वन को न चले जावें।

बादशाह अपने सबसे ऊँचे हाथी पर सवार होता और इसी प्रकार शाहजादे लोग सिंह के शिकार के लिये सधे हुए हाथियों पर होते सब लोग खुले होदों में बैठते और हाथ में बन्दूक़ लिये होते थे इसके उपरान्त वन के चारों ओर जाल लगाकर सिर्फ एक मार्ग छोड़ दिया जाता था जिसमें से बादशाह और शिकारी लोग प्रवेश कर सकें।

जाल के चारों ओर बाहर की तरफ सिपाही खड़े होते थे। परन्तु ये न सिंह मार सकते थे और न सिंह ही इन पर कोई बाधा पहुँचा सकता था। या किसी अन्य भांति से जाल से निकल सकता था। बादशाह इस ढङ्ग से शिकार के लिये चलते थे कि सब से पहिले एक पंक्ति में अपने भैंसे होते थे। जो लगभग संख्या में १ सौ से अधिक होते थे। इन पर हर एक पर एक २ पुरुष सवार होता था जिसकी टांगें चमड़े से आच्छादित रहती। एक हाथ में नंगी तलवार और दूसरे में वाग होती थी। जो भैंसे के नथनों में से चली जाती थी। इनके पीछे बादशाह अपने हाथी पर सवार होता और इसके अतिरिक्त शाहजादे तथा अन्य राज पुरुष। वन में पहुँच कर भैंसे धीरे २ चलते थे। सिंह दिखाई पड़ते ही सिंह का पता लेकर तत्काल घेरा बना कर इसे बीच में घेर लिया जाता था।

इस प्रकार सिंह अपने आपको चारों तरफ से घिरा हुआ पाकर निकलने की राह ढूंढते। परन्तु लाचार होकर अन्त में जिधर आसानी देखते छलाँगें लगा देते थे। तो भैंस सवार पुरुष शीघ्रता और फुर्ती से कूद पड़ते थे और भैंसे सिंह को सींगों पर उठा २ कर बहुत फुरती से मार डालते थे।

यदि कोई सिंह इनके सींगों से बच रहे या अपनी जगह से न उठे तो बादशाह या तो खुद गोली से मार देता था या ऐसा करने का हुक्म देता था। बहुधा बिना भैंसों को साथ लिये भी सिर्फ हाथियों पर सवार होकर शिकार के लिये जाते थे। परन्तु इसमें सवार को बहुत भय रहता था जैसा कि एक बार शाहजहाँ के साथ ऐसी घटना हुई थी।

एक सिंह अकस्मात घायल हो कर हाथी पर झपटा और उसके सिर में पंजे गड़ाकर लटक गया। महाबत भयभीत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और बादशाह ने अपने आपको संकट में देख बन्दूक दोनों हाथों से पकड़ कर सिंह को पीटना आरम्भ किया। परन्तु उसने अपनी गिरफ़्त को न छोड़ा। अब हाथी ने जब यह देखा कि मैं अपनी सूँड से कुछ नहीं कर सकता। तो भाग कर वृक्ष का आश्रय लेकर उसने सिंह को कुचल दिया। उस दिन से बादशाह ने आज्ञा दी कि शिकार के लिये जाने वाले हाथियों के सिर पर गरदन तक मोटे चमड़े के टोप चढ़ाये जाया करें जिसके ऊपर तेज़ काँटे लगे हों ब्याधों के अतिरिक्त शिकार में एक और भी अफ़सर प्रस्तुत रहता। जिसका कार्य सिंह की मूंछों को रखना होता था। अतएव ज्योंही सिंह मरे। वह तत्काल ही उसके सिर पर एक चमड़े की थैली चढ़ा कर ऊपर अपनी मोहर लगा देता था। जिसके उपरान्त सिंह शाही ख़ेमे के सामने लाया जाता था। जहाँ पहुँच कर वह अफ़सर जिसे ज़हरों का चार्ज सुपुर्द होता आकर मूंछों पर क़ब्ज़ा कर लेता था। जो विष की जगह पर काम आती थीं।

शाहजहां ने अपने केवल चार पुत्र और पुत्रियां जीवित रहने दीं और जब कभी उनकी संख्या अधिक होने लगती थी। तो वह अपनी स्त्रियों के हमल गिरवा दिया करता था। यह बुरा कार्य औरङ्गजेब ने भी किया था

और इसके उपरान्त उसके लड़कों ने भी। इसकी सबसे बड़ी लड़की बेगम-साहब जिसको यह सब से अधिक प्रेम करता था। बड़ी सुन्दर, चतुर, दाता और दयावाली थी। सबलोग उसे प्रेम की निगाहों से देखते थे और वह बड़ी सज धज से रहती थी। इस शाहज़ादी को बन्दरगाह सूरत की आमदनी के सिवाय जो इसके पिता ने इसे पान के ख़र्च के लिये दे रक्खी थी। तीस लाख रुपये की आमदनी थी। इसके अतिरिक्त इसके पास पिता के दिये हुये बहुमूल्य जवाहरात थे। यह दारा को चाहती थी। और उसे सदा इस बात की चिन्ता रहती थी कि दरबार के सब उमरा उसके विपक्षियों मे न मिल जायें।

इसने इस बात की बड़ी कोशिश की कि राजगद्दी का मालिक दारा हो। क्योंकि वह विवाह की बड़ी इच्छा रखती थी। और दारा ने प्रतिज्ञा की थी कि सिंहासन पर बैठते ही तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। इस बात को मनमें रखते हुए उसने अपनी सारी चतुराई बादशाह को प्रसन्न करने में लगा दी। यह सदा बड़े प्रेम और मन से शाहजहां की सेवा करती थी। और यही कारण था कि साधारण पुरुष कहते थे कि बादशाह का इसके साथ अनुचित सम्बन्ध है। दारा चाहता था और उसने बादशाह से विनोद भी किया कि शाहज़ादी का विवाह सिपह सालार नजाबतखां नामी से कर दिया जाये जो बलख़ के शाही ख़ानदान से सम्बन्ध रखता है। वह पुरुष वीर और सुन्दर था। परन्तु शाहजहां के साले शाइस्तखां ने इस समाचार को जानकर शाहजहां को समझाया कि ऐसा न करना। क्योंकि यदि उसकी शादी शाहज़ादी से होगई तो उसे अवश्य ही शाहज़ादों की पदवी देनी होगी। इसके अतिरिक्त नजाबतख़ाँ शाहे बलख़ का सम्बन्धी है। जिसके साथ कभी न कभी आपको लड़ना पड़ेगा। और दूसरे अकबर का यह भी फ़रमान है कि लड़कियों की शादी नहीं होनी चाहिये। यही कारण था कि यद्यपि शाहजहां की इच्छा थी तो भी उसने अपनी लड़की की शादी नहीं की।

यह शाहज़ादी गाने बजाने और नाच रंग में बड़ी चतुर थी। एक

दिन नाच में लीन हो रही थी कि नाचने वाली की एक बारीक पोशाक में जो इतर में बसी हुई थी आग लगगई। शाहज़ादी इसे बहुत प्रेम करती थी इस लिये इसे बचाने दौड़ी और आग बुझाते २ छाती जला बैठी इस लिये दरबार में चरचा हुई। परन्तु शाहजादी को बड़ा दुःख हुआ जब उसे पता मिला कि वह स्त्री जिसके लिये इसने इतना कष्ट उठाया था बच नहीं सकी इन खेल तमाशों के अतिरिक्त शाहजादी अंगूरी शराब को बहुत चाहती थी जो फ़ारिस, काश्मीर और काबुल से मंगाई जाती थी परन्तु इसके पीने की अच्छी शराब वह थी जो उसके अपने घर में बनाई जाती थी। यह शराब बड़ी स्वाद होती थी और अंगूर में गुलाब और बहुत से पदार्थ डाल कर बनाई जाती थी। मैंने इसके हुरम के कई मनुष्यों को स्वस्थ किया था। इस लिये बहुधा कृतिज्ञता प्रकट करने के लिये उस शराब की बोतलें मेरे पास भेज दिया करती थी। इससे मुझे बहुत लाभ होता था। बेगम साहब रात को उस समय शराब पिया करती थी जब गाना बजाना इत्यादि होता था और कभी २ इस दशा को पहुंच जाती थी कि वह खड़ी भी नहीं रह सकती थी। इस लिये उठा कर बिसतर पर ले जाना पड़ता था। जिस समय बेगम साहिब महल से दरबार को चलती है तो बड़ी सज धज कर और बहुत से सवार और पियादे तथा खुवाजा सरा जलूस में लिये चलती हैं। खुवाजा सरा जो इसके चारों ओर घेरा डाले होते हैं— जिस किसी को सामने देखे धकेल कर एक तरफ कर देते हैं। और किसी का कोई मान नहीं रखते बलकि चलते हुये हटो बचो के नारे लगाये जाते हैं। इसी प्रकार सब शाहजादियां आती हैं और इसी लिये जो इन्हें आते देखता है शीघ्रता से रास्ता छोड़ कर एक ओर होजाता है।

इनकी सवारी बड़ी धीरे २ चलती है। आगे २ सक्के सड़कों पर पानी छिड़कते हैं जिससे कि धूल न उड़े शाहज़ादियां पालकीमें सवार होती हैं। जिसके ऊपर एक बहुमूल्य वस्त्र या सुनहरी जाली होती है जिसमें बहुधा क़ीमती पत्थर और जवाहरात लगे रहते हैं। पालकी के गिर्द खुवाजा सरा मोर के परों के गुच्छों से मक्खियां उड़ाते जाते हैं। जिनके दस्ते

जवाहिरात से जटित और ऊपर सुनहरी काम होता है। सेवक सुनहेरी या रुपहेरी भण्डे लिये हुए हटो बचो पुकारते हैं। पालकी के साथ नाना प्रकार की सुगन्ध रहती है।

यदि मार्ग में कोई अमीर अपने आदमियों सहित मिल जाय तो चूँकि वह ऐसे मुरब्बी साहित करने का इच्छुक था। जिनके हाथों से राजधानी के सारे काम निकले। इसलिये वह आदर भाव से सड़क से हट और घोड़े से उतर कर दोनों हाथ जोड़े हुए दो सौ कदम के फासले पर खड़ा हो जाता है। इस जगह वह उस समय तक खड़ा रहता जब तक कि शाहजादा समीप न आ जाय और फिर उसे बड़ा गहरा सलाम करता।

शाहजहां का सबसे बड़ा लड़का दारा था। यह रोबदार, सुन्दर, स्वच्छ दिल, अच्छे आचार, बाल सुन्दर, भाषण, दयालू और निस्सहायों पर दया करने वाला था। परन्तु अपनी धुन का इतना पक्का था कि सदा यह समझता था कि मुझे किसी अन्य पुरुष की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं। वह सदा अनुमति देने वालों से घृणा करता था। और यही कारण था कि इसके प्रिय से प्रिय आवश्यकीय घटनाओं में भी इसको कुछ राय देने का साहस नहीं करते थे। यद्यपि इसके संकल्प से परिचित होना कठिन न था। वह सदा यह विचारा करता था कि उसका भाग्य बड़ा प्रबल है और प्रत्येक मनुष्य इसे प्रेम की दृष्टि से देखता है। वह राग रंग और नाच कूद को बहुत चाहता था। दारा फिरङ्गी लोगों को बहुत चाहता था इसके अतिरिक्त जैसे कि हर मनुष्य जानता था। इसका कोई दीन नहीं था।

यही कारण था कि औरंगजेब ने इसे काफ़िर के नाम से पुकारा। दारा पादरियों के साथ धार्मिक विषयों पर बातचीत करने और मुसलमान मोलवियों से उसका मुकाबला करने में बड़ा आनन्द लेता था। इस दशा में वह कमरे के चारों ओर एक पटका लपेट लेता था। शाहज़ादा पादरियों को उन लोगों की दलीलों के सामने हारता हुआ देखकर खुश होता था।

दारा को ज्योतिषियों पर पूरा विश्वास था। और बहुत से ज्योतिषी इसके दरबार में रहते थे। जिनमें सबसे बड़ा मेरा मित्र था। जिसका नाम

भवानीदास था। क्योंकि वह मेरे पास कई बार शराब पी जाया करता था। इस शाहज़ादे के दो लड़के थे। बड़ा सुलेमान शिकोह और छोटा शहर शिकोह। ये दोनों बड़ी बेगम के पेट से हुये थे जो शाही ख़ानदान से थी। जिस समय शाहजहां ने प्रत्येक शाहज़ादे को प्रथक २ देश बाँट दिये तो उसने दारा को काश्मीर लाहौर और काबुल का देश देकर अपने पास रख लिया। उसे इससे इतना प्रेम हो गया था कि इसे उसने बहुत से हक़ूक़ दे दिये जैसे हाथियों का लड़ाना, अपने सामने सोने चाँदी के गुर्ज रखवाना। जो केवल बादशाह के सामने ही रखे जाते हैं। अपने प्रेम को प्रकट करने के लिये उसने आज्ञा दी कि उसके राजसिंहासन के पास एक और छोटा सा सिंहासन रखा जाय, जिसपर शाहज़ादा बैठा करे। यद्यपि दारा पिता का मान करता हुआ उस पर कभी बैठना नहीं चाहता था।

इसके अतिरिक्त शाहजहां ने अपने सब उमरा को आज्ञा दी कि सवेरे का सलाम दारा को देकर फिर शाही हजूर में आयें। कई अवसरों पर उसने कहा कि मैं दारा को अपना युवराज बनाना चाहता हूँ। और जहां तक भी बनेगा इसको अपना युवराज बनाऊँगा।

यह भी किम्वदन्ती थी कि दारा ने महा प्रसिद्ध और चतुर अमीर सईदउद्दौला खां के प्राण ज़हर से लिये थे क्योंकि वह औरङ्गजेब का पक्षपाती था। बादशाह और सारा दरबार इससे प्रेम करता था। इसी प्रकार उसने एक हिन्दू राजा जयसिंह को भी अप्रसन्न कर लिया। यह पुरुष ४० हज़ार सवार और एक लाख पचास हजार सेना दल का अधिराज था। दारा ने एक बार कहा कि जयसिंह मिरासी प्रतीत होता है। राजा दिखावटी रूप में तो उस कटाक्ष को हज़म कर गया। परन्तु जिस समय दारा को उसकी आवश्यकता पड़ी तो उसने अपना बदला लेकर ही छोड़ा।

इसने उमरा को भी अपने प्रतिकुल बना कर महा वीर मीरजुमला से भी मख़ौल किया। और जब बादशाह के दरबार में आया तो अपने चलते पुर्जों के द्वारा उसकी तलवार चुरा ली। और समय २ पर अपने मसख़रों से उसकी चाल ढाल पर नक़ल कराता रहा।

शाहजहाँ का तीसरा बेटा औरंगजेब था। जो आजकल भारतवर्ष का बादशाह है। यह अपने सब भाइयों से स्वभाव में निराला, संजीदा और अपने कार्य गुप्त रूप से निकालने का आदी था। इसका चित्त कुछ रोगी सा था और सदा कुछ न कुछ करता रहता था। इसका उद्देश्य यह रहता था कि बात की तह को पहुँचकर पूरा न्याय करे। उसे यह बड़ी चाह थी कि दुनिया उसे बुद्धिमान, चतुर और न्याय रक्षक समझे। दान पुण्य करने में भी वह अच्छा था। और केवल वहीं पारितोषिक और दान देता था जहाँ पूरी आवश्यकता हो।

परन्तु चिरकाल तक उसने यह प्रसिद्ध कर छोड़ा कि उसने दुनिया को त्यागकर राजसिंहासन के सब हक़ छोड़कर अपनी आयु खुदा की पूजा में व्यतीत करने का निश्चय कर लिया है।

फिर भी दक्षिण में होते हुये वह अपनी बहन रोशन आरा के द्वारा सिंहासन के लिये पूरा उद्योग करता रहा परन्तु जो कुछ होता था वह गुप्त रूप से और ऐसी चतुराई से होता था कि किसी को भेद न लगे। इसके अतिरिक्त उसे भय था कि उसे दक्षिण से बुला न लिया जाय। इसीलिये वह सदा इस उद्योग में था कि शाहजहां के दिल पर घर करे।

शाहजहां का सबसे छोटा और चौथा लड़का मुराद बख़्श था। यह पुरुष बहुत कम बुद्धि वाला था। खाने पीने और आनन्द भोगने के सिवाय कुछ नहीं जानता था। वह बड़ा बहादुर और पुरुषार्थी और सदा शस्त्र चलाने में लगा रहता था। और बाण विद्या में तो अपने फ़न का उस्ताद ही था। और कई बार बड़े २ भेड़ियों और रीछों को अपने हाथ से भाला मारने के शौक़ में अपने प्राण संकट में डाल चुका था। इसका कोई भाई शूर वीर और लायक़ नहीं था। जब कभी लड़ाई का वर्णन आता तो उसे बड़ी प्रसन्नता होती और अपने हाथों और तलवार पर भरोसा रखता हुआ वह सदा दरबार की बातों को घृणा की दृष्टि से देखता था और किसी को अपने सामने कुछ हस्ती नहीं समझता था।

अपने अन्तिम दिनों में बादशाह अपने पुत्रों से भयभीत रहने लगा। वे सब बालिग़ और बाल बच्चेदार थे। पर परस्पर उनमें प्रेम न था। दरबार में भी प्रत्येक शाहज़ादे के पृथक २ पक्षपातियों के दल थे। वह बहुधा उन्हें ग्वालियर के क़िले में क़ैद करने की सोचा करता था पर उसे हिम्मत न होती थी। उसे ऐसा ख़याल हो गया था कि या तो राजधानी में ही मार-काट मचावेंगे या पृथक २ राज्य क़ायम करेंगे। उसने तीनों को दूर २ प्रदेशों का सूबेदार बनाकर भेज दिया था। केवल दारा उसके पास था जो काबुल और मुलतान का सूबेदार था। तीनों शाहज़ादे पृथक २ अपने २ प्रान्तों में स्वतन्त्र बादशाह की भाँति रहते थे। वे सारी आमदनी स्वयं ख़र्च करते और सेना संग्रह करते थे।

औरंगज़ेब के विषय में लिखा जा चुका है कि यह बड़ा तत्पर, ढोंगी, और दूरदर्शी एवं मुस्तैद आदमी था। इसे एक ऐसा मित्र मिल गया जिसने इसके भाग्य का सितारा चमका दिया। इस आदमी का नाम मीर जुमला था। यह मनुष्य ईरानी था, और अत्यन्त साधारण व्यक्ति था। वह एक सौदागर के साथ उसके कुछ घोड़ों पर नौकर होकर गोलकुण्डे आया था। इसके बाद उसने जूते बेचने का काम किया। पर शीघ्र ही उसका भाग्य चमका और वह भारी व्यापारी प्रसिद्ध हो गया। इसने धन भी बहुत इकट्ठा कर लिया और समुद्र में उसके अपने कई जहाज़ चलने लगे। अपनी बुद्धिमत्ता से दरबार में भी प्रसिद्ध हो गया था। उसने शाह गोलकुण्डे को चीन से मँगवाकर कुछ सौग़ातें दीं और कुछ अन्य बहुमूल्य भेंट देकर उन्हें प्रसन्न कर लिया। और वह कर्नाटक का हाकिम बना दिया गया। जहाँ उसने वहाँ के मन्दिरों के अटूट ख़ज़ाने लूटकर बेतोल सम्पदा इकट्ठी की। इस प्रान्त में इसने 'लाल' की खान भी ढूंढ़ निकाली। और एक स्वतन्त्र फ़ौज शसक्त संगठित कर ली। जिसमें फिरङ्गी तोपची थे। इन सब बातों से बादशाह इस आदमी से चौकन्ना हो गया, उसे ऐसा भी सन्देह हुआ कि शाही बेगमों से इस व्यक्ति का गुप्त सम्बन्ध है। एक बार उसने भरे दरबार में उसे दुर्वचन कहे। मीर जुमला शाह का रुख़ समझ गया, उसने औरंगज़ेब को

एक ख़त लिखा—जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था और औरङ्गाबाद में रहता था। उस ख़त का मज़मून यह था—

साहबे आलम,

मैंने शाह गोलकुण्डा की वह बड़ी २ ख़िदमतें की हैं कि जिन्हें तमाम ज़माना जानता है। और जिनके लिये उन्हें मेरा बहुत मामून होना चाहिए। मगर इतने पर भी वह मेरी और मेरे ख़ानदान की बर्बादी की फ़िक्र में हैं। इस लिये मैं आपकी पनाह लेना और आपके हुजूर में हाज़िर होना चाहता हूँ। और इस दरख़्वास्त की क़बूलियत के शुक्राने में जिसकी आपकी जानिब से पूरी उम्मीद है एक मनसूबा अर्ज़ करता हूँ। जिसके ज़रिये आप आसानी से बादशाह को गिरफ़्तार करके मुल्क पर क़ब्ज़ा कर सकते हैं। आप मेरे वादे की सच्चाई पर एतबार और भरोसा फ़र्माएँ। इन्शा अल्ला यह युक्ति न तो कुछ मुश्किल ही होगी और न कुछ ख़तरनाक ही। यानी आप ५ हज़ार चुने हुये सवारों के साथ बहुत जल्द बिना तकल्लुफ़ कूच करते हुए गोलकुण्डा की तरफ़ चले आवें जिस में सिर्फ़ सोलह दिन लगेंगे। और यह मशहूर करदें कि शाहेजहां का सफ़ीर शाहे गोलकुण्डा से ज़रूरी बातें तय करने आया है। यह फ़ौज उसकी अर्दली में है। वह शख़्स जिसकी मार्फ़त हमेशा उमूर की इत्तला बादशाह को होती है मेरा क़रीबी रिश्तेदार है और उस पर मुझे कामिल भरोसा है। इस लिये मैं वादा करता हूँ कि एक ऐसा हुक्म जारी हो जायगा कि जिस की बदौलत आप बिना सन्देह के भाग नगर के दर्वाजे तक पहुँच जायेंगे। परन्तु जब बादशाह मामूल के मुआफ़िक़ फ़र्मान के इस्तक़बाल के लिये जो सफ़ीर के पास हुआ करता है आवे तब उसे बाआसानी गिरफ़्तार करके जो मुनासिब समझें उस के लिये तजवीज़ कर सकते हैं। इस मुहिम का कुल ख़र्चा मैं आप को दूँगा। और इस के इख़्तताम तक ५० हज़ार रुपये रोज़ देता रहूँगा।

नियाज़मन्द—

'मीरजुमला'

औरङ्गज़ेब इस स्वर्ण सुयोग को कब छोड़ता। वह तत्काल चल पड़ा पर ठीक वक्त पर बादशाह पर भेद खुल गया और वह भाग गया। और गोलकुण्डा के क़िले में चला गया। इस क़िले को औरङ्गज़ेब ने घेर लिया दो महीने बीत गये। औरङ्गज़ेब के पास तोपें न थीं लाचार था। पर उधर क़िले में पानी और रसद भी चुक गई थी। पर इसी बीच में शाहजहाँ ने उसे तत्काल लौट आने का हुक्म भेज दिया। जिससे वह पछताकर लौट गया। पर इतनी सन्धि करता गया—

१—चढ़ाई का कुल ख़र्च शाह से वसूल किया।

२—मीर जुमला मय कुटुम्ब और सम्पति के राज्य से बाहर चला जाने दिया जाय।

३—बड़ी शाहज़ादी का अपने बड़े पुत्र महमूद से शादी करदी जाय। और उसका पुत्र ही गोलकुण्डा का उत्तराधिकारी समझा जाय। दहेज़ में रामगढ़ का क़िला मय सामान दिया जाय।

४—सिक्कों पर शाहजहाँ के शख्स की छाप रहे।

औरङ्गजेब के इस काम में दारा और बेगम साहेब (शाहजहाँ की बड़ी पुत्री) ने विघ्न डाला था। वे दोनों दोस्त लौटे। रास्ते में उन्होंने बीजापुर का बोदर का क़िला फ़तह कर लिया। और दौलताबाद में रहने लगे। वहाँ औरङ्गज़ेब ने उसे चिकनी चुपड़ी बातों से अपना सहायक बना लिया। और उसने भी प्रतिज्ञा की कि मैं आपके लिये तन मन धन न्यौछावर कर दूँगा। औरङ्गज़ेब भी समझ गया कि यही पुरुष तख़्ते हिन्दुस्तान पर बैठाने की ताक़त रखता है।

शाहजहाँ तक भी उसकी वीरता और योग्यता की सूचनाएँ पहुंची और उसने उसे बुलाने के बारम्बार निमन्त्रण भेजने प्रारम्भ किये। अन्त में वह दिल्ली आया। शाही हुक्म से मार्ग में उसका सर्दारों ने भारी सत्कार किया। जब वह आगरे पहुंचा तो बड़े २ सेनापति उसके स्वागत को आए और तमाम बाज़ार सजाए गये। जिस प्रकार बादशाह के लिये सजाए जाते हैं। उसने बादशाह को भारी क़ीमत की भेंटें दीं। जिनमें जगत्

प्रसिद्ध कोहनूर हीरा भी था। और बादशाह को गोलकुण्डा के शाह के विरुद्ध ख़ूब उभारा। वह राज़ी होगया और एक भारी सेना मीर जुमला की आधीनता में भेजी। जिसे लेकर उसने बीजापुर का कल्याण का क़िला का घेरा। इस काम में दारा और शाहजहाँ ने दो चालाकी के काम किए— एक तो यह कि मीर जुमला के स्त्री बच्चों को बतौर ज़मानत अपने पास रख लिया, दूसरे उस से वादा करा लिया कि उस काम में औरङ्गजेब का कोई सरोकार न होगा।

इस वक्त बादशाह ७० वर्ष से ऊपर आयु को पहुँच चुका था। और उसे एक भयङ्कर बीमारी लग गई थी उसने इस अवस्था में अपनी शक्ति का विचार न कर बहुत सी कामोत्तेजक दवाइयाँ खाई थीं इसका परिणाम यह हुआ कि ३ दिन तक बादशाह का पेशाब बन्द रहा। इस ख़बर ने देश भर में हलचल मचादी बादशाह ने यह देख क़िले के सब दर्वाज़े बन्द करा कर केवल दो दर्वाज़े खुले रखने की आज्ञा दी। एक पर जसवन्तसिंह राठौर को और दूसरे पर रामसिंह को ३०, ३० हज़ार सैनिकों सहित नियत कर दिये। और हुक्म दिया कि सिवा दारा के किसी को भीतर न आने दें। उसे भी सिर्फ़ १० आदमी लेकर भीतर आने की आज्ञा थी, मगर वह रात भर क़िले में नहीं रह सकता था। सिर्फ़ बादशाह की बड़ी बेटी बेगम साहेब ने ज़िद की और कुरान उठाकर क़सम खाई कि दग़ा न करेगी।

यह सब अवसर देख दारा ने दिल्ली आगरा और लाहौर में तत्काल सेना संग्रह प्रारम्भ कर दिया। बाज़ार बन्द होगया। कहीं २ बादशाह के मरने की भी ख़बर पहुंच गई। शाह शुजा को बङ्गाल में यह ख़बर लगते ही वह सेना लेकर कूच दर कूच करता दिल्ली की ओर बढ़ा। उसके साथ ४० हज़ार सवार और अनगिनत प्यादे थे। इसके सिवा उसने पुर्तगीज़ों की आधीनता में एक बेड़ा भी गङ्गा में तैयार करा लिया था। वह यह प्रचार करता आता था कि दारा ने बादशाह को विष दिया है और मैं उसे दण्ड देने जाता हूँ। बादशाह ने उसे लौट जाने का हुक्म भेजा, पर उसने न माना। तब बादशाह ने हारकर उसी रोग की हालत में दिल्ली से आगरे तक

की यात्रा की। और दारा के बेटे सुलेमान शिकोह को राजा जयसिंह और सेनापति दिलेरखाँ के साथ शुजा पर एक भारी सेना लेकर भेजा। जिन्होंने उसे बङ्गाल की ओर खदेड़ दिया।

अब बादशाह ने देहली कूच की तैयारी की। उसका इरादा देहली राजधानी ले आने का था। कई दिन तक सड़कें लश्करों से भरी चलती रहीं पर ज्योंही बादशाह चलने को हुआ कि उसे ख़बर मिली कि औरङ्गजेब ने विद्रोह किया है। यह सुनकर बादशाह ने यात्रा रोक दी। और औरंगजेब को लौट जाने का हुक्म भेजा। मगर उसने इसकी परवा न की। रास्ते में उसे पता लगा कि मुराद बख़्श भी सेना सजा चुका है, अतः उसने उसे पत्र लिखा उसका आशय यह था—

बहादुर भाई! मैंने सुना है कि दारा ने ज़हर देकर हमारे पिता बुज़ुर्गवार को मरवा डाला है। मैं इस पत्र द्वारा आप पर प्रकट करना चाहता हूँ कि आपके सिवा कोई भी शाहज़ादा गद्दी का हक़दार नहीं। दारा क़ाफ़िर है शुजा, अली का पैरोकार है, मेरी सल्तनत क़ुरान है, और इरादा कर चुका हूँ कि जीवन के शेष दिन मक्के में व्यतीत करूँगा। मैंने इरादा किया है कि जी जान से कोशिश करके आपको तख़्त पर बैठा दूँगा। मेरी सारी चतुराई, धन, फ़ौज आपकी है। मेरी यही अर्ज़ है कि जब आप बादशाह हो जायँ मेरे बाल बच्चों पर महरबानी की नज़र रक्खें। ये एक लाख रुपये मैं आपको बतौर नज़राने के भेज रहा हूँ। आप फ़ौरन सूरत के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लीजिये जहां बहुत सी दौलत सुरक्षित है।

आप का प्यारा भाई—औरंगज़ेब।

पत्र पाकर मुराद फूलकर कुप्पा होगया। उसने फ़ौरन फ़ौज भर्ती करना शुरू कर दिया। और औरंगजेब को शीघ्र लश्कर समेत आ मिलने को लिख भेजा। उसने महाजनों को भी यह पत्र दिखा कर बहुत सा रुपया क़र्ज़ ले लिया।

औरंगजेब ने अब अपने पुत्र सुल्तान मुहम्मद को मीर जुमला को लेने भेजा जो कल्याण के क़िले का मुहासरा किये पड़ा था और लिखा आपकी

सम्मति की बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि कई कठिन काम आपड़े हैं। आप मुझे तुरन्त औरंगाबाद में आकर मिलें। उसने जवाब में लिखा—

"कल्याण का मुहासरा छोड़ और फ़ौज से अलहदा होकर मैं औरंगाबाद नहीं आ सकता। इसके अलावा आप विश्वास करें कि मैंने ठीक ख़बर पाई है कि बादशाह सलामत अभी ज़िन्दा हैं। फिर यह भी बात है कि जब तक मेरे बाल बच्चे दारा के क़ब्ज़े में हैं मैं आपके शरीक नहीं हो सकता।

यह जवाब पाकर औरंगजेब ने अपने दूसरे पुत्र मुअज़्ज़म को उसके निकट भेजा। जो समझा बुझाकर उसे ले आया वहां दोनों दोस्तों ने सलाह की और फ़र्ज़ी तौर से मीर जुमला क़ैद होकर दौलताबाद के क़िले में रख दिया गया। उसने औरंगजेब को रुपया भी बहुत दिया जिससे उसने फ़ौजें भर्ती कर डालीं। उसने दक्खिन के सब क़िलेदारों और फ़ौजदारों को अपना साथ देने को तैयार कर लिया। नर्बदा पर एक क़िला था जहां होकर दक्खिन का रास्ता था। वहां के क़िलेदार मिर्ज़ा अब्दुल्ला को उसने कहला दिया कि यदि कोई क़ासिद इधर से गुज़रे और उसके पास ऐसी चिट्ठियां हों जिनमें बादशाह के ज़िन्दा होने की बात हो तो वे चिट्ठियां जला दी जायँ और उस आदमी का सिर काट लिया जाय। इसप्रकार उसने दक्खिन में असली ख़बर पहुँचने न दी और सब सर्दार अपनी २ फ़ौज लेकर उसके साथ हो लिये।

मुराद को वह बराबर चिकनी चुपड़ी चिट्ठियाँ लिख रहा था। मांडो के जंगलों में दोनों सेनाएं मिलीं। औरंगज़ेब हाथ बाँधे मुराद के सामने गया। उसे बादशाह कहा और बड़े २ सब्ज़ बाग़ दिखाए। मुराद ने भी बड़े २ वादे किये। अब दोनों लश्कर साथ २ चले।

यह भयानक समाचार आगरे पहुँचा तो दर्बार में हलचल मचगई। शाहजहां ने दोनों शाहज़ादों को वापस जाने को लिख भेजा। उत्तर में औरंगज़ेब ने लिखा—

'मुझे बन्दगाने वाला की सलामती की ख़बर पर यक़ीन नहीं आता। और बिलफ़र्ज़ अगर वे ज़िन्दा और सलामत हैं तो क़दमबोसी हासिल करने और इर्शाद अहकाम से सरफ़राज़ होने की मुझे बड़ी तमन्ना है।'

लाचार बादशाह ने अपने सर्दारों से सम्मति ली और क़ासिमख़ां तथा जसवन्तसिंह को एक टुकड़ी सेना देकर उन्हें रोकने को भेजा गया। उन्हें आज्ञा थी जहां तक बने औरंगज़ेब को वापस लौटा दें और उज्जैन में चिपरा नदी पार न करने दें।

गर्मी की ऋतु थी और नदी का जल बहुत सूख गया था। राजा और क़ासिम नदी के इस पार थे कि टीले पर औरंगज़ेब की फ़ौज दिखाई दी। यदि राजा साहेब उसी वक्त हमला बोल देते तो औरंगज़ेब की थकी हुई सेना के पांव उखड़ जाते, परन्तु उन्हें तो आज्ञा ही यह थी कि नदी के इस पार रहें और औरंगज़ेब को इस पार आने से रोकें। औरंगज़ेब ३ दिन तक नदी के उस पार पड़ा रहा। तीसरे दिन उसने एक ऊँचे टीले पर तोपख़ाना जमाया और राजा साहेब की सेना पर गोले बरसाने की आज्ञा दी। साथ ही अपनी सेना को पार उतरने की भी। राजा साहेब ने वीरता से युद्ध किया पर क़ासिम ख़ां प्रथम ही औरंगज़ेब से मिल गया था। उसने रातों-रात गोला बारूद नदी में फिकवा दिया था। शीघ्र ही उनका गोला बारूद चुक गया। औरंगज़ेब इस पार उतर आया। और क़ासिम ख़ां घोर संकट में जसवन्तसिंह को छोड़कर भाग खड़ा हुआ। राजा जसवन्तसिंह खूब लड़े उनके १८ हज़ार राजपूतों में सिर्फ ६०० बचे। तब जसवन्तसिंह आगरे न जाकर सीधे जोधपुर चले आए। वहां पहुंचते २ सिर्फ १४ योद्धा उनके साथ बचे थे।

इस विजय से औरंगज़ेब का साहस बढ़ गया। और इसने प्रसिद्ध किया कि शाही फ़ौज में ऐसे ३० हज़ार सिपाही हैं जो हमारी सेना में आने को तैयार हैं।

औरंगजेब ने उस स्थान पर एक सराय बनवाई और बाग़ लगाया और उसका नाम फ़तहपुर रक्खा। उसके हाथ बहुत सा सामान गोला बारूद लगा। जो क़ासिमख़ां ने ज़मीन में गड़वा दिया था।

शाहजहां ने यह सुना तो दुःख और बेचैनी से बेहोश होगया। दारा का भी बुरा हाल था। उधर सुलेमान शिकोह शुजा के पीछे लगा था, उसे बादशाह बारंबार लौट आने के सन्देश भेज रहा था।

दारा ने १ लाख सवार, बीस हज़ार पैदल, ८० तोपें एकत्र कीं और युद्ध की तैयारी की। औरंगज़ेब के पास ४० हज़ार सवार थे। वे थके हुए भी थे, पर दारा को चैन न था, अब वह बादशाह का हुक्म नहीं मानता था। बल्कि हुक्म चलाता था। बादशाह हर तरह उससे लाचार हो गया था। विश्वासी सरदार सुलेमान शिकोह के साथ थे, दर्बार में जो सरदार थे, उन के ऊपर विश्वास नहीं किया जा सकता था। क्योंकि दारा ने बहुतों का अपमान किया था।

बादशाह स्वयं इस युद्ध में सेना पति बनना चाहता था। यदि ऐसा होता तो युद्ध टल जाता पर दारा को गर्व था कि विजय का सेहरा मैं अपने सिर बांधूँगा। दारा को यह भी समझाया कि सुलेमान शिकोह के आने तक ठहरो जो तेज़ी से बढ़ा आ रहा है – पर उसने न माना। वह जब कूच करके पिता से मिलने गया तो बादशाह ने कहा 'तुमने अपनी मर्ज़ी का काम किया, खुदा तुम्हें सुर्खरू बनाये; दारा चल दिया और आगरे से ६० मील दूर चम्बल नदी का घाट रोक पड़ाव डाल दिया।

औरंगजेब ने भेदिये लगा रक्खे थे। और उसे दारा की गति विधि मालूम थी इतने पर भी उसने अपने डेरे उस पार लगा दिये। और जान बूझ कर इतने पास लगाये कि जिन पर दारा की दृष्टि पड़ सके। इसके बाद उसने चम्पतराय से सन्धि कर वहां से १२ फर्लाङ्ग की दूरी पर दुर्गम बन में होकर सेना इस पार उतार ली। जब वह चुपचाप जमना किनारे तक पहुँच गया तब दारा को इस बात का पता चला और उसने उसका पीछा किया। अब आगरा निकट हो आगया था। औरंगजेब यहां सेना को विश्राम की आज्ञा देकर सामग्री और मोर्चेबन्दी की तैयारी करने लगा।

उधर दारा ने सबसे आगे तोपें लगा कर ऐसी जकड़ दी कि शत्रु के सवार पंक्ति भंग न कर सकें। उनके पीछे उसने ऊंटों पर छोटी तोपें सजाईं। इसके पीछे पैदल सेना पंक्ति बांध बन्दूक दाग़ने को तैयार होगई। शेष सेना सवारों की थी जिन में राजपूतों पर तलवारें या बर्छियां थीं और मुग़लों पर तलवारें, तीर और धनुष। इस सेना के दाहिनी ओर ख़लीलुल्लाहख़ां

था जिस के आधीन १० हज़ार सवार थे। बांई ओर रुस्तमख़ां दक्खिनी, राव छत्रसाल और सर्दार रामसिंह थे। औरङ्गज़ेब की सेना की भी यही व्यवस्था थी। अन्तर यह था कि कुछ छोटी तोपें उसने दायें बायें भी छिपा दी थीं। यह युक्ति मीर जुमला ने बताई थी जो बहुत उपयुक्त निकली।

ज्यों ही युद्ध प्रारम्भ हुआ कि तोपों ने आग बर्सानी शुरू करदी और तीरों की इतनी वर्षा हुई कि बादल छागया। पर इतने में ज़ोर से वर्षा होने लगी। थोड़ी देर के लिये युद्ध रुक गया। पर पानी बन्द होते ही तोपें फिर चलने लगीं। इस समय दारा शिकोह एक सुन्दर सिंहलद्वीपी हाथी पर सवार होकर सेनाओं का उत्साह बढ़ाता शत्रु की तोपें छीनने को आगे बढ़ा। उधर शत्रु ने इतने गोले बरसाये कि मृतकों के ढेर लग गये। फिर भी दारा साहस पूर्वक बढ़ता ही गया। उसने बहुत चेष्टा की पर औरङ्ग-ज़ेब के पास तक न पहुँच सका क्योंकि उधर के तोपख़ाने ने इनके सिपाहियों के छक्के छुड़ा दिये। परन्तु दारा ने साहस करके उनकी तोपों पर आक्रमण कर ही दिया। उनकी सांकलें खोल डालीं और ख़ेमों में घुस तोपचियों और पैदलों को रौंद डाला। इस अवसर पर इतना घमासान युद्ध हुआ कि लाशों के ढेर लग गये और तीरों से आकाश छा गया। परन्तु ये तीर व्यर्थ जाते थे। १० में ९ बे निशाने पड़ते थे। जब तरकश ख़ाली होगये तो तलवार खटकी। अन्त में शत्रुओं के सवार भाग खड़े हुये।

औरङ्गज़ेब भी निकट ही था वह हाथी पर बैठा सेना को साहस दे रहा था। पर कोई सुनता न था। उसके १ हज़ार सवार बच रहे थे जो तेज़ी से काटे जा रहे थे। यह देख उसने सर्दारों से कहा—भाइयो! दक्खिन दूर है, और अपने हाथी के पैरों में सांकल डाल दी यह देख सैनिक फिरे। दारा ने औरङ्गज़ेब पर छापा मारना चाहा पर उसके सवार यद्यपि पंक्ति बद्ध नहीं थे, धरती भी ऊबड़-खाबड़ थी अतः वह सफल नहीं होता था। इस समय औरङ्गज़ेब पर संकट सिर पर आया था। इतने ही में

उसने देखा कि सेना के बायें भाग में बड़ी हलचल मची है। कुछ क्षण बाद ही समाचार मिला कि रुस्तमख़ां मारे गये। और रामसिंह शत्रु-सेना में घिर गये हैं।

अतएव वह औरङ्गज़ेब पर छापा मारने का विचार छोड़ बांई ओर को भागा। उसके पहुँचने पर वहां लड़ाई का रंग बदल गया। शत्रु पीछे हटने लगे। वहां रामसिंह ने बड़ी वीरता प्रकट की थी उसने मुराद बख़्श को घायल कर दिया था और उसकी अमारी का रस्सा काट हौदे से गिराने की चेष्टा कर रहा था। पर वह भी वीरता से बचाव कर रहा था। वह फुर्ती से अपने ८ वर्ष के बच्चे को ढाल से बचा रहा था। अन्त में एक तीर से उसने रामसिंह को मार गिराया। रामसिंह के मरते ही राजपूत जोश में आकर भिड़ गये। उन्होंने मुराद को घेर लिया। अब दारा भी इस में पिल उठा ऐसा करने से औरङ्गज़ेब बचा जाता था पर वह मुराद को भी छोड़ न सकता था। इस समय सरदार ख़लीलुल्ला ने विश्वासघात किया। वह दाहिने पक्ष का सर्दार था, और उस के आधीन ३० हज़ार शिक्षित सवार थे। अकेला वही औरङ्गज़ेब के लिये काफ़ी था—पर उसने कुछ भी नहीं किया। उस ने सैनिकों से कहा—हमें एक तीर भी छोड़ने की आवश्यकता नहीं हम ख़ास मौक़े पर काम आवेंगे। इस सर्दार का एक बार दारा ने अपमान किया था जिसका उसने इस प्रकार बदला लिया।

परन्तु दारा ने उसकी सहायता के बिना ही विजय प्राप्त करली थी। परन्तु ऐन मौक़े पर इस ने दारा को पुकार कर कहा—मुबारिकबाद हज़रत-सलामत, अलहम्दुलिल्लाह, हुज़ूर को बख़ैर व सलामती बादशाही-फ़तह मुबारिक हो अब हुज़ूर इतने बड़े हाथी पर क्यों सवार हैं जबकि कई गोलियां व तीर अमारी के सायबान से पार हो चुके हैं। अगर ख़ुदा-ना-ख़्वास्ता कोई गोली या तीर जिस्मे-मुबारिक से छू जाय तो हम ग़ुलामों का कहां ठिकाना रहेगा। ख़ुदा के वास्ते जल्द उतरिये और घोड़े पर सवार हो लीजिये। अब क्या रह गया है सिर्फ़ चन्द भगोड़ों को चुस्ती से बांध करके पकड़ना है।

अगर दारा यह समझ लेता कि इस बड़े हाथी ही की बदौलत उसे विजय प्राप्त हुई है, क्योंकि सैनिक उसे देखते रहे और हिम्मत बांधे रहे हैं तो वह विशाल साम्राज्य का स्वामी होता। पर घोड़े पर सवार होने पर उसे अपनी यह भूल मालूम हुई। वह बहुत बका झका और कहने लगा कि मैं उसे जीता न छोड़ूंगा। पर अब कुछ नहीं हो सकता था—सिपाही हाथी को ख़ाली देख कर समझ बैठे कि दारा मारा गया। और उन में खलबली मच गई। क्षण भर में माया उलट गई। दारा की फ़ौज में भगदड़ मच गई। सिर्फ़ पाव घण्टे हाथी पर चढ़ कर औरङ्गज़ेब ने सल्तनत पाई और क्षण भर को हाथी से उतर कर दारा ने पाई हुई विजय-लक्ष्मी को खो दिया।

ख़लीलुल्लाह वहां से हट कर औरङ्गज़ेब से जा मिला। जो ईश्वरीय दत्त विजय को देख कर आश्चर्य कर रहा था। उसने ख़लीलुल्लाह को बहुत से सब्ज़ बाग़ दिखाये और मुराद के पास ले जाकर उसे पेश किया और मुराद ही बादशाह है यह भी प्रकट कर दिया।

अब औरङ्गज़ेब ने सब अमीरों को मीठे २ पत्र लिख कर अपने आधीन किया। उसका मामा शाइस्तख़ां इस काम में उसका मददगार था। दारा ने एक बार इसका अपमान किया था उसका बदला उसने अब इस भांति लिया। औरङ्गज़ेब सब काम मुराद के नाम से करता और प्रकट करता कि वह बिल्कुल बेलौस है।

दारा आगरे लौट गया। मगर वह बादशाह को मुँह न दिखा सका और बादशाह ने ख़बर सुन कर दारा को बहुत आश्वासन दिला भेजा और अपना प्रेम प्रकट किया। और यह भी कहा कि निराश न हो। सुलेमान शिकोह की सेना संगठित और व्यूह बद्ध है तुम तत्काल दिल्ली चले जाओ। वहां के हाकिम को लिख दिया गया है। वह तुम्हें १ हज़ार हाथी घोड़े देगा, कुछ धन भी देगा। तुम आगरे से दूर न जाना बल्कि ऐसी जगह ठहरना जहां हमारे पत्र तुम्हें मिल सकें।

पर दारा इतना शोकाकुल था कि उसने कुछ उत्तर न दिया। उसने

अपनी बहिन के पास कुछ सूचनाएँ भेजीं और आधी रात के समय अपनी स्त्री और बच्चों के तथा छोटे पुत्र सिफ़रशिकोह के साथ ३—४ सौ आदमी लेकर देहली को चल दिया।

अब औरङ्गज़ेब ने सुलेमान शिकोह की सेना में फूट के बीज बोये। उसने एक पत्र राजा जयसिंह और दिलेरखां को लिखा उसका आशय यह था—

"दारा तो बिल्कुल तबाह होगया। वह बड़ा लशकर जिस का उसे भरोसा था शिकस्त खाकर हमारे क़ब्जे में आगया। अब वह ऐसी बे सरो-सामानी से भागा जारहा है कि सवारों का एक रिसाला भी साथ नहीं। हम उसे जल्द गिरफ़्तार कर लेंगे। हज़रत बादशाह इस क़दर अलील हैं कि अब सिर्फ चन्द रोज़ के मेहमान हैं। इसलिये इस हालत में अगर तुम हमारा मुक़ाबला करोगे तो नतीजा बजुज़ ख़राबी और हलाकत के कुछ न होगा। इस के सिवा इस अबतर हालत में दारा की तरफ़दारी करना महज़ नादानी है। तुम्हारे हक़ में यही बेहतर है कि हमारे पास हाज़िर हो आओ और सुलेमान शिकोह को गिरफ़्तार कर के अपने साथ लेते आओ।"

जयसिंह यह पत्र पाकर चिन्ता में पड़ गये। वे राज परिवार के व्यक्ति पर हाथ उठाना ठीक न समझते थे। उन्हों ने दिलेरखां से सलाह की और औरङ्गज़ेब के पत्र को लेकर सुलेमान के ख़ेमे में गये। और पत्र दिखा कर कहा—

'जिस ख़तरनाक हालत में आप पड़ गये हैं मैं उसे आप से छिपाना मुनासिब नहीं समझता। स्थिति बदल गई है। इस समय आपको न दिलेरख़ां पर भरोसा करना चाहिये न दाऊदख़ां पर और न फ़ौज ही पर। आप यदि इस वक्त अपने पिता की मदद को आगे बढ़ेंगे तो आप भी दुर्दशा में पड़ेंगे। अतः मुनासिब है कि श्रीनगर के पहाड़ों में चले जायें। वहां के राजा के यहां आपको आश्रय मिलेगा और वहां औरङ्गज़ेब भी न पहुँच सकेगा। वहां जाकर यहां के हालातों पर नज़र रक्खें और जब मौक़ा देखें चले आवें।'

यह सुनते ही शाहज़ादा समझ गया कि अब कोई मित्र नहीं रहगया लाचार वह फ़ौज को वहीं छोड़ कर कुछ हितैषियों को साथ लेकर चल दिया। सेना जयसिंह और दिलेरख़ां के साथ रही। उस का बहुत सा क़ीमती सामान और मुहरों से लदा एक हाथी भी इन्हों ने लेलिया। रास्ते में भी उसे देहात के लोगों ने बहुत कुछ दिया। ज्यों त्यों करके वह श्रीनगर पहुँचा। वहां के राजा ने उसका सत्कार किया और आश्रय दिया। और कहा—जबतक आप यहां हैं मैं प्राण प्रण से आपके लिये हाज़िर हूँ।

इधर सब झगड़ों से निपट कर औरङ्गज़ेब ने आगरे से तीन मील दूर एक बाग़ में मुक़ाम किया और बादशाह को एक पत्र लिख कर एक अत्यन्त धूर्त और चालाक आदमी के हाथ भेजा। पत्र का विषय यह था—

"दारा शिकोह की कजराई और बेजा ख़्यालात के बाइस से जो वाक़आत पेश आये हैं। उन के लिये औरङ्गजेब को बहुत ही रंज और अफ़सोस है हुजूर की तबियत अब अच्छी होती जाती है इसलिये हुजूर की ख़िदमत में मुबारिकबाद अर्ज़ करने और महज़ इस ग़रज़ से कि जो कुछ इर्शाद हो उसकी तामील की जाय, वह आगरे में आया है।"

शाहजहां भी भारी राजनीतिज्ञ था। उसने सिर्फ़ यह जवाब ज़बानी दिया "उसकी सआदतमन्दी और फ़रमाँबरदारी से हम निहायत ख़ुश हैं।" इसके बाद उसने पत्र में लिखा—

"दारा ने जो कुछ किया बेसमझी और नालायक़ी से पुर था। तुम पर तो हम इब्तदा ही से शफ़क़त रखते हैं, पस तुमको जल्द हमारे पास आना चाहिये ताकि तुम्हारे मश्विरे से उन उमूर का इन्तज़ाम किया जाय जो इस गड़बड़ की बाइस ख़राब और अबतर पड़े हैं।"

पर औरंगज़ेब एक ही कांइयाँ था, उसने क़िले में जाने का साहस न किया उसे भय था कि वह अवश्य क़ैद कर दिया जायगा। अतः वह बारं-बार आने के वादे करता रहा। उधर बड़े २ सरदारों से बातचीत करता रहा। एक दिन उसके बड़े पुत्र मुहम्मद सुलतान ने सहसा क़िले पर अधिकार कर लिया। इससे सब लोग हक्के बक्के होगये। यह काम बड़ी चालाकी से

किया गया। बादशाह इस प्रकार क़ैद हो कर मर्माहत हो गया और उसने मुहम्मद सुलतान को ख़त लिखा—

मैं तख़्त और कुरान मजीद की क़सम खा कर कहता हूँ कि अगर तुम इस वक्त ईमानदारी से बर्तोगे तो तुम्हीं को बादशाह बना दूँगा। इस मौक़े को ग़नीमत जानो और दादा जान को क़ैद से छुड़ा लो। याद रक्खो कि इस सवाबे आख़िरत के अलावा दुनियां में भी तुम्हें एक दायमी नेकनामी हासिल होगी।

यदि मुहम्मद सुलतान ज़रा साहस करके बादशाह की बात मान लेता तो सब कुछ हो जाता। क्योंकि अबभी बादशाह पर लोगों की श्रद्धा थी, दारा के पतन के बाद यदि बादशाह स्वयं युद्ध को कमर कसता तो न तो औरंगजेब ही उसके मुक़ाबिले का साहस करता और न सर्दार उसकी बात टालते। पर वह चतुराई के दाव पेच खेलना चाहता था और उसकी बड़ी बेटी का उसमें भारी हाथ था। अतः वह कुछ भी न कर सका। मुहम्मद सुलतान के भाग्य में भी ग्वालियर के क़िले में दिन काटने बदे थे।

अस्तु मुहम्मद सुलतान ने जवाब दिया, "मुझे हुजूर में हाजिर होने का हुक्म नहीं है। बल्कि ताकीदी हुक्म है कि यहां से जल्द क़िले के कुल दर्वाज़ों की कुंजियां ख़ुद अपनी सुपुर्दगी में लेकर जल्द वापस जाऊं। क्योंकि वे हुजूर की क़दम बोसी के निहायत मुश्ताक़ हो रहे हैं।"

बादशाह दो दिन तक आगा पीछा सोचता रहा। धीरे २ सब लोग उसे छोड़ २ कर चले जा रहे थे। जब उसके निज के संरक्षकों ने भी उसे छोड़ दिया तो उसने चाबियां देदीं और कहला भेजा—

"अब समझदारी इसी में है कि औरङ्गजेब हम से आकर मिले। क्योंकि सल्तनत के बाज़ बहुत ज़रूरी इसरार हम उसे समझाना चाहते हैं।"

पर वह धूर्त अब भी न आया। और तुरन्त एतबार ख़ां नामक एक विश्वासी व्यक्तिको क़िलेदार नियुक्त करके भेजदिया। जिसने वहां पहुँचकर सब बेगमों, बड़ी राजकुमारी बेगम साहिबा और स्वयं बादशाह को भी क़ैद कर लिया। और क़िले के कई दरवाज़े एक दम बन्द करा दिये। शाहजहां के

शुभचिन्तकों का आना-जाना और पत्र-व्यवहार क़तई बन्द होगया। और वह बिना क़िलेदार को सूचना भेजे कमरे से भी बाहर नहीं निकल सकता था।

अब औरंगज़ेब ने पर निकाले। उसने बादशाह को ख़त लिखा और सब को सुनाया। ख़त यह था—

"यह बेअदबी मुझसे इसलिये सरज़द हुई है कि हुजूर ज़ाहिरा मेरी निस्बत इज़हारे-उल्फ़त व मिहरबानी फ़रमाते थे, और यह इर्शाद होता था कि दारा के तौर व तरीक़ों से हम सख़्त नाराज़ हैं। मगर मुझे पुख़्ता ख़बर मिली है कि हुजूर ने अशर्फ़ियों से लदे हुए दो हाथी उसके पास भेजे हैं कि जिनसे वह नई फ़ौज भर्ती करके ख़ूँरेज़ लड़ाई को तवालत देगा। पस हुजूर ही ग़ौर फ़र्माएं कि मुझसे इन हरकतों के—जो फ़र्जन्दों के मामूली तरीक़े के ख़िलाफ़ और सख़्त मालूम होते हैं—सरज़द होजाने का बाइस क्या दारा शिकोह की ख़ुदसरी नहीं है? इन बातों का सबब कि हुजूर क़ैद किये गये और मैं फ़र्जन्दाना ख़िदमत बजा लाने के लिये हुजूर की ख़िदमत में हाज़िर नहीं होसका, क्या काफ़ी नहीं है? मैं हुजूर से इल्तजा करता हूँ कि मेरी इस हरकत की ज़ाहिरी सूरत पर ख़्याल न फ़र्माकर सिर्फ़ चन्द रोज़ बर्दाश्त करें। ज्योंही दारा हुजूर को और मुझे तकलीफ़ देने के क़ाबिल न रहेगा, मैं ख़ुद क़िले की तरफ़ दौड़ा आऊँगा, और हुजूर के क़ैदख़ाने का दर्वाज़ा अपने हाथों खोल, हाथ जोड़कर अर्ज़ करूँगा कि अब कुछ रोक-टोक नहीं है।"

इस प्रकार कठोरतापूर्वक जब बादशाह क़ैद होगया तो सब अमीर औरङ्गज़ेब को सलाम करने उसके दर्बार में जा हाज़िर हुए। किसी ने बेचारे वृद्ध बादशाह की नमकहलाली का ख़याल नहीं किया। इनमें बहुत ऐसे थे, जो बादशाह के धन से प्रतिष्ठित और धनी हुए थे। कुछ को बादशाह ने ग़ुलामी से मुक्त करके उच्च पद दिये थे।

इस प्रकार दोनों भाई पिता का बन्दोबस्त कर, और अपने मामा शाइस्तख़ाँ को आगरे की सूबेदारी सौंप, ख़ज़ाने से ख़र्च का इन्तज़ाम कर, दारा की खोज में आगरे से रवाना हुए।

इस यात्रा का असल उद्देश्य कुछ और ही था। वह था मुराद का भुगतान करना। मुराद के हितैषी यह भेद पागये थे, और उन्होंने मुराद से कहा भी कि अपने लश्कर-सहित आगरा-दिल्ली से दूर न जाइये। औरंगज़ेब दग़ा करेगा, जब वह ख़ुद कहता है कि बादशाह आप हैं, तो-फिर आपको क्यों राजधानी से दूर ले जाता है? उसी को दारा के पीछे जाने दें। पर वह क़ुरान की क़स्मों और प्रतिज्ञाओं के ऐसे फेर में पड़ा था कि उसकी बुद्धि में यह बात नहीं जमी।

दोनों ने कूच किया। जब मथुरा के पास पहुँचे तो औरंगज़ेब ने उसे अपने यहाँ भोजन का न्योता दिया। मित्रों ने समझाया कि बीमारी का बहाना करके टाल जाय, पर उसने न माना। रात्रि को भोजन का सरंजाम था। औरंगज़ेब ने मीरख़ाँ-आदि को ठीक-ठाक कर रक्खा था।

जब मुराद पहुँचा तो औरंगज़ेब ने बड़ी आव-भगत की। अपने हाथ से उसके मुँह की गर्द-पसीना पोंछा। जब तक भोजन होता रहा, हँसी-मज़ाक़ की बातें होती रहीं। इसके बाद जब शराब के दौर चले, तो औरंगज़ेब ने उठते हुए मुस्कराकर कहा—

"हज़रत को मालूम है कि मैं अपने मज़हबी ख़यालात के बाइस इस ऐशो-निशात की सुहबत में मौजूद नहीं रह सकता, ताहम ये लोग जो इस पुर-लुत्फ़ जल्से में शरीक हैं, मीर साहेब और दीगर मुसाहिब आपकी ख़िदमतगुज़ारी के लिये हाज़िर रहेंगे।"

निदान, मुराद को इतनी शराब पिलाई गई कि वह बेहोश होगया। तब उसके नौकर लोग भी बिदा कर दिये गये और कह दिया गया कि अब इन्हें यहाँ आराम करने दें। जब वे चले गये, तब उसके हथियार खोलकर क़ब्ज़े में कर लिये गये। इतने में औरंगज़ेब भी वहाँ आगया, और सारा अदब-क़ायदा ताक़ में रख, ४-७ ठोकरें लगाईं और कहा—"तुम्हें शर्म नहीं आती-बादशाह होकर इतनी शराब पीते हो? लोग मुझे भी क्या कहेंगे, जो तुम्हें बादशाह बनाने में मदद देता है।" इसके बाद उसने अपने आदमियों से कहा—

"इस बदबख़्त के हाथ-पाँव बाँधकर ख़िलवतख़ाने में ले जाओ, ताकि यह नशा उतरने तक वहीं बेशर्मी का सोना सोए।"

तुरन्त आदमी टूट पड़े। उस समय मुराद बहुत चीख़ा-चिल्लाया, मगर वह पुख़्ता हथकड़ी-बेड़ियों से जकड़ दिया गया, और बन्द कर दिया। चीख़ना-चिल्लाना सुन, उसके सेवक दौड़े, पर उनके एक नमकहराम सरदार मीर आतिशअली ख़ाँ ने उन्हें रोक दिया, जिसे लालच देकर औरंगज़ेब ने प्रथम ही वश में कर लिया था।

यह घटना तत्काल लश्कर में फैल गई। औरंगज़ेब ने सब बड़े २ सर्दारों को बड़े २ लालच देकर राज़ी कर लिया और मुराद को एक बन्द ज़नानी अम्बारी में दिल्ली भेजकर सलीमगढ़ में क़ैद कर दिया, जो उस समय जमना के बीचोंबीच टापू में था।

यह कर, वह दारा के पीछे दौड़ा, जो लाहौर को तेज़ी से जा रहा था और वहाँ क़िलेबन्दी कर, सैन्य-संग्रह किया चाहता था। पर औरंगजेब इतनी तेज़ी से पीछे दौड़ा कि दारा को वहाँ क़िलेबन्दी का अवकाश न मिला, और वह मुल्तान की ओर भाग गया। यद्यपि भयानक गर्मी पड़ रही थी, पर औरंगजेब की सेना रात-दिन कूच कर रही थी। वह स्वयं ५।६ कोस आगे चलता, सूखे टुकड़े खाता और ज़मीन पर लेटता था।

दारा ने यहाँ भी भूल की। यदि वह काबुल चला जाता, तो उसे बहुत-कुछ आशा थी। वहाँ प्राचीन सरदार महाबतख़ाँ था, जो औरंगज़ेब का दोस्त भी न था। उसके आधीन १० हज़ार ज़बरदस्त सेना थी। दारा के पास अब भी धन-रत्न की कमी न थी। वहाँ से ईरान और उज़बक देश भी निकट थे, जहाँ से उसे बहुत सहायता मिल सकती थी। उसे इस ऐतिहासिक बात का खयाल करना उचित था कि जब शेरशाह ने हुमायूँ को हराया था, तब ईरान के शाह ने ही उसकी सहायता की थी, जिससे उसे राज्य-प्राप्ति हुई थी।

पर भाग्यवश उसने वहाँ न जाकर ठट्ठ के क़िले में आश्रय लिया। औरंगज़ेब ने जब देखा कि वह काबुल नहीं जा रहा है, तब उसका खटका

मिट गया, और वह मीर बाबा नामक धाय के बेटे के सुपुर्द ८ हज़ार सेना छोड़कर शीघ्रता से आगरे लौटा। उसे भय था कि जयसिंह या जसवन्तसिंह या सुलेमान शिकोह ही स्वयं आकर बादशाह को छुड़ा ले, या शुजा ही न चढ़ाई कर बैठे।

अस्तु, ठट्ट के दुर्ग में जा, दारा ने एक ख्वाजासरा को वहाँ का क़िलेदार नियत किया, और अपना सब खज़ाना वहाँ रखा, जो बहुत था। फिर वह तीन हज़ार सेना को साथ लेकर सिन्ध नदी के किनारे २ कच्छ होता हुआ गुजरात पहुँचा, और अहमदाबाद के बाहर डेरा डाल दिया। यहाँ शाह नेवाजख़ाँ, जो औरङ्गजेब का श्वसुर था, क़िलेदार था—वह कोई योद्धा न था। उसने क़िले के द्वार खोल दिये और और सम्मान से दारा का सत्कार किया। दारा ने उसकी सरलता पर मुग्ध हो, अपने सब गुप्त भेद उस पर प्रकट कर दिये।

औरङ्गजेब ने यह सुना, तो उसे चिन्ता हुई; क्योंकि अभी उसके बहुत शत्रु थे, और अहमदाबाद जैसी मज़बूत जगह में उसके पाँव जमने उसे स्वीकार न थे। उसे भय था कि जयसिंह और जसवन्तसिंह भी उससे मिल जावेंगे। उधर उसने यह भी सुना कि भारी सेना लिये सुलतान शुजा दौड़ा चला आरहा है, और इलाहाबाद तक आचुका है। उसे यह भी ख़बर मिली कि श्रीनगर के राजा की मदद से सुलेमान शिकोह भी तैयारी कर रहा है। सब विपत्तियों पर विचार कर, दारा का ध्यान छोड़, वह शुजा पर लपका, जो इलाहाबाद में गंगा के इस पार तक आगया था। खजुआ नामक गाँव में दोनों सेनाएँ मिलीं। यहाँ मीर जुमला भी उससे बहुत-सी सेना-सहित आ मिला। युद्ध हुआ। इस युद्ध में जसवन्तसिंह जी ने जो औरंगज़ेब से आ मिले थे, सहसा पीछे से आक्रमण कर, उसका सारा ख़ज़ाना और माल लूट लिया। इससे औरङ्गज़ेब की कठिनाई बढ़ गई। सेना विचलित होगई, पर वह विचलित नहीं हुआ। पर शुजा ने उधर से भारी आक्रमण किया। एक तीर महावत की आँख में आ लगने से औरंगजेब का हाथी बेक़ाबू होगया। वह हाथी से उतरने ही को

था कि मीर जुमला ने कहा—"हज़रत, यह दफ़न नहीं है, क्या गज़ब करते हैं।" मीर जुमला के रण-कौशल का क्या ठिकाना था ! सम्भ्या हो चली थी, लक्षण बुरे थे, पर मीर जुमला ने औरंगज़ेब को हाथी से न उतरने दिया।

औरंगज़ेब प्रतिक्षण शत्रु के चंगुल में फँसने की सोच रहा था। उधर शुजा शीघ्र उसे गिरफ़्तार करने को हाथी से उतरा। बस, उसकी वही दशा हुई, जो दारा की हुई थी। उसके हाथी को ख़ाली देख, सैनिकों ने उसके मरने का सन्देह किया और वे भाग निकले।

औरंगज़ेब की विजय देख, जसवन्तसिंह आगरे लौट आए। वहाँ यह ख़बर उड़ी कि औरंगज़ेब और मीर जुमला पकड़े गये, तथा शुजा आगरे की ओर बढ़ रहा है। शाइस्ता ख़ाँ इन बातों से इतना घबराया कि विष पीने लगा। पर स्त्रियों ने प्याला उसके हाथ से छीन लिया। इस बीच में जसवन्तसिंह चेष्टा करते तो शाहजहाँ को क़ैद से छुड़ा सकते थे, पर वे स्थिति समझ और आगरे में ठहरना ठीक न समझ, मारवाड़ को लौट आए।

उधर औरंगज़ेब सोच रहा था कि न जाने आगरे में जसवन्तसिंह ने क्या किया होगा। वह तेज़ी से लौट रहा था। पर उसने सुना—शुजा अब भी इलाहाबाद में पाँव जमा रहा है, उसके पास बहुत धन है, और वहाँ के राजा उसके सहायक हैं।

अब औरंगज़ेब को सिर्फ़ दो आदमियों पर भरोसा था। एक अपने पुत्र मुहम्मद सुलतान, दूसरा मीर जुमला पर। पर वह दोनों ही से भय खाता और सन्देह करता था। उसने दोनों को दूर करने का उपाय कर लिया। मीर जुमला को बड़ी सेना देकर शुजा पर भेजा और कहा—"बंगाल के ज़रख़ेज़ सूबे की हुकूमत आप और आपके ख़ानदान में रहेगी, और जब आप शुजा पर फ़तह पा लेंगे, तब अमीरुल-उमरा का सब से बड़ा ख़िताब भी आपको दिया जायगा।"

इसके बाद उसने मुहम्मद सुलतान से कहा—"बेटे, तुम मेरे सब से बड़े पुत्र हो, और अपने ही काम पर जाते हो। तुमने बड़े २ काम किये हैं,

पर याद रक्खो, हमारे भारी वैरी शुजा को पकड़कर जब तक न ले आओ, सब काम अधूरे हैं ।"

इसके बाद उसने दोनों को बहुत-सी भेंट दीं । फिर उसने चालाकी से मुहम्मद सुलतान की बेगमों और मीर जुमला के पुत्र मुहम्मद अमीन को रोक लिया ।

हम कह चुके हैं कि मीर जुमला एक ही अद्भुत प्रतिभा का आदमी था । शुजा उसे रोकने की बड़ी २ मोरचेबन्दी कर रहा था । वह गंगा के घाटों को सावधानी से रोके हुए बैठा था । सहसा उसे समाचार मिला कि जो सेना आरही है, वह तो दिखावा है–मीर जुमला तो आस-पास के राजाओं से सन्धि कर, राजमहल पहुँच गया, और अब बंगाल की ओर इसके लौटने का मार्ग बन्द है । यह सुनकर वह हत-बुद्धि-सा रह गया । वह बड़ी कठिनाइयों से मुंगेर और राजमहल के बीच पेचीले चक्कर की गंगा को उतर राजमहल पहुँचा और मीर जुमला से लोहा लिया, तथा ५ दिन के युद्ध के बाद भाग खड़ा हुआ । वर्षा आ लगी थी । मीर जुमला वर्षा-ऋतु राजमहल में काटने को ठहर गया । मुहम्मद सुलतान भी उसके साथ था । शीघ्र ही दोनों में झगड़ा होगया । मुहम्मद सुलतान अपने को समस्त सेना का स्वामी और मीर जुमला को तुच्छ समझने लगा । यह ख़बर जब औरंगज़ेब को लगी तो बहुत नाराज़ हुआ । इस पर वह भय-भीत होकर चुपचाप यहाँ से चलकर शुजा से जा मिला । पर उसने उस पर विश्वास ही न किया । तब वह बिगड़कर वहाँ से भी चला और इधर-उधर घूमकर मीर जुमला से आ मिला । मीर जुमला ने उसे क्षमा करके रख लिया । पर बादशाह ने उसे दिल्ली आने का हुक्म दिया, और ज्यों ही वह गंगा के पार उतरा कि एक सैनिक-टुकड़ी ने उसे गिरफ्तार कर लिया और एक बन्द अमारी में रखकर ग्वालियर दुर्ग में क़ैद कर दिया, जहाँ उसकी समस्त आयु व्यतीत हुई ।

उधर जसवन्तसिंह ने लूट के धन से एक भारी सेना संग्रह कर, दारा को लिखा कि आप आगरे को कूंच करदें, मैं राह में आपसे आ मिलूंगा ।

दारा ने भी भारी सेना संग्रह करली थी, और कूच कर दिया। पर राजा जयसिंह ने समझा-बुझाकर जसवन्तसिंह को इस झमेले में पड़ने से रोक दिया। उधर औरंगजेब ने दारा को अजमेर ही में जा रोका। फिर युद्ध हुआ। परन्तु फिर विश्वासघातियों और मूर्खताओं के कारण अन्त में उसे सब सामग्री छोड़, बाल-बच्चों, सहित भागना पड़ा। इस युद्ध में दारा के साथ यहाँ तक दग़ा की गई कि तोपों में गोलों के स्थान पर बारूद की थैलियाँ भर-कर छोड़ी गईं।

वह फिर अहमदाबाद को लौटा। अब खेमे तक उसके पास न थे। मार्ग के सब राजा उसके विपक्षी थे। भयानक गर्मी थी। भील लोग रात-दिन उसके पीछे लगे रहते और मौक़ा पाकर लूट लेते थे। किसी तरह वह अहमदाबाद के निकट पहुँचा तो उसी के नियुक्त किये क़िलेदार ने उसे लिख भेजा—'क़िले के निकट न आइये, फाटक बन्द हैं और सेना शस्त्र-सहित मुस्तैद खड़ी है।'

दारा की दुरवस्था का वर्णन प्रसिद्ध फ्रेंच डॉक्टर बरनियर इस भाँति करता है—

"इस समय मैं तीन दिन से दारा शिकोह के साथ था। मैं उसे अचानक मार्ग में मिल गया था। उसके साथ कोई वैद्य नहीं था, इसलिये उसने मुझे ज़बर्दस्ती अपने साथ लेलिया था। अहमदाबाद के गवर्नर का पत्र पहुँचने से एक दिन पहले की बात है कि दारा ने मुझसे कहा कि "कदाचित आपको कोली मार डालें।" यह कहकर वह आग्रहपूर्वक मुझे अपने साथ उस कारवाँ में लेगया, जहाँ वह स्वयं ठहरा था। अब उसकी यह दशा थी कि एक खेमा तक उसके पास नहीं था। उसकी बेगम और स्त्रियाँ केवल एक क़नात की आड़ में थीं। क़नात की रस्सियाँ मेरी सवारी की बहली की पहियों से, जिसमें मैं सोया करता था, बाँधी गई थीं। जो लोग इस बात को जानते हैं कि भारतवर्ष के अमीर लोग अपनी स्त्रियों के पर्दे के विषय में कितनी अत्युक्ति करते हैं, वे मेरे इस कथन पर विश्वास न करेंगे। परन्तु मैंने इस घटना का हाल उस दुःखद अवस्था के प्रमाण में

लिखा है, जिसमें दारा उस समय पड़ा हुआ था। अस्तु, उसी रात की पौ फटने के समय जब अहमदाबाद के हाकिम का उक्त सन्देश आया, तब औरतों के रोने-चिल्लाने ने हम सब को रुला दिया। उस समय एक विलक्षण प्रकार की हैरानी और निराशा छा रही थी। सभी डर के मारे चुपचाप एक-दूसरे के मुँह देखते थे; कोई उपाय नहीं सूझता था; कुछ नहीं मालूम था कि क्षण-भर में क्या हो जायगा। जब दारा शिकोह स्त्रियों से मिलकर क़नात के बाहर आया, तब मैंने देखा कि उसके मुख पर मुर्दनी सी छा रही है। वह कभी इससे कुछ कहता है, कभी इससे कुछ बात करता है। एक साधारण सिपाही से भी पूछता है कि अब क्या करना चाहिए। जब उसने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति डरा और घबराया हुआ मालूम होता है, तब उसे विश्वास होगया कि सम्भवतः अब इनमें से एक भी मेरा साथ न देगा। वह बड़ा ही हैरान था कि अब क्या होगा, किधर जाना चाहिए, यहाँ ठहरने से तो ख़राबी ही ख़राबी दीखती है।

'इस तीन दिन की अवधि में जब कि मैं दारा के साथ था, हम लोगों को रात-दिन बिना कहीं ठहरे हुए जाना पड़ा। गर्मी ऐसी प्रचण्ड थी, और धूल इतनी उड़ती थी कि दम घुटा जाता था। मेरी बहली के तीन बहुत सुन्दर और बड़े गुजराती बैलों में से एक मर चुका था, दूसरा मरने की दशा को पहुँच चुका था, और तीसरा इतना थक चुका था कि चल नहीं सकता था। यद्यपि दारा बहुत चाहता था कि मैं उसके साथ रहूँ, विशेषकर इस कारण से कि उसकी एक बेगम के पैर में बहुत बुरा घाव था, पर वह इस दुर्दशा को पहुँच गया था कि धमकाने और अनुनय-विनय करने पर भी किसी ने उसको मेरी सवारी के लिये कोई घोड़ा या बैल या ऊँट नहीं दिया। जब कोई सवारी नहीं मिली, तब लाचार होकर मैं पीछे रह गया। दारा को चार-पाँच-सौ सवारों के साथ जाते देखकर (क्योंकि घटते २ अब उसके साथ इतने ही सवार रह गये थे) मैं एकदम रो पड़ा। परन्तु अब तक भी दो हाथी उसके साथ थे, जिन पर लोग कहते थे कि रुपये और अशर्फ़ियाँ लदी हुई हैं। उस समय मैं समझा था कि दारा ठट्ट की ओर जायगा।

वर्त्तमान अवस्थाओं को देखते हुए यह उपाय कदाचित् बुरा नहीं था, पर वास्तविक बात तो ऐसी है कि इधर भी विपत्ति का सामना था और उधर भी। मुझे कदापि ऐसी आशा नहीं थी कि वह उस मरुस्थान से, जो अहमदाबाद और ठट्ट के बीच में है, कुशलपूर्वक बचकर निकल जायगा। हुआ भी ऐसा ही। उसके साथियों में से बहुत सी स्त्रियाँ मर गईं, और पुरुषों पर तो ऐसी आपत्ति आई कि कुछ तो भूख-प्यास और थकावट से मर गये, और अधिकांश को निर्दय कोलियों ने मार डाला। यदि ऐसी आपदाओं से भरी यात्रा में स्वयं दारा शिकोह मर जाता तो मैं उसे बड़ा ही भाग्यवान् समझता। पर सब प्रकार के कष्ट और विपत्ति सहता हुआ अन्त में वह कच्छ प्रान्त में पहुँच गया।

'यहाँ के राजा ने, जैसा कि चाहिये, बड़ी उत्तम रीति से उसका स्वागत किया और अपने यहाँ उसे स्थान दिया। पश्चात् उसने दारा से कहा कि यदि आप अपनी कन्या का विवाह मेरे पुत्र से करदें तो मैं अपनी सब सेना आपकी सहायता के लिये उपस्थित करदूँ। परन्तु पीछे जिस प्रकार यशवन्तसिंह पर जयसिंह का जादू चल गया था, उसी प्रकार यहाँ भी हुआ। शीघ्र ही उसके भाव बदले हुए दिखाई दिये। जब कई बातों से दारा शिकोह ने देख लिया कि यह दुष्ट तो मेरे प्राण ही लेना चाहता है, तब वह तुरन्त वहाँ से ठट्ट की ओर चल दिया।

'जिस समय दारा ठट्ट की आपदा-पूर्ण यात्रा में लगा हुआ था, उस समय बंगाल में लड़ाई पहले की तरह हो रही थी। दारा शिकोह ठट्ट के निकट पहुँच चुका था, और केवल दो या तीन दिन का मार्ग बाक़ी था। मुझको उन फ़रासीसियों और कई दूसरे यूरोपियनों, से जो उस दुर्ग की सेना में थे, मालूम हुआ कि यहाँ पहुँचकर दारा को यह समाचार मिला कि मीर बाबा ने, जो बहुत दिनों से दुर्ग को घेरे हुए था, भीतरवालों को यहाँ तक तंग कर दिया है कि आध सेर मांस या चावल २॥) रुपये को बिकती है और दूसरी वस्तुएँ भी बहुत महँगी हैं, तौभी बहादुर क़िलेदार अब तक उसी प्रकार साहस किये हुए है, और वह प्रायः दुर्ग के बाहर

निकलकर शत्रुओं पर आक्रमण करता है, और हर प्रकार की सचाई, वीरता और स्वामि-भक्ति से मीर बाबा के आक्रमणों को रोकता है। उसके इस प्रशंसनीय कार्य के विषय में वे योरोपियन भी, जो उसकी सेवा में थे, कहते थे कि सब सच है। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि जब उसको दारा के निकट आने का सम्वाद मिला, तब उसने और भी उत्साह दिखलाया और इस प्रकार सिपाहियों को अपने वश में कर लिया कि दुर्गवाले मीर बाबा का घिराव तोड़कर दारा को दुर्ग में लाने के लिये वे अपने प्राण दे देने को तैयार हो गए।

'इसके अतिरिक्त उस साहसी सर्दार ने और भी कई अच्छे उपायों से युक्ति-निपुण जासूसों को मीर बाबा की सेना में भेजकर घेरा करनेवालों के मन में इस बात का विश्वास उत्पन्न कर दिया कि दारा एक बहुत बड़ी सेना के साथ घेरा तोड़ देने के लिये यहाँ आ रहा है, और अब शीघ्र पहुँचना चाहता है। उसने यहाँ तक कह डाला कि हम दारा और उसकी सेना को अपनी आँखों से देख आये हैं। यह युक्ति इतनी सफल हुई कि घेरेवालों के छक्के छूट गये। इसमें सन्देह नहीं कि यदि दारा उस समय जा पहुँचता तो मीर बाबा के लोग अवश्य तितर-बितर हो जाते! यह समझकर कि थोड़े से आदमियों के साथ घेरे का तोड़ना असम्भव है, पहले तो उसका यह विचार हुआ कि सिन्धु नदी पार करके ईरान को चला जाय, परन्तु उसकी बेगम ने एक निर्बल और वाहियात सी बात कहकर उसका यह विचार भंग कर दिया। उसने कहा—"यदि आप ईरान जाने का विचार करेंगे तो खूब समझ लीजिये कि मुझको और मेरी बेटी दोनों को शाह ईरान की लौंडियाँ बनना पड़ेगा, जो ऐसी बेइज्जती है कि हमारे खानदान में किसी को गवारा न होगी।" इस बात को दारा शिकोह और बेगम दोनों भूल गये कि हमायूँ जब ऐसी ही आपदाओं में पड़कर ईरान गया था, और उसकी बेगम भी उसके साथ थी, तब उन दोनों के साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं हुआ था, बल्कि बहुत ही सम्मान और शिष्टाचार से वहाँ उनका स्वागत हुआ था। अस्तु इसी प्रकार विचार करते २ दारा ने सोचा

कि जीवनखाँ पठान के यहाँ जाना उचित होगा। वह एक प्रसिद्ध और बलवान सरदार है, और उसका स्थान भी कुछ बहुत दूर नहीं है। दारा के मन में जीवनखाँ की सहायता का ध्यान आने का कारण यह था कि उसके विद्रोह मचाने और दुष्टता करने के कारण शाहजहाँ ने दो बार उसे हाथी के पाँवों के नीचे कुचलवा डालने की आज्ञा दी थी। पर दोनों ही बार दारा के कहने-सुनने से वह छूट गया था। दारा का इस समय उसके पास जाने का मतलब यह था कि उससे कुछ सैनिक सहायता लेकर वह मीर बाबा को ठट्ट के दुर्ग से हटा सके, और वह ख़ज़ाने जो वहाँ के क़िलेदार के पास हैं, लेकर क़न्धार चला जाय और वहाँ से सहज ही में काबुल पहुँच जाय। उसे विश्वास था कि उसके वहाँ पहुँच जाने पर काबुल का सूबेदार महावतखाँ, जो एक बड़ा भारी अमीर था, और जिसे काबुल-वाले बहुत मानते थे, बिना कुछ आगा-पीछा किये बड़े प्रेम से उसकी सहायता करने को तैयार होगा; क्योंकि काबुल की सूबेदारी उसे इसी की मदद से मिली थी। दारा का यह विचार किसी प्रकार भी बुरा नहीं था, परन्तु उसकी स्त्रियाँ उसका यह विचार सुनकर बहुत ही घबराईं। उन्होंने कहा कि जीवनखाँ के यहाँ जाना उचित नहीं है। बेगम और उसकी पुत्री सिफ़र शिकोह उसके पैरों पड़ गईं और प्रार्थना करने लगीं कि आप उधर का विचार छोड़ दें। यह पठान एक प्रसिद्ध डाकू और लुटेरा है,ऐसे आदमी पर भरोसा करना अपनी मृत्यु को आप बुलाना है। उन्होंने यह भी समझाया कि ठट्ट का घिराव उठा देने को कुछ ऐसी आवश्यकता भी नहीं है। इस लड़ाई-झगड़े में हाथ डाले बिना भी आप काबुल का मार्ग अवलम्बन कर सकते हैं। मीर बाबा भी ठट्ट का घेरा छोड़कर आपका रास्ता नहीं रोकेगा। परन्तु दारा की उल्टी समझ सदा उसको सीधे मार्ग से भड़का देती थी। उसे उनकी बात बिलकुल नहीं जँची। उसने कहा कि काबुल की यात्रा बहुत ही कठिन और भयानक है, और जिस व्यक्ति के मैंने प्राण बचाए हैं, वह इस समय मेरी सहायता अवश्य करेगा। आख़िर बहुत समझाने और प्रार्थना किये जाने पर भी वह काबुल न जाकर जीवनखाँ पठान के यहाँ

चला गया। जीवनखाँ यह समझता रहा कि दारा के साथ बहुत बड़ी सेना आती होगी। यही समझकर उसने उसके साथ बड़े सम्मान का बर्ताव किया, उसके साथी सिपाहियों को सादर स्थान दिया, और उनके आराम के प्रबन्ध कर देने की अपने आदमियों को आज्ञा दी, परन्तु जब उसे मालूम होगया कि दारा के साथ दो-तीन-सौ आदमियों से अधिक नहीं हैं, तब तुरन्त ही उसके भाव बदल गये। यह पता नहीं लगता कि औरङ्गज़ेब के कहने से अथवा स्वयं अपनी इच्छा से उसने ऐसा विश्वासघात किया; पर ज्ञात पड़ता है कि अशर्फ़ियों से लदे हुए उन कई ख़च्चरों को देखकर उसे लालच आगया। उसने एक रात को बहुत-से लड़ने-भिड़नेवाले आदमी इकट्ठा करके पहले तो दारा के सब रुपये-पैसे और स्त्रियों के आभूषण छीनकर अपने अधिकार में कर लिये, पीछे दारा शिकोह और सिफ़र शिकोह पर आक्रमण किया, और जिन लोगों ने उनको बचाना चाहा, उन्हें मार डाला। इसके बाद दारा को बाँधकर उसने एक हाथी पर बैठाया, और एक वधिक को इसलिये पीछे बैठा दिया कि यदि वह अथवा उसका कोई और आदमी कुछ भी हाथ-पाँव हिलावे, तो वधिक उसी क्षण उसकी समाप्ति कर दे। इस प्रकार अप्रतिष्ठा के साथ उसने दारा को लाकर ठट्ट में मीर बाबा के सुपुर्द कर दिया। मीर बाबा ने आज्ञा दी कि इसे लाहौर होते हुए देहली ले जाओ।

'जब भाग्यहीन दारा देहली के निकट पहुँचा, तब औरङ्गज़ेब ने अपने दर्बारियों से इस बात की राय ली कि ग्वालियर के दुर्ग में क़ैद करने से पहले उसे देहली में घुमाना चाहिए या नहीं? इस पर कुछ लोगों ने तो यह उत्तर दिया कि ऐसा करना उचित नहीं; क्योंकि प्रथम तो यह बात राज-कुटुम्ब की प्रतिष्ठा के विपरीत है, दूसरे इसमें बलवा होजाने का डर है; और कुछ आश्चर्य नहीं कि लोग उसे छुड़ा लें। पर प्रायः लोगों की यह राय हुई कि उसे अवश्य एक बार नगर में घुमाया जाय,—ताकि लोगों को भय हो, उन पर बादशाह का रौब छा जाय, तथा जिन लोगों को अभी तक उसके पकड़े जाने में सन्देह बना हुआ है, उनका सन्देह मिट जाय और

उसके छिपे पक्षपातियों की आशाएँ भंग हो जायँ। अन्त में औरङ्गज़ेब ने भी इसी राय को उचित समझा और दारा को नगर में घुमाने की आज्ञा दी। अभागा दारा और उसका पुत्र सिफ़रशिकोह दोनों एक ही हाथी पर बैठाये गये और वधिक की जगह बहादुरखाँ को बैठाकर नगर-पर्यटन कराया गया। परन्तु वह सिंहलद्वीप का पेरू का हाथी नहीं था, जिस पर दारा बहुत बढ़िया सामग्रियों से सजकर बैठा करता था, और बहुमूल्य झूल तथा सैनिक आभूषणों से ढका रहता था; यह एक बहुत सड़ियल और गन्दा जानवर था। स्वयं उसके गले में भी वह बड़े २ मोतियों की माला, शरीर पर वह ज़रबफ़्त का क़बा और सिर पर वह पगड़ी नहीं थी, जो भारतवर्ष के बादशाह और उनके कुमार पहना करते हैं। इन वस्तुओं के स्थान में पिता-पुत्र दोनों बहुत ही मोटे वस्त्र पहने थे। इसी दशा में दोनों शहर-भर के बाज़ारों में फिराए गये। उनकी दशा देखकर मुझे भय होता था कि कहीं खून-ख़राबी न हो जाय। आश्चर्य है कि एक ऐसे राजकुमार के साथ, जो लोगों को प्रिय था, ऐसा बर्ताव करने का दरबारियों को कैसे साहस हुआ? यह और भी आश्चर्य की बात है कि बचाव के लिये कुछ सेना भी साथ में नहीं भेजी गई थी; विशेषकर ऐसी अवस्था में जबकि औरङ्गज़ेब के अनुचित काम देखकर सब लोग कुछ दिनों से उससे रुष्ट हो रहे थे।

'इस अविचार का तमाशा देखने को बड़ी भीड़ जमा थी। स्थान २ पर खड़े होकर लोग दारा के दुर्भाग्य पर हाथ मल रहे थे। मैं भी नगर के सब से बड़े बाज़ार में एक अच्छे स्थान पर अपने दो मित्रों तथा सेवकों के साथ बढ़िया घोड़े पर चढ़ा खड़ा था। सब ओर से रोने-चिल्लाने के शब्द सुन पड़ते थे। स्त्री, पुरुष और बच्चे इस प्रकार चिल्लाते थे, मानों उन पर बहुत ही भयानक विपत्ति पड़ी हो। दुष्ट जीवनखाँ घोड़े पर दारा के साथ था। चारों ओर से उस पर गालियों की बौछार पड़ रही थी; बल्कि कई एक फ़क़ीरों और ग़रीब आदमियों ने तो उस पाजी पठान पर पत्थर भी फेंके। परन्तु राजकुमार के छुड़ाने का साहस किसी को न हुआ।

''जब सवारी देहली नगर में सर्वत्र घूम चुकी, तब अभागा क़ैदी

अपने ही एक बाग़ में, जिसका नाम हैदराबाद था, क़ैद कर दिया गया। परन्तु उसके नगर में घुमाए जाने का सर्व-साधारण पर कैसा बुरा असर पड़ा, लोग जीवनखाँ पर कैसे क्रुद्ध हुए, किस प्रकार पत्थर मार-मारकर कुछ लोगों ने उसे मार डालना चाहा, और किस रीति से विद्रोह मच जाने के लक्षण दिखाई दिए, यह सब औरङ्गजेब ने शीघ्र सुन लिया। एक सभा की गयी—और राय ली गयी कि पहले सोचे हुए उपाय के अनुसार, क़ैदी को ग्वालियर भेज देना चाहिए या वध कर डालना चाहिये। इस पर किसी २ की तो यह सम्मति हुई कि वध कर डालने की इस समय कुछ विशेष आवश्यकता नहीं है। यदि पहरे और रक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध हो सके तो उसे ग्वालियर भेज दिया जाय। दानिशमन्द खाँ ने भी यही सलाह दी कि वह ग्वालियर भेजा जाय। परन्तु अन्त में अधिक लोगों की राय से यही निश्चित हुआ कि उसका वध किया जाय और उसके पुत्र सिफ़र-शिकोह को ग्वालियर भेज दिया जाय। इस अवसर पर रोशनआरा बेगम ने भी अपना हार्दिक वैर अच्छी तरह प्रकट किया। वह बराबर दानिश-मन्द खाँ की राय को रोकती, और औरङ्गजेब को यह अमानुषिक कार्य करने के लिए उभारती रही। ख़लीलुल्लाखाँ और शाइस्ताखाँ भी, जो दारा के पुराने शत्रु थे, इसी बात पर विशेष ज़ोर देते थे और तकरुँबखाँ नामक ईरानी ने भी, जिसका नाम पहले हकीम दाऊद था, जो किसी कारण-विशेष से भारतवर्ष में भागकर चला आया था, जो बड़ा खुशामदी था, और अभी थोड़े दिनो में साधारण अवस्था से उच्च अवस्था को प्राप्त हुआ था, इन दोनों का विकट पक्षपात किया। उसने इन सब से बढ़कर कड़ी बातें कहीं और कठोर शब्दों में कड़ककर कहा कि—"दारा शिकोह को ज़िन्दा छोड़ना हर्गिज़ मुनासिब नहीं है। सल्तनत की सलामती और हिफ़ाज़त इसी में है कि फ़ौरन् उसकी गर्दन मारी जावे। मुझे तो उसके क़त्ल की सलाह देने में ज़रा भी ताम्मुल नहीं होता, क्योंकि वह बेदीन और काफ़िर है। और अगर ऐसे शख़्स के क़त्ल से कुछ गुनाह आयद होता हो तो वह मेरी गर्दन पर हो।" ईश्वरेच्छा देखिये कि जैसा उसके

मुँह से निकला था हुआ भी वैसा ही, अर्थात् इस अविचार के रक्तपात का फल उसी को मिला ; बहुत शीघ्र बहुत दुर्दशा के साथ मारा गया।

'निदान, इस अन्याय और निर्दयतापूर्ण रक्तपात के लिये नज़ीर नामक एक गुलाम, जो शाहजहाँ के यहाँ पला था और किसी कारण से दारा से असन्तुष्ट था, चुना गया। एक दिन विष खिलाये जाने के भय से दारा और सिफ़रशिकोह बैठे अपने हाथ से दाल बना रहे थे, कि सहसा नज़ीरखाँ चार दूसरे दुष्टों को लिये हुए उन दोनों के निकट आ पहुँचा। उसे देखते ही दारा ने सिफ़र शिकोह से कहा कि 'लो बेटा, हमारे क़ातिल आगये।' यह कहकर उसने रसोईघर की एक छोटी छुरी उठा ली, क्योंकि वहाँ और कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं था; परन्तु उन वधिकों में से एक ने तो सिफ़र-शिकोह को पकड़ लिया और शेष सब उस पर टूट पड़े। उन्होंने उसको भूमि पर पटक दिया, और नज़ीर उसका सिर काटकर तुरन्त औरङ्गज़ेब के पास ले गया।

'औरंगज़ेब ने वह कटा हुआ सिर एक बर्तन में रखकर उसके मुख पर का रक्त धुलवाया। जब उसे निश्चय हो गया कि यह दारा ही का सिर है तब उसके आँसू निकल पड़े और एक बार "ऐ बदबख़्त!" कहकर वह बोला—"अच्छा, इस दर्दअंगेज़ सूरत को मेरे सामने से ले जाकर हमायूँ के मक़बरे में दफ़न कर दो।" अब दारा के कुटुम्ब का हाल सुनिये। उसकी पुत्री तो उसी रात महल में भेज दी गयी, जो कुछ दिन बाद शाहजहाँ और बेगम साहब (जहाँनारा बेगम) की प्रार्थना से उनके सुपुर्द की गई और उसकी बेगम ने पहले ही यह सोचकर कि हमको दुःखों का पहाड़ उठाना पड़ेगा, मार्ग ही में लाहौर में विष खाकर अपने प्राणों का अन्त कर दिया। रहा सिफ़रशिकोह—वह ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया, जहाँ क़ैद किया गया।(दारा शिकोह का सिर २२ वीं अक्तूबर १६५६ को काटा गया था।)

'इस लोमहर्षक घटना के बाद जीवनखाँ तुरन्त दरबार में बुलाया गया, और कुछ इनाम-आदि देकर बिदा कर दिया गया। परन्तु यह दुष्ट भी अपनी क्रूरता का फल पाये बिना न रहा। अर्थात् जिस समय वह देहली

से लौटकर ऐसे स्थान में पहुँच गया था—जहाँ से उसका देश उससे दस-बारह कोस ही रह गया था, कि कुछ मनुष्यों ने, जो पहले से घात लगाये जंगल में बैठे थे—उसे घेर कर मार डाला।

'दारा का पुत्र सुलेमान शिकोह श्रीनगर के राजा के यहाँ छिप गया था। राजा को जब बहुत-सा धमकाया गया, तो वह भी भयभीत होगया। परन्तु वह बलपूर्वक पकड़कर दिल्ली लाया गया। जब बादशाह के सामने सुनहरी हथकड़ी पहनाकर लाया गया तो उसके सुन्दर शरीर को घायल और बेबस देखकर दरबारी रोने लगे। औरङ्गज़ेब ने दुःख और सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—

"खुदा पर नज़र और इत्मीनान रखो कि तुम्हें कुछ ज़रर न पहुँचाया जायगा। बल्कि तुम्हारे साथ मेहरबानी की जायगी। तुम्हारा बाप तो सिर्फ़ इसलिये क़त्ल किया गया था कि वह काफ़िर था।" इस पर सुलेमान ने हाथ ऊँचा कर, और झुककर बादशाह को सलाम किया, और कहा—"अगर हुजूर की मन्शा है कि मुझे पोस्त पिलाया जाया करे, तो बेहतर है कि मैं अभी क़त्ल कर दिया जाऊँ।" इस पर बादशाह ने पोस्त न पिलाने की प्रतिज्ञा की और फिर उसे ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर दिया गया।'

मुराद अभी क़ैद में था, पर उसके प्रशंसक अभी बहुत थे। बादशाह उस काँटे को भी एक-दम काट डालना चाहता था। एक दिन एक सैयद के पुत्रों ने आकर नालिश की कि मुराद ने उनके पिता को क़त्ल करा डाला है, सो उसका सिर मिलना चाहिए। इसका किसी ने विरोध न किया, और मुराद के सिर काट लेने की आज्ञा देदी गई।

अब शुजा रह गया। उसे मीर जुमला ने किसी योग्य न छोड़ा था। औरंगज़ेब बराबर उसकी मदद में सेना भेज रहा था। अन्त में वह ढाके की ओर भाग गया, जो समुद्र के किनारे बंगाल का अन्तिम नगर है अब कहाँ जाय? सो उसने अराकान के राजा की शरण ली। राजा ने उसे आश्रय दिया, पर जहाज़ न दिया। अब भी उसके पास बहुत धन था। शुजा को भय हुआ कि कहीं मैं लूटा न जाऊँ। राजा ने उससे प्रस्ताव भी किया कि

वह अपनी लड़की उसे ब्याह दे, पर शुजा ने न स्वीकार किया। उल्टे उसने एक षड्यन्त्र रचा, जिसमें बहुत-से पुर्तगीज़ लुटेरे और राजा के रिश्तेदार भी सम्मिलित थे। इसका अभिप्राय यह था कि महल पर आक्रमण करके राजा और उसके परिवार को क़त्ल कर दिया जाय। पर भेद खुल गया और उसने पेगू को भाग जाना चाहा, पर रास्ता ऐसा विकट था कि यह सम्भव न हो सका। अन्तः वह परिवार सहित पकड़ा गया और मार डाला गया। उसकी लड़की से राजा ने विवाह कर लिया। शेष परिवार के लोग क़ैद कर दिये गये। पर उसके पुत्र सुलतान बाक़ी ने फिर षड्यन्त्र रचा और फिर झगड़ा-फोड़ हुआ। इस बार शुजा का परिवार-भर क़त्ल कर दिया गया, जिसमें वह लड़की भी थी, जिसे राजा ने विवाहा था, तथा जो गर्भवती थी। सब के सिर कुल्हाड़े से काटे गये।

इस प्रकार ६ वर्ष के अन्दर यह मुग़ल-परिवार की आग बुझी और अब अकेला औरङ्गज़ेब बिना प्रतिद्वन्दी के महान् साम्राज्य और सत्ता का स्वामी था!

बादशाह को तख़्तनशीनी का वर्णन बर्नियर इस भाँति करता है:—

उस दिन बादशाह दीवान ख़ास में तख़्त-ताऊस पर बैठा था। उसके कपड़े बहुत ही सुन्दर और फूलदार रेशम के बने हुए थे और उन पर बहुत अच्छा ज़री का काम किया हुआ था। सिर पर ज़री का एक मन्दील था, जिस पर बड़े बड़े बहुमूल्य हीरों का तुर्रा लगा हुआ था। उसमें एक पुखराज ऐसा था, जो बेजोड़ कहा जा सकता है। वह सूर्य के समान चमकता था। उसके गले में बड़े बड़े मोतियों का एक कण्ठा था, जो हिन्दुओं की माला की तरह पेट पर लटकता था। छः सोने के पायों पर यह तख़्त बना है। कहते हैं कि यह बिलकुल ठोस है और इसमें याक़ूत और कई प्रकार के हीरे जड़े हुए हैं। मैं उनको गिनती और मूल्य निश्चित नहीं कर सकता; क्योंकि इसके निकट जाने की किसी को आज्ञा नहीं है। इससे कोई उनकी क़ीमत-आदि का पता नहीं लगा सकता, पर विश्वास किया जाय कि इनमें हीरे और जवाहरात बहुत हैं।

मुझे याद है कि इसका मूल्य ४ करोड़ रुपया आँका गया था। यह तख़्त शाहजहाँ ने इसलिये बनाया था कि ख़ज़ाने में पुराने राजाओं और पठानों से लूटे हुए और अमीर-उमरा से नज़र में आए हुये जो जवाहरात इकट्ठे होगये थे, उन्हें लगा देखें। उसकी बनावट और कारीगरी भी उसके जवाहरातों के समान ही है। दो मोर तो मोतियों और जवाहरात से बिल्कुल जड़े हुए हैं। इसको एक फ़्रान्सीसी कारीगर ने आश्चर्यजनक रीति से बनाया था।

तख़्त के नीचे की चौकी पर चाँदी का कटहरा लगा था। ऊपर ज़री की झालर का एक बड़ा चँदुआ टँगा था। उमरा बहुमूल्य वस्त्र पहने खड़े थे, और रेशमी चँदुए, जिनमें रेशम और ज़री के फुँदने लगे हुये थे, इतने थे कि गिनती नहीं। बहुत बढ़िया रेशमी क़ालीन बिछे हुये थे। बाहर एक बड़ा भारी ख़ेमा था, जो सहन में आधी दूर तक फैला था और चाँदी की पत्तियों से मँढ़े हुए कटहरों से घिरा था।

इस ख़ेमे के बाहर की ओर लाल रंग का कपड़ा लगा था और भीतर मछली-पद्म की सुन्दर छींट थी, जो अति उत्तम तथा प्राकृतिक मालूम देती थी। अमीरों को आज्ञा थी कि वे आमख़ास के चारों ओर की महराबें अपने-अपने ख़र्च से सजावें। इसके फल-स्वरूप सादी दीवारें कमख़ाब और ज़री से ढक गई थीं और ज़मीन बहुमूल्य क़ालीनों से भर गई थी।

———

(१२)

औरङ्गज़ेब

सब तरफ़ से निष्कंट होकर यह व्यक्ति सन् १६५९ में गद्दी पर बैठा। इस समय ८ दिन तक प्रत्येक प्रसिद्ध नागरिक और सब अमीर-उमराओं ने नज़र गुज़ारी। वह यह जानता था कि उसके पारिवारिक अत्याचार के कारण सब लोग उससे बदज़न हैं, इसलिए उसने अमन-अमान क़ायम करने की चेष्टा की। जिन्होंने उसकी मदद की थी, उन्हें भारी इनाम दिये गये। राजा जयसिंह को साँभर का इलाक़ा दिया गया। अन्य उमराओं को भी इलाक़े दिये गये। ख़ास-ख़ास व्यक्तियों की तनख़्वाहें बढ़ाई गईं। अमीरों को जवाहरात की जड़ी तलवारें, एक-एक हाथी और एक-एक घोड़ा दिया गया। इससे बहुत लोग उसकी वाह-वाही करने लगे।

जश्न के अन्त में उसने ५०० क़ैदियों का, जो जेल में थे, सिर कटवा लिया, जिससे सब डरें। यह रस्म क़दम-रसूल नामक मस्जिद के सामने अदा की गई, जो लाहौरी दर्वाज़े से कोई १॥ मील दूर दक्षिण-पश्चिम में थी।

चिराग़देहली में इसका दर्बार था। उसने पुराने हाकिमों को बदल-कर नये ओहदेदार बनाये। बहुत-से हुक्म मतलब के भी दिये गये। इस प्रकार आस-पास उसने सब प्रबन्ध ठीक कर लिया।

तख़्त पर बैठते ही इसने शराब के विरुद्ध ख़ूब आन्दोलन किया। वह जानता था कि देश में शराब की ख़ूब बिक्री थी—जहाँगीर के ज़माने से ही इसका प्रचार बढ़ गया था। शाहजहाँ के ज़माने में भी दारा की देखा-देखी लोग उसे ख़ूब पीने लगे थे। शाहजहाँ ने प्रजा के आनन्द में विशेष दख़ल नहीं दिया। इसने एक बार जोश में आकर कहा—"तमाम हिन्दुस्तान में सिर्फ़ दो व्यक्ति हैं, जो शराब नहीं पीते—एक मैं, दूसरे क़ाज़ी अब्दुल-

वहाब," परन्तु सच कहा जाय, तो दोनों ही चुपचाप शराब पीते थे। इसने हुक्म दिया कि तमाम ईसाई डॉक्टर शहर को छोड़कर तोपख़ाने के थान के पास चले जायँ, जो शहर से एक फ़र्लांग के फ़ासले पर था। वहाँ उन्हें शराब खींचने और पीने की आज्ञा थी, परन्तु अन्यों को बेचने की मनाही थी। फिर इसने कोतवाल को हुक्म दिया कि शराब बेचनेवालों का एक-एक हाथ और एक-एक कान काट लिया जाय। कोतवाल यद्यपि पूरा शराबी था, पर वह मुस्तैदी से इस हुक्म की तामील में लग गया।

थोड़े ही दिन में शराब-फ़रोशी बन्द होगई। परन्तु धीरे-धीरे वह फिर जारी होने लगी, और अमीर लोग चुपचाप शराब खींचने लगे।

इसी तरह उसने भङ्ग और अफ़ीम के विरुद्ध भी ख़ूब सख़्ती की। इसके लिये ख़ास अफ़सर नियुक्त किया। उसे हुक्म था कि वह इन सब नशों का रिवाज उठादे। पर यह सख़्ती भी धीरे-धीरे कम होगई।

इसके बाद उसने हुक्म दिया कि कोई मुसलमान ४ अंगुल से ज़्यादा दाढ़ी न रक्खे। इसके लिए एक अफ़सर नियुक्त किया गया, जो अपने सिपाहियों के साथ लोगों की डाढ़ी नापे, और जिसकी डाढ़ी बड़ी देखे, उसे काट दे, तथा मूछों को काटकर साफ़ कर दे। यह अफ़सर भी बड़ी मुस्तैदी से कैंची-पैमाना लिये फिरा करते थे। इस अफ़सर को देखते ही मज़ा यह होता था कि बहुत-से लोग अपने-अपने मुँह ढाँप लेते थे कि वह उनकी डाढ़ी न काटले।

उसने गाने-बजाने के विरुद्ध भी हुक्म दिया कि जहाँ गाने-बजाने की आवाज़ आवे, घुसकर बाजों को तोड़ डालो। इस पर कुछ गवैयों ने मिलकर एक तरकीब की। जब बादशाह जुमे की नमाज़ को जा रहा था, तब कोई ५ हज़ार आदमी २०-२५ जनाज़े बनाकर ख़ूब रोते-पीटते-चिल्लाते उधर से निकले। बादशाह ने देखकर पूछा—"यह क्या है?" तब उन्होंने हाज़िर होकर कहा—"हुज़ूर, शायरी मर गई है, उसी का यह जनाज़ा है।" बादशाह ने हुक्म दिया—"उसे इतना गहरा गाड़ो कि फिर न निकल सके।"

अब उसने रंडियों की शादी करने का हुक्म दिया। शाहजहाँ के ज़माने में इनकी बड़ी वृद्धि होगई थी। जो रंडी शादी न करती थी, उसे देश-निकाले की सज़ा थी। इससे शीघ्र ही रंडियों के मुहल्ले उजाड़ होगये।

महावत लोग मुग़ल-दर्बार के नियम के अनुसार हाथियों को दर्बार में सलामी के लिये लाते थे। तब वे यह शरारत किया करते थे कि बाज़ार में उन्हें भड़का देते थे, जिससे वे दुकानों को तोड़ते-फोड़ते तथा आदमियों को कुचलते चलते थे; ख़ासकर उन लोगों से, जिनसे उन्हें द्वेष हो, वे ख़ूब बदला लेते थे। बादशाह ने पूछा—"हाथी खुद दीवाना हो जाता है, या दीवाना कर दिया जाना भी मुमकिन है।"

महावतों ने उनका मतलब न समझा, और जवाब दिया-"जहाँपनाह, हाथी को जब चाहें. कुछ दवाइयाँ खिलाकर मस्त बनाया जासकता है।" इस पर बादशाह ने हुक्म दिया कि महावतों से लिखवा लिया जाय कि यदि कोई हाथी किसी का नुक़सान करेगा, तो उसका हरजाना महावत से लिया जायगा।

हम पहले कह चुके हैं कि मुग़ल-सल्तनत में फ़क़ीरों की दुष्टता का बड़ा ज़ोर था। ये लोग दुष्ट, ज़िद्दी तथा गुस्ताख़ होते थे। सब लोग इनसे डरते थे। ये लोगों को अन्ध-विश्वासों में ख़ूब फँसाते थे। जब लोग इनके पास जाते, कुछ-न-कुछ चढ़ावा साथ में ले जाते थे। ये गंडे-तावीज़ देते तथा औरतों को फुसलाते। पर औरतों को मौक़ा पाकर ही फुसलाते थे। इनके घर में सैंकड़ों दासियाँ और कुटनियाँ होती थीं; जो बड़े घर की स्त्रियों को फुसलाया करती थीं, और इधर-उधर की ख़बरें उन्हें देती थीं, जिन्हें बताकर ये पाखंडी औलिया बन जाते थे। इस बादशाह ने यद्यपि इनका कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया, पर उन १२ औलियाओं को सज़ा दी, जिन्होंने दारा के बादशाह होने की भविष्य-वाणी की थी। उन्हें बुलाकर उसने कहा—"कोई करामात दिखाओ। इसके लिए मैं तीन दिन की मुहलत देता हूँ।" यह सुनकर वे घबराये। वे जानते थे कि यह मखौल नहीं है, इनमें से दो ने तो फ़ौरन् कह दिया कि हम बग़दाद के निवासी हैं, हम ख़ुदा को छोड़-

कर और कुछ नहीं जानते। बाक़ी बेचारों ने बहुत-से जिन्नात को जगाया, क़ुर्बानियाँ कीं, पर जब उन्हें बादशाह ने बुलवाया और कहा कि या तो कोई करामात दिखलाओ, वर्ना कोड़े लगवाये जायँगे, तो वे चुप रहे। परिणाम यह हुआ कि कुछ को भिन्न भिन्न क़िलों में क़ैद कर दिया गया, और कुछ को देश से निकाल दिया। इनमें से एक प्रसिद्ध औलिया की गर्दन भी काटी गई। इसका नाम शाह-सैयद-सरमद था। ये आलमगीर-औरंगज़ेब के समय में एक ईश्वर-वादी साधु थे। एक जौहरी के पुत्र अमीचन्द से उन्हें प्रेम होगया था। उसी आवेश में वे उसे ख़ुदा कहा करते थे। ये बहुधा नंगे रहते थे। उस ज़माने में क़वी नाम का दिल्ली का क़ाज़ी था। उसने औरङ्गज़ेब से शिकायत की कि सरमद नाम का एक शख़्स शहर में नंगा फिरता है; वह कल्मा नहीं पढ़ता, और अमीचन्द को ख़ुदा कहता है। औरङ्गज़ेब ने तुरन्त सिपाहियों-द्वारा उसे गिरफ़्तार कराया और अपने दर्बार में बुलाया। उनकी जो बातें हुईं, वह 'मुन्तख़ेबुल-नफ़ाइस'-नामक फ़ारसी की किताब में इस तरह दर्ज हैं—

औरङ्गज़ेब—ख़ुदायत कीस्त ऐ सरमद दरीं दहर (तेरा ख़ुदा कौन है ऐ सरमद इस आलम में)?

सरमद—नमीं दानम अमीचन्दस्त या ग़ैर (मैं नहीं जानता कि अमीचन्द के सिवा कोई और हैं)।

औ०—सरमद! जामा चिरा नमे पोशी (ऐ सरमद! कपड़े क्यों नहीं पहनता)।

सरमद०—आँकस कि तुरा मुल्को जहाँदानी दाद।
मारा हमाँ अस्बाबे परेशानी दाद॥
पोशाँ लिबास-हर किरा-ऐबे दीद।
बे एबाराँ लिबासे उरियानी दाद॥

(जिस शख़्स ने तुझे मुल्क और बादशाहत दी और मुझको तमाम सामान परेशानी के दिये, उसी शख़्स ने उसको लिबास पहिनाया, जिसमें कि ऐब देखा और बेऐबों को नंगेपन का लिबास दिया)।

बा०—सरमद, कल्मा चिरांग न मे ख़्वाँदी (सरमद, कल्मा क्यों नहीं पढ़ता)।

सरमद—चुगूनां खुआनम के वर मन पवीस्त शैताँ (किस तरह पढ़ें, क्योंकि मेरा शैतान ज़बरदस्त है)।

बादशाह इस बातचीत से बहुत नाराज़ हुआ। उसने हुक्म दिया कि यदि वह अपने विचार न बदले तो इसकी गर्दन काट दी जाय। तमाम दर्बारियों ने समझाया कि वह इन तीन बातों से तोबा करले। लेकिन सरमद ने साफ़ कह दिया कि मैं अपने में कोई ऐब या चोरी-कपट नहीं देखता कि तोबा करूँ। मेरा आत्म-विश्वास मेरे साथ है, और वह पवित्र है, जो किसी के मार्ग में बाधा नहीं डालता। मैं तोबा नहीं करूँगा।

उसके बाद जल्लाद को बुलाया गया। उस ज़माने में जल्लाद सुर्ख़ पोशाक में आया करते थे। सरमद ने जल्लाद को सुर्ख़ कपड़ों में आते देखा तो बहुत हँसा, और मौज में आकर उसने यह शेर पढ़ा कि—

बहर रंगे के ख़्वाही जामा मे पोश।
मन अज़ ज़ेबाए क़द्दत मे शनासम।

(जिस रंग के तेरा जी चाहे कपड़े पहन ले, मैं तो तेरे क़द की ख़ूब-सूरती से तुझे पहचानता हूँ।)

निदान, जल्लाद ने बढ़कर एक हाथ मारा और उसकी गर्दन से सिर अलग होगया। गर्दन बजाय ज़मीन पर गिरने के एक नेज़ा ऊँची होगई और उस वक़्त भी एक शेर उसके मुँह से निकला।—

सर जुदा कर्द अज़ तनम् शोख़े कि बामा यार बूद।
क़िस्सा कोताह गश्त वरना दर्द-सर में बिस्यार बूद।

(सर मेरा उस माशूक़ ने जुदा किया, जो मेरा बहुत दोस्त था। चलो, क़िस्सा ख़तम हुआ, वरना बड़ी सिर-दर्दी थी।)

मुसलमानी किताबों में आलिमों ने इस काम को अच्छी नज़र से नहीं देखा। मुसलमान अब तक सैयद सरमद के औलिया होने के क़ायल हैं। उनका मज़ार दिल्ली में पूर्वी दर्वाज़े की तरफ़ जामे-मस्जिद के सामने हरे-

भरे पीर के पास ही है, जहाँ आज तक हिन्दू-मुसलमान उनकी ज़ियारत करते हैं। किसी मुसलमान शायर ने यह शेर भी लिखा है—

सर कटा है जब से सरमद का।
तख़्त नाराज़ होगया है हिन्द का।

अकबर ने एक नियम बनाया था, और वह अब तक जारी था - कि जब कोई आदमी शाही दण्ड से डरकर भाग आता था, और मुग़ल-राज्य में आश्रय ढूँढ़ता था, तो उस पर निगरानी की जाती थी। इसके लिये गुप्तचर नियुक्त होते थे, जो भिन्न-भिन्न पेशेवाले होते थे। ये लोग भी बहुत-सी ख़बरें देते थे। इनकी बदौलत बादशाह सब बातों का पता लगाते थे। औरङ्गज़ेब ने इस विभाग को ख़ूब उन्नत किया था।

औरङ्गज़ेब ने इस बात की बड़ी चेष्टा की कि लोगों के दिल में बूढ़े बादशाह की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाय, और इसकी इज़्ज़त बढ़ जाय। वह बहुधा शाहजहाँ के प्रबन्धों पर नुक़ता-चीनी किया करता था। इनमें कुछ बातें ख़ास थीं,—जैसे मीनाबाज़ार खोलना, नौकर-चाकरों को बिगाड़ना, वज़ीरों को मुँह लगाना—आदि।

जो हिन्दू-राजा उसके दर्बार में आते, उनके साथ बादशाह ऊपर से अच्छा सुलूक करता था, और उन्हें यथा-शक्ति कुछ देता था। पर जब ज़रा भी उसे शक होता कि इससे हानि होगी, वह चुपचाप उनका सिर कटवा देता था।

बादशाह के गद्दी पर बैठते ही भिन्न-भिन्न देशों के बादशाहों ने उसके पास भेंटें और दूत भेजने शुरू कर दिये। सब से प्रथम उज़बक-जाति के तातारी बादशाह ने मुबारिकबादी देने को एलची भेजे। वे जब दर्बार में आये, तब शाही दर्बारी रीति से तीन बार कोर्निश करके आदाब बजाया और ख़रीता पेश किया, जिसे बादशाह ने एक अमीर के द्वारा लिया। उसे पढ़कर उसने उन्हें खिलअत दी, और फिर नज़र पेश करने का हुक्म दिया। इनमें लाजवर्द के बने हुए कई उम्दा सन्दूक़, लम्बे-लम्बे बालोंवाले कई ऊँट, कुछ सुन्दर तुर्की घोड़े, कई ऊँट ताज़े फलों— जैसे अंगूर, सेब, नाशपातियों,

से लदे हुए, कई ऊँट सूखे मेवों—जैसे आलूबुख़ारा, खुबानी, काले-सफ़ेद अत्यन्त स्वादिष्ट अंगूर, किशमिश-आदि से लदे हुए, आदि-आदि।

बादशाह इन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, और तोहफ़े की बहुत-बहुत तारीफ़ें कीं। ये एलची चार महीने दिल्ली में रहे। सब का ख़र्च बादशाह ने दिया। अन्त में सब को सिरोपाह ८।८ हज़ार रुपये नक़द, और उनके मालिकों के लिये बहुमूल्य कारचोबी के थान, तनज़ेब और मलमल के इलाइचिये, क़ालीन, जड़ाऊ मूठ के ख़ञ्जर-आदि भेजे।

इसके बाद डचों ने भी अपना एलची भेजा। उसने प्रथम शाही ढंग पर आदाबगाह पर तसलीमात अर्ज़ की, और फिर नज़दीक आकर अपने देश के ढंग पर सलाम किया। बादशाह ने ख़रीता अमीर-द्वारा लेकर पढ़ा, और नज़रों को देखा। उसमें कुछ तो लाल और हरे रंग सी बानात के बढ़िया थान थे, कुछ बड़े-बड़े आईने थे, कुछ चीन और जापान की बनी हुई चीज़ें थीं, जिनमें एक पालकीनुमा सिंहासन बहुत सुन्दर था। इसे कुछ दिन दर्बार में रख, बहुत-कुछ इनाम-इकराम दे बिदा किया गया।

इसके बाद एक ही साथ पाँच एलची आए। एक मक्के से आया था, जो कई अरबी घोड़े और एक झाड़ू लाया था, जो काबे में झाड़ने के काम आ चुकी थी। दूसरा यमन के बादशाह का था, तीसरा बसरे के हाकिम का। ये लोग भी भेंट में अरबी घोड़े लाये थे। दो एलची अन्य दो देशों के बादशाहों ने भेजे थे, इनके सामान बहुत सामान्य थे, और इनका सत्कार भी साधारण ही हुआ।

इसके बाद ईरान के शाह का एलची आया, और इसका स्वागत बड़ी धूम-धाम से हुआ। तमाम बाज़ार सजाए गये, और ३० मील तक पंक्तिबद्ध सवार खड़े किये गये। उसकी तोपख़ाने से सलामी उतारी गई। उसने ईरानी रीति पर बादशाह को सलाम किया, तथा बादशाह ने उसके हाथ से ख़रीता अमीर के द्वारा न लेकर अपने हाथों में आदर से लिया, और पढ़ा। फिर सिरोपाव दिये। भेंट की वस्तुओं में २५ ऐसे सुन्दर घोड़े थे, जैसे हिन्दुस्तान में कभी न देखे गये थे। हाथी के बराबर बड़े-बड़े २० ऊँट थे। गुलाब और बेदमुश्क के जल से भरे हुए बहुत-से सन्दूक, ५।६

बड़े-बड़े बढ़िया क़ालीन, कई बहुत ही बढ़िया कारचोबी के थाल, जड़ाऊ मूठ के दमिश्क़ के बने चार ख़ञ्जर, चार जड़ाऊ तलवारें, ४१६ घोड़ों के बहुत ही सुन्दर और बहुमूल्य साज़, जिन पर मोतियों और फ़ीरोज़ों का बहुत बढ़िया काम हो रहा था।

बादशाह इन भेंटों से बहुत प्रसन्न हुआ, और एलची को ५।४ महीने दर्बार में रखा, उसे उमरा में स्थान दिया, और बहुत सम्मान से विदा किया। इस बादशाह के पास अपना ख़ास एलची भेजकर भेंट भेजने का बादशाह ने मंसूबा ज़ाहिर किया।

यद्यपि उसने शाहजहाँ को बड़ी मुस्तैदी से क़ैद कर रखा था, और ज़रा भी इसकी तरफ़ से बेख़बर न था, पर वह ऊपर से उससे बहुत अदब और सम्मान का बर्ताव करता था। उसे उन शाही महलों में रहने की आज्ञा दे दी गई थी, जिनमें वह पहले रहा करता था। उसकी पुत्री बेगम साहेबा उसके पास रहती थी। महल की और औरतें भी, जैसे नाचने-गाने-वालियाँ, खाना बनानेवालियाँ, भी उसके पास रहतीं थीं।

अब शाहजहाँ को ईश्वर-भक्ति की भी चाट लगी थी। कई मुल्ला भी उसके पास जाकर धर्म-पुस्तकें सुनाया करते थे। घोड़े, बाघ-आदि कई प्रकार के शिकारी जानवरों के मँगाने और हिरनों तथा मेंढ़ों की लड़ाई की भी परवानगी मिल गई थी। इस प्रकार वह हर तरह बूढ़े बादशाह की दिल-जोई करता था। वह अधिकता से उसके पास भेंट की चीज़ें भेजता रहता था, और राजनीति के विषय में उसकी सलाह लेता रहता था। उसके पत्रों से जो वह समय-समय पर लिखता रहता था, श्रद्धा और आज्ञाकारिता टपकती थी। इन बातों से शाहजहाँ का क्रोध ठण्डा पड़ गया, और वह औरंगज़ेब से पत्र-व्यवहार करने लगा। दाराशिकोह की पुत्री को भी उसके पास भेज दिया गया था। शाहजहाँ ने उन रत्नों को भी स्वयं उसके पास पहुँचा दिया, जिनके विषय में पहले उसने कहा था कि यदि माँगोगे, तो इनको कूटकर चूर-चूर कर दूँगा। अन्त में उसने विद्रोही पुत्र को क्षमा कर दिया और उसके लिये ईश्वर से प्रार्थना करने लगा।

परन्तु वास्तव में औरङ्गज़ेब के मन में चोर तो बना ही था, और वह भीतर से चाक-चौबन्द बना रहता था।

इसी बीच में औरङ्गज़ेब बीमार पड़ा। उसे बारंबार ज्वर चढ़ता था, और वह बेहोश होजाता था। वैद्य-हकीम निराश होगये, और दर्बार में घबराहट फैल गई। यह अफ़वाह फैल गई कि बादशाह मर गया है। यह भी अफ़वाह ज़ोर कर गई कि महाराज जसवन्तसिंह और महावतख़ाँ शाहजहाँ को क़ैद से छुड़ाने की चिन्ता कर रहे हैं।

यह घटना घटते ही सुलतान मुअज़्ज़म ने अमीरों को घूँस दे-देकर अपने पक्ष में कर लिया। यहाँ तक कि एक दिन उसने रात को राजा जयसिंह के पास जाकर बहुत-कुछ ख़ुशामद-दरामद की। इधर रोशनआरा बेगम ने भी बहुत-से अमीरों को मिला लिया, जिनमें तोपख़ाने का प्रधान अधिकारी फ़िदाअली मीर आतिश भी था। उसकी चेष्टा अकबर को गद्दी पर बैठाने की थी, जिसकी अवस्था ७।८ वर्ष ही की थी।

पर सब लोग जानते थे कि शाहजहाँ का क़ैद से बाहर निकालना कुद्ध शेर को बाहर निकालना है। सब दर्बारी उसके छूटने की चिन्ता से घबरा रहे थे। सब से अधिक भय एतबारख़ाँ को था, जो अकारण बेचारे क़ैदी बादशाह से निर्दयता का व्यवहार करता था।

औरङ्गज़ेब बीमारी की हालत में भी इधर से बेख़बर नहीं था। होश में आते ही वह शाहज़ादा मुअज़्ज़म को कहता कि यदि मैं मर जाऊँ तो बादशाह को क़ैद से छुड़ा लेना, पर एतबारख़ाँ को बारंबार लिखता था कि ख़बरदार, अपने काम में मुस्तैद रहना। बीमारी के पाँचवें दिन बादशाह ने साहस करके कहा—"हमको दर्बार में ले चलो।" इसका अभिप्राय यह था कि उसके मरने की जो अफ़वाह फैली है, वह मिट जाय। इस प्रकार वह उसी दशा में, सातवें, नवें और दसवें दिन भी दर्बार में गया, और कुछ बड़े-बड़े अमीरों को पास बुला भेजा। इसके बाद वह स्वस्थ होने लगा। स्वस्थ होने पर उसने दारा की पुत्री को शाहजहाँ के यहाँ से मँगाकर अपने बेटे अक-

वर से उसकी शादी करने की इच्छा प्रकट की, पर शाहजहाँ और शाहज़ादी ने घृणापूर्वक इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

आरोग्य-लाभ होने पर हकीमों के उसे जल-वायु बदलने काश्मीर जाने की सलाह दी। पर वह डरता था कि कहीं बुड्ढा शाहजहाँ फिर गद्दी पर न बैठ जाय। उसने क़ैद की सख़्तियाँ बढ़ा दीं। उसने वह खिड़की भी बन्द करवादी, जो जमना की तरफ़ थी, और जिसमें से शाहजहाँ बाहर का नज़ारा देखता और हवा खाता था। उसने खिड़की के नीचे बन्दूक़ची नियत कर दिये थे कि यदि शाहजहाँ उधर को झुके, तो गोली मार दें। वहाँ का सब सामान भी उठा लिया गया, और काफ़ी शोर किया गया। पर शाहजहाँ चुपचाप सब सह गया। वह खूब नाच-रँग और गाने-बजाने में मस्त रहने का ढोंग करने लगा। औरङ्गज़ेब ने यह सुनकर उसे ज़हर देने का इरादा किया और मुकरमख़ाँ को इस काम के लिये लिखा, जो शाहजहाँ का हकीम और भक्त था। उसे बादशाह ने लिख दिया कि जो चीज़ ख़्वाजासरा फ़हीम आपको देगा, वह शाहजहाँ को खिला दें, वरना ज़िन्दगी से हाथ धो लीजिये। उसने जवाब दिया—बादशाह ने जो हुक्म दिया है, मैं उससे ज़्यादा अच्छा काम करूँगा। मेरे लिये यह उचित नहीं कि जिसने विश्वास करके अपना शरीर मुझे सुपुर्द किया है, उसी से दग़ा करूँ। यह सोच, उसने स्वयं ज़हर खा लिया, और मर गया। औरङ्गज़ेब ने यह सुना तो वह कुछ लज्जित हुआ, और बादशाह को मारने के दूसरे उपाय सोचने लगा। पर गर्मी निकट आगई थी, और उसे कश्मीर जाना ज़रूरी था।

अन्त में बादशाह ने काश्मीर की यात्रा की। इस यात्रा में दो लाख आदमी उसके साथ थे। पाठक इस यात्रा के व्यय का अनुमान कर सकते हैं। दो वर्ष में बादशाह इस यात्रा से लौटा। परन्तु एक दिन के लिये भी बादशाह के नित्य-नियमित दर्बार-आदि में अन्तर नहीं आया।

आठ वर्ष क़ैद में रहकर शाहजहाँ की मृत्यु हुई। पिता के मरने का ढोंगी औरङ्गज़ेब ने बड़ा शोक किया। वह तुरन्त आगरे आया। वहाँ पहुँचने

पर उसकी बहन बेगम साहेबा ने उसका बड़ी धूम-धाम से स्वागत किया। कमख़्वाब के थान लटकाकर बादशाही मस्जिद सजाई गई—और इसी प्रकार वह मकान भी, जहाँ औरङ्गज़ेब का इरादा ठहरने का था। औरङ्गज़ेब महल में पहुँचा तो शाहज़ादी ने एक बड़ा-सा सोने का थाल जवाहरात से भरकर बादशाह की नज़र किया। उसका यह सत्कार देखकर औरङ्गज़ेब का मन भी पसीज गया और उसने बहन की सब पुरानी बातें भुलादीं, और कृपा तथा उदारता का व्यवहार उसके साथ किया।

शाहजहाँ के मरते ही उसने जहाद की तलवार उठाई। सर्व-प्रथम उसने सब हिन्दू-अफ़सरों को पदच्युत करदिया, जिस से प्रबन्ध में एक अन्धेरगर्दी मच गई। इसके बाद उसने काशी पहुँचकर पण्डितों को हुक्म दिया कि वे सब प्रकार का पठन-पाठन बन्द कर दें। इसके बाद उसने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मन्दिरों को ढहाकर उनके स्थानों पर मस्जिदें बनादीं। मथुरा में जाकर उसने सब बड़े-बड़े मन्दिर ढहा दिये, हज़ारों मनुष्य क़त्ल करा दिये। उसने फिर सभी प्रान्तों के हाकिमों को फ़र्मान भेज दिये कि सब मन्दिर ढहा दिये जायँ, मूर्तियाँ तोड़ दी जायँ, और सब प्रकार के हिन्दुओं की पाठशालाएँ बन्द करदी जायँ।

फिर वह कुरुक्षेत्र के मेले में पहुँचा, और लाखों मनुष्यों को अकारण क़त्ल करा डाला। इन सब बातों से राज्य-भर में अशान्ति और विद्रोह फैल गया। प्रबन्ध तो प्रथम ही गड़बड़ होगया था। नारनौल में सत्यनामी साधुओं ने विद्रोह खड़ा कर दिया, जो एक वर्ष में दबाया जा सका, और उसमें बहुत सी मुग़ल-सेना नष्ट हुई।

इन सब बातों से चिढ़कर और राज्य-कोष के ख़ाली हो जाने के कारण उसने प्रजा पर 'जज़िया' का टैक्स लगा दिया, और देशी राज्यों के राजाओं को भी वह टैक्स वसूल करने की आज्ञाएँ भेजीं।

जब-जब बादशाह जुम्मे की नमाज़ पढ़ने आता, प्रजा बार-बार एकत्र होकर प्रार्थना करने के लिये उपस्थित हुई। सामने आने पर औरंगज़ेब ने उसे हाथियों से कुचलवा देने का हुक्म देदिया, जिससे भीतर ही भीतर प्रजा बहकने लगी।

जहाँ औरङ्गज़ेब ने इतने प्रबल शत्रु चारों तरफ़ पैदा कर लिये थे, वहाँ वह अपने मित्रों और सहायकों को भी सन्देह और भय की दृष्टि से देखता रहा। उसने जिस प्रकार अपने वंश का मूलोच्छेद किया, यह पाठक देख चुके। फिर उसने अपने ख़ास वीर पुत्र को आजन्म ग्वालियर के दुर्ग में क़ैद कर दिया, यह भी पाठक देख चुके। अपने वीर और प्रबल सावंत जयसिंह और जसवन्तसिंह को भी उसने ज़हर खिलाया।

उसे मीर जुमला का भय सदा बना रहता था। वह बंगाल में निष्कंटक राज्य कर रहा था। पर उसने उसे ख़ाली न बैठने दिया और आसाम पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। उसका मतलब यही था कि वह दूरस्थ और अपरिचित देश में जाकर मरे। उसके बाल-बच्चे उसने अब तक भी अपने क़ाबू में रख छोड़े थे। इस मुहिम से वह बहुत-सी जान-माल की हानि कराकर लौटा और उसका स्वास्थ इतना गिर गया कि वह बंगाल लौटने के कुछ दिन बाद ही मर गया। उसके मरने की सूचना पाकर उसने मीर जुमला के पुत्र से कहा- "तुम अपने स्नेही पिता के लिये शोक करते हो, और मैं अपने शक्तिशाली और अति भयानक मित्र के लिये दुःखित हूँ।"

राणा से सन्धि होने के बाद बादशाह ने अपनी समस्त शक्ति दक्षिण-विजय पर लगादी। वह अन्त में स्वयं भारी सेना लेकर दक्षिण पर चढ़ चला, और १४ वर्ष तक मरहठों से टक्कर लेता रहा। उसे फिर दिल्ली देखनी नसीब न हुई। मरहठों ने समस्त दक्षिण पर अधिकार कर लिया। साथ ही मुग़लों के भी बहुत-से प्रान्त जीत लिये। इससे उसका दिल टूट गया, और वह वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ।

शाइस्त खाँ ने इस समय बादशाह को बहुत सहायता दी थी। उसी की बदौलत वह उच्च पद पर पहुँचा था। उसे खगुआ के युद्ध से प्रथम आगरे का सूबेदार नियत किया गया था। फिर वह दक्षिण का सूबेदार बनाया गया। फिर मीर जुमला की मृत्यु के बाद उसे बंगाल का हाकिम बना दिया गया। अमीर-उमरा की पदवी उसे प्रदान की गई और अराकान के भयानक डाकू राजा से निरन्तर लड़ने और उद्दण्ड पुर्तगीज़ लुटेरों से टक्कर

लेने को छोड़ दिया गया। शाहस्त ख़ाँ ने बड़ी हिम्मत, मुस्तैदी और वीरता से इन डाकुओं को वश में किया, और बंगाल के निचले प्रदेशों को निष्कंटक कर दिया।

बादशाह ने अपने बड़े पुत्र को तो ग्वालियार के क़िले में घुल-घुलकर मरने को डाल दिया था। एक बार छोटे बेटे मुअज़्ज़म को भी शिकार के बहाने ऐसे ख़तरे में भेज दिया, जहाँ से वह बड़ी ही बहादुरी से जान बचाकर आया। इस पर औरङ्गज़ेब ने उसे दक्षिण का सूबेदार बनाकर वहाँ भेज दिया।

महावतख़ाँ, जो प्राचीन योद्धा था, और जिसने शाहजहाँ पर बड़े-बड़े एहसान किये थे, क़ाबुल से बुला लिया गया। उसने बहुत-सी क़ीमती भेंट शाहज़ादी रोशनआरा को तथा १६ हज़ार अशर्फ़ियाँ और बहुत-से ईरानी ऊँट तथा घोड़े बादशाह को भेंट किये। इस पर बादशाह कुछ सन्तुष्ट हुआ, और उसे दक्षिण भेज दिया। इसके सिवा अमीरख़ाँ को क़ाबुल, ख़लीलुल्लाह को लाहौर, मीरबाबा को इलाहाबाद, ज़ुल्फ़िक़ारख़ाँ को खगुआ भेज दिया। फ़ाजिलख़ाँ, जिसकी योग्य सलाहों से बादशाह को बहुत लाभ हुआ था, प्रधान ख़ानसामाँ बनाया गया। देहली की सूबेदारी दानिशमन्दख़ाँ को दी गयी। दयानतख़ाँ को काश्मीर की सूबेदारी दी गई।

इस प्रकार समस्त हिन्दू-सर्दार बेदख़ल होगये थे। इन सब कारणों से इस बादशाह के समय में हिन्दुस्तान में तीन प्रबल विजयिनी हिन्दू-शक्तियाँ उदय होगईं। दक्षिण में मराठे, जिनका नायक शिवाजी था, पश्चिम में सिक्ख, जिनके नायक गुरु गोविंदसिंह थे, और राजपूताने में राजपूत, जिनके नायक मेवाड़ के अधिपति थे।

जिस समय औरङ्गज़ेब तख़्त पर बैठा, उस समय मुग़ल-साम्राज्य का आदि-अन्त था। यदि यह कहें कि उस समय संसार-भर में ऐसा प्रबल साम्राज्य न था, तो उत्युक्ति नहीं। पर यह साम्राज्य औरङ्गज़ेब के पूर्वजों ने हिन्दू-राजाओं के सहयोग से और हिन्दू-प्रजा को प्रसन्न करके संगठित किया था। वे जानते थे कि कोई भी जाति बल या घृणा से कभी क़ब्ज़े में नहीं

आ सकती। औरङ्गजेब के पूर्वजों ने पठानों की सैकड़ों वर्ष की विफल और अथक चेष्टा का परिणाम देख लिया था—और वे समझ गये थे कि साम्राज्य की स्थापना में प्रजा का कितना हाथ रहना आवश्यक है। औरङ्गज़ेब एक तत्पर, तीव्र-बुद्धि, चौकन्ना और भयानक परिश्रमी बादशाह था। किसी ख़ुशामदी को उसके सामने मुँह खोलने का साहस न होता था। उसने शुरू ही से इस्लाम की आड़ लेने की नीति पर काम किया था। यदि वह ऐसा न करता तो जो कुकर्म उसने राज्य-प्राप्ति के लिये किये, उनमें वह सफल न होता। पर इस सफलता का कुछ भी महत्त्व न रहा, क्योंकि, उसके राज्य के जो स्तम्भ थे—वे राजपूत और हिन्दू शीघ्र ही उसके विरोधी होगये, और उन्हीं ने स्वतन्त्र शक्ति का संगठन करना प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि भारतीय तेज मर गया था, वीरत्व सो गया था और समाज पराधीनता की कीचड़ में डूबा पड़ा था; पृथ्वीराज की-सी अजेय सत्ता नहीं रही थी, अमरसिंह से जूझ मरनेवाले मर चुके थे प्रताप-जैसे नर-केशरी भी समाप्त हो चुके थे; परन्तु अवसर ने फिर वीरत्व को उदय किया।

शिवाजी दक्षिण में एक अवतार होकर जन्मे। वे एक वीर, साहसी, निष्ठावान्, और प्रकृत-योद्धा थे। सोलह ही वर्ष की अवस्था में उन्होंने कुछ मित्रों को सङ्ग ले, घोड़े पर सवार हो, आस-पास के गाँवों को लूटना प्रारम्भ कर दिया। ये गाँव बीजापुर के शाह के थे। शाह ने अफज़लखाँ को भेजा। यह एक विकरालकाय योद्धा था, और छल से शिवाजी को क़त्ल किया चाहता था, पर शिवाजी ने उसे छल से मार डाला।

यह उस समय की घटना है, जब औरङ्गज़ेब दक्षिण का सूबेदार था। शिवाजी को उस समय औरङ्गज़ेब ने उत्तेजना दी, क्योंकि वह बीजापुर की हानि में प्रसन्न था। शिवाजी ने शीघ्र ही कोकन प्रदेश जीत लिया।

जब औरंगज़ेब पिता के विरुद्ध आगरे पर चढ़ने लगा तो उसने शिवाजी से भी सहायता चाही। पर शिवाजी ने उसके इस नीच काम का खूब तिरस्कार किया, और उसके पत्र को कुत्ते की पूँछ में बँधवा दिया। बस, वहीं से औरंगज़ेब के हृदय में बैर का बीज बैठ गया। उधर औरंगज़ेब गद्दी

पर बैठा और इधर चतुर शिवाजी ने बीजापुर वालों से सन्धि कर ली।

अब उसने मुग़ल प्रान्तों पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये। उन दिनों दक्षिण में मुग़ल सूबेदार नवाब शाइस्ताखाँ था। औरङ्गज़ेब ने उसे शिवाजी का दमन करने का हुक्म भेज दिया।

शाइस्ताखाँ एक बड़ी सेना लेकर शिवाजी पर टूट पड़ा। उसने कोकण-प्रदेश के सभी क़िले क़ब्ज़े में कर लिये। फिर उसने पूना पहुँचकर उस भवन को भी अधिकार में ले लिया, जिसमें शिवाजी का जन्म हुआ था। शिवाजी चुपचाप तमाशा देखते और अवसर ताकते रहे। एक दिन अकस्मात् शिवाजी रात को शाइस्ताखाँ के घर में जा धमके। जब वे ज़नानख़ाने में पहुँचकर तलवार चलाने लगे, तब स्त्रियों ने नवाब को जगाया। वह हक्का-बक्का होगया, और खिड़की से कूदकर भागा। फिर भी उसकी उँगलियाँ कट गईं, और पुत्र मारा गया। सेवक भी सब काट डाले गये। इस घटना से शाइस्ताखाँ ऐसा भयभीत हुआ कि सीधा दिल्ली चला आया। इसके बाद शिवाजीने सूरत नगर को लूट लिया, जो दक्षिण में मुग़लों का समृद्धशाली बन्दरगाह था। यहाँ शिवाजी को अटूट सम्पदा मिली, जिससे कोकण की सारी कसर निकल गई।

इसके बाद रायगढ़ लौटकर उन्होंने राजा की उपाधि ग्रहण की। इस उत्सव में शिवाजी ने लगभग ५ करोड़ रुपया व्यय किया। अब उनके नाम का सिक्का चलने लगा।

इस प्रकार मुग़लों के प्रबल प्रताप के बीच यह छत्रपति उभरने लगा।

इन समाचारोंको पाकर औरङ्गज़ेब ने महाराज जयसिंह और सेनपति दिलेरखाँ को एक बड़ी सेना लेकर भेजा। जयसिंह ने बहुत समझा बुझाकर शिवाजीको सन्धि पर राज़ी कर लिया। सन्धि की शर्तें दिल्ली भेजी गईं। बादशाह ने भी उन्हें स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने बादशाह की तरफ़से बीजापुरसे युद्ध किया, और बादशाहका निमन्त्रण पाकर अपने पुत्र शम्भाजी, ५०० सवार और १००० मावली सैन्यके साथ दिल्लीको प्रस्थान किया।

परन्तु औरङ्गज़ेब ने इस प्रतापी पुरुष का दर्बार में सम्मान नहीं किया। इससे रुष्ट होकर ये वहाँ से लौट आये। इस पर बादशाह ने इन्हें क़ैद कर लिया। पर शिवाजी वहाँ से कौशल से निकल-भागे। औरङ्गज़ेब ने उनकी राजा की उपाधि स्वीकार कर ली, और जागीर भी दे दी। अब उन्होंने दक्षिण लौटकर बीजापुर और गोलकुण्डा के नवाबों से युद्ध करके विजय प्राप्त की, और कर ग्रहण किया। उन्होंने दक्षिण में खूब राज्य-विस्तार किया। विवश बादशाह ने महाबतखाँ को ४० हज़ार सैन्य लेकर दक्षिण को भेजा। पर इस सैन्य ने पूरी हार खाई। इसमें २२ सेनापति मारे गये, शेष क़ैद कर लिये गये। यह शिवाजी का प्रथम सम्मुख-युद्ध था।

इसके बाद शिवाजी ने विजयोत्सव किया, और राज्य-विधान में संशोधन किये। उपाधियाँ फ़ार्सी से संस्कृत में नियत कीं: सिक्कों में सुधार किया! नर्बदा से कृष्णा नदी पर्यन्त का सारा दक्षिण-भारत उन्हीं के आधीन था। यह महावीर ४७ वर्ष की अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु की ख़बर सुनकर बादशाह ने कहा "वह एक प्रधान सेनापति था। जिस समय मैंने प्राचीन राज्यों को नष्ट करने की चेष्टा की, उस समय सिर्फ़ इसी व्यक्ति ने एक नया राज्य स्थापन कर लिया। मेरी सेना ने १८ वर्ष युद्ध किया, तो भी उसके राज्य की कोई हानि नहीं हुई।

अब राजपूतों का भी विवरण सुनिए। जहाँगीर और उदयपुर के राणा के बीच यह सन्धि हुई थी कि वह स्वयं तथा उसके उत्तराधिकारी राणा होने पर शाही दर्बार में उपस्थित न होंगे। प्रत्येक राजा सिंहासनारूढ़ होने पर शाही फ़र्मान राजधानी से बाहर जाकर स्वीकार करेगा। तब से मुग़ल-दर्बार में मेवाड़ के युवराज हाज़िर होते रहे थे।

अमरसिंह की मृत्यु पर राणा कर्ण गद्दी पर बैठे। उन्होंने सन्धि की शान्ति से लाभ उठाकर देश को हरा-भरा कर दिया। कर्ण के छोटे भाई का मुग़ल-दर्बार में इतना पद बढ़ा कि वे मुग़ल-सेना के प्रधान सेनापति बनाए गये और सुल्तान खुर्रम के मन्त्री बनाए गये थे। उन्हें राजा का पद दिया गया था।

८ वर्ष राज्य करके राणा कर्ण स्वर्गवासी हुए। उस समय खुर्रम मेवाड़ में शरणागत थे। राणा ने उन्हें सम्राट् स्वीकार किया और शाहजहाँ की पदवी दी। इस अवसर पर जगतसिंह से शाहजहाँ ने पगड़ी बदलकर भाईचारा स्वीकार किया था। उस मैत्री को शाहजहाँ ने जन्म-भर निबाहा। जगतसिंह ने २६ वर्ष मेवाड़ पर राज्य किया, और उसने मुग़ल आक्रमणों के सब चिन्हों को मिटा देने की चेष्टा की। वह बहुत उदार, मिलनसार और सभ्य व्यक्ति था। इसने मेवाड़ को खूब सुन्दर-समृद्ध बना दिया।

इनकी मृत्यु पर राजसिंह गद्दी पर बैठे। ये सिंह के समान पराक्रमी योद्धा थे। औरङ्गज़ेब के पिता-विद्रोह के युद्ध में इन्होंने बादशाह का पक्ष लिया था। परन्तु भावीवश औरङ्गज़ेब ही बादशाह हुआ।

हम कह चुके हैं कि अकबर से लेकर शाहजहाँ तक मुग़ल-बादशाहों ने इन हिन्दू राजाओं से उदार नीति बर्ती थी। पर औरङ्गज़ेब ने वह नीति त्याग दी। अकबर ने राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके प्रेम और विश्वास एवं ऐक्य की जड़ जमाली थी, तथा राजपूतों को मित्र एवं सम्बन्धी बना लिया था, और उन्होंने पीढ़ियों तक मुग़ल-साम्राज्य के विस्तार करने में अपने जीवन व्यतीत किए। पर औरङ्गज़ेब ने उस मुग़ल-साम्राज्य की जड़ें हिलादीं --स्तम्भों को उखाड़-उखाड़कर फेंकना शुरू कर दिया।

जिस समय औरङ्गज़ेब गद्दी पर बैठा, राजपूताने में एक-से-एक बढ़-कर शक्तिशाली पुरुष उत्पन्न होगये। अम्बराधिपति जयसिंह, मारवाड़-धीश्वर जसवन्तसिंह, बूँदी और कोटा के हाड़ा सरदार, बीकानेर के राठौर ओरछा और दतिया के बुन्देले, एक से एक बढ़कर शूर थे—जो सभी औरंगज़ेब से अप्रसन्न होगये।

औरङ्गज़ेब के पूर्वजों ने तीन पीढ़ी तक जिस भाँति प्रजा का शासन किया—तथा देश में कला-कौशल, साहित्य, विज्ञान, और व्यापार की वृद्धि की, वह सब औरङ्गज़ेब के जहाद के अत्याचार प्रारम्भ होते ही छिन्न-भिन्न होगई। फलत: राज्य-कोष ख़ाली होने लगा, और तीन पीढ़ी का संचित ख़ज़ाना समाप्त होगया। तब बादशाह ने 'ज़जिया'-कर लगाया, जो

नितान्त अन्यायमूलक एवं क्रूर था—इससे हिन्दुओं के कलेजे में आग भभक उठी।

जिस समय राजसिंह गद्दी पर बैठे, तो उन्होंने तिलकोत्सव किया। तब तक शाहजहाँ गद्दी पर था। इस अवसर पर यह रस्म होती थी कि शत्रु का कोई इलाक़ा छीन लिया जाय। राजसिंह ने अजमेर के सीमा-प्रान्त का मालपुरा लूट लिया। जब बादशाह के पास शिकायत गई तो उसने कहा—"यह मेरे भतीजे की केवल मूर्खता है।"

पर औरङ्गज़ेब ने गद्दी पर बैठने पर रूपनगर की राजकुमारी का डोला जबरन् मँगवाया। रूपकुमारी ने राजसिंह की शरण चाही। उन्हें यह सूचना जंगल में शिकार खेलते समय मिली, जबकि उनके साथ सिर्फ़ १०० राजपूत थे। अधिक समय नहीं था। वे उन्हीं सौ वीरों को लेकर चल दिये और मार्ग से ४००० मुग़लों से बलपूर्वक कुमारी का डोला छीन लाये।

इससे राजसिंह के शौर्य का शोर मच गया, और औरङ्गज़ेब क्रोध से थरथर काँपने लगा। उधर राजसिंह भी भावी महा-युद्ध की तैयारी करने लगे। पर औरङ्ग़ज़ेब ने राजसिंह को तब तक छेड़ने का साहस न किया, जब तक जयसिंह और जसवन्तसिंह जीवित रहे। उधर वह शिवाजी द्वारा भी बहुत तंग किया जा रहा था। अन्त में उसने इन दोनों वीरों को विष देकर मरवा डाला। साथ ही 'ज़जिया'-कर लगा दिया। फिर जसवन्तसिंह की विधवा और पुत्र को क़ैद करना चाहा। बड़े पुत्र को भी विष देकर मरवा डाला। इस प्रकार तमाम राजपूताना क्षुब्ध होगया, और वीर राठौर दुर्गादास ने राजसिंह से मिलकर इस दुर्दान्त मुग़ल के नाश का उपाय ठीक किया।

राणा ने एक प्रभावशाली पत्र औरङ्ग़ज़ेब को ज़जिया के सम्बन्ध में लिखा, जो इस प्रकार था—

"सर्व प्रकार की स्तुति, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की उचित है, और आपकी महिमा भी स्तुति करने योग्य है। आपकी उदारता और समदृष्टि चन्द्र और सूर्य की भाँति चमकती है। यद्यपि मैंने आजकल अपने को

आपके साथ से अलग कर लिया है, किन्तु आपकी जो सेवा हो सके, उसको मैं सदा चित्त से करने को उद्यत हूँ। मेरी सदा इच्छा रहती है कि हिन्दुस्तान के बादशाह, रईस, मिर्ज़ा-राजे और राय लोग, तथा ईरान, तूरान और शाम के सरदार लोग, और सातों बादशाहत के निवासी और वे सब यात्री, जो जल या थल के मार्ग से यात्रा करते हैं, मेरी अभेद-बुद्धि सेवा से उपकार लाभ करें।

"यह इच्छा मेरी ऐसी उत्तम है, कि जिसमें आप कोई दोष नहीं देख सकते। मेरे पूर्वजों ने पूर्व काल में जो-कुछ आपकी सेवा की है, उस पर ध्यान करके मुझको अति उचित जान पड़ता है कि मैं नीचे लिखी हुई बातों पर आपका ध्यान दिलाऊँ; जिसमें राजा और प्रजा की भलाई है। मुझको यह समाचार मिला है कि आपने मुझ शुभ-चिन्तक के विरुद्ध एक सेना नियत की है, और मैंने यह भी सुना है कि ऐसी सेनाओं के नियत होने से आपका ख़ज़ाना, जो ख़ाली होगया है, उसके पूरा करने के नाना प्रकार के कर भी लगाये हैं।

"आपके परदादा मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर ने, जिनका सिंहासन अब स्वर्ग में है, इस बड़े राज्य को बावन वर्ष तक ऐसी सावधानी और उत्तमता से चलाया कि सब जाति के लोगों ने उससे सुख और आनन्द उठाया। क्या ईसाई, क्या मूसाई, क्या दाऊदी, क्या मुसलमान, क्या ब्राह्मण, क्या नास्तिक—सब ने उनके राज्य में समान भाग से राज्य का न्याय और राज्य का सुख-भोग किया, और यही कारण है कि सब लोगों ने एक-मुँह होकर उनको जगत्-गुरु की पदवी दी थी। शाहन्शाह मुहम्मद नूरुद्दीन जहाँगीर ने, जो अब नन्दन-वन में विहार करते हैं—इसी प्रकार २२ वर्ष राज्य किया, और अपनी रक्षा की छाया से सब प्रजा को शीतल रखा, तथा अपने आश्रित या सीमास्थित राजन्य-वर्ग को भी प्रसन्न रखा, अपने बाहु-बल से शत्रुओं का दमन किया। वैसे ही उनके शाहज़ादे और आपके बड़े परम प्रतापी पिता शाहजहाँ ने ३२ वर्ष राज्य करके अपना शुभ नाम अपने शुद्ध गुणों से विख्यात किया।

"आपके पूर्वज पुरुषों की यह कीर्ति है। उनके विचार ऐसे उदार और महान् थे कि जहाँ उन्होंने चरण रक्खा, वहाँ विजय-लक्ष्मी को हाथ जोड़े सामने पाया और बहुत-से देश और द्रव्य को अपने अधिकार में किया। किन्तु आपके राज्य में वे देश अब अधिकार से बाहर होते जाते हैं, और जो लक्षण दिखलाई पड़ते हैं, उनसे निश्चय होता है कि दिन-दिन राज्य का क्षय ही होगा। आपकी प्रजा अत्याचार से अति दुखी है, और सब दुर्बल पड़ गये हैं, चारों ओर से बस्तियों के उजड़ पड़ जाने की और अनेक प्रकार की दुख की ही बातें सुनने में आती हैं। राजमहल में दरिद्रता छाई हुई है। जब बादशाह और शाहज़ादों के देश यह दशा है, तब और रईसों की कौन कहे? शूरता तो केवल जिह्वा में आ रही है। व्यापारी लोग चारों ओर रोते हैं, मुसलमान अव्यवस्थित हो रहे हैं, हिन्दू महादुखी हैं,—यहाँ तक कि प्रजा को सन्ध्या-काल के समय खाने को भी नहीं मिलता और दिन को सब दुख के मारे अपना सिर पीटा करते हैं।

"ऐसे बादशाह का राज्य कै दिन स्थिर रह सकता है—जिसने भारी कर से अपनी प्रजा की ऐसी दुर्दशा कर डाली है? पूर्व से पश्चिम तक सब लोग यही कहते हैं कि हिन्दुस्तान का बादशाह हिन्दुओं का ऐसा द्वेषी है कि वह रंक ब्राह्मण से लेकर योगी, बैरागी और सन्यासी तक पर कर लगाता है, और अपने उत्तम तैमूरी वंश को, इन धन-हीन और निरुपद्रवी, उदासीन लोगों को दुख देकर कलंकित करता है। अगर आपको उस किताब पर विश्वास है, जिसको आप ईश्वर का वाक्य कहते हैं, तो उसमें देखिये कि ईश्वर को मनुष्य-मात्र का स्वामी लिखा है, केवल मुसलमानों का नहीं। उसके सामने हिन्दू और मुसलमान दोनों समान हैं। मनुष्य-मात्र को उसी ने जीवन-दान दिया है। नाना रंग के मनुष्य अपनी इच्छा से पैदा किये हैं। आपकी मसज़िदों में भी उसी का नाम लेकर चिल्लाते हैं, और हिन्दुओं के यहाँ देव-मन्दिरों में भी उसी के निमित्त घंटा बजाते हैं। किन्तु सब उसी एक को स्मरण करते हैं। इससे किसी जाति को दुख देना परमेश्वर को अप्रसन्न करना है। हम लोग जब कोई चित्र देखते हैं, तो उसके चितेरे को स्मरण

करते हैं। यदि हम उस चित्र को बिगाड़ें, जो चितेरे की अप्रसन्नता होगी, और कवि की उक्ति के अनुसार जब कोई फूल सूँघते हैं, तो उसके बनाने-वाले को ध्यान करते हैं, उसको बिगाड़ना उचित नहीं समझते।

"सारांश यह कि हिन्दुओं पर आपने जो कर लगाना चाहा है, वह न्याय के परम विरुद्ध है—राज्य के प्रबन्ध को नाश करनेवाला है। ऐसा करना अच्छे राज्याधीश्वरों का लक्षण नहीं है, और बल को शिथिल करने-वाला है, हिन्दुस्तान की नीति-रीति के अति विरुद्ध है। यदि आपको अपने मत का ऐसा आग्रह हो कि आप इस बात से बाज़ न आयेंगे, तो पहिले रामसिंह से, जो हिन्दुओं में मुख्य हैं, यह कर लीजिये और फिर अपने इस शुभचिन्तक को बुलाइये। किन्तु यों प्रजा-पीड़न करना वीर-धर्म और उदारचित्त के विरुद्ध है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आपके मंत्रियों ने आपको ऐसे हानिकर विषय में कोई उत्तम मंत्र नहीं दिया।"

टॉड राजस्थान,

४४७ – ४४८, प्रथम खण्ड

पत्र पढ़कर बादशाह तिलमिला उठा। उसने राजपूत की इस दुर्धर्ष शक्ति को कुचलने की भारी तैयारी प्रारम्भ कर दी। बंगाल से अपने पुत्र अकबर को, काबुल से अज़ीम को, दक्षिण से दिलेरख़ाँ को बुलवाया और समस्त शाही सैन्य लेकर उसने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी।

यह सुन, राणा अपने समस्त योद्धाओं और नागरिकों को लेकर दुर्गम पर्वत-उपत्यकाओं में चले गये। देश-भर उजाड़ कर दिया गया। औरङ्गज़ेब चित्तौर, मङ्गलगढ़, मन्दसौर, जीरन और अन्य क़िलों को अनायास ही अधि-कृत करता हुआ, बढ़ा चला गया।

राणा ने अपनी सेना को तीन भागों में बाँटा। एक भाग का अधि-पति राणा का ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह अरावली की दूसरी चोटी पर स्थित किया गया, जिससे वह दोनों ओर से आनेवाले शत्रुओं की ख़बर रक्खे। राजकुमार भीम पश्चिम की ओर नियुक्त किया गया, जिससे वह गुजरात से आनेवाले शत्रु को रोके। राणा स्वयं नाइन की घाटी पर जाकर बैठे,

और इस ताक में लगे कि शत्रु पहाड़ों में घुसें तो उनके लौटने का मार्ग रोक दिया जाय।

औरङ्गज़ेब ने अपने पुत्र अकबर को ५० हज़ार सेना देकर आगे बढ़ने की आज्ञा दी। उसे मार्ग में एक भी मनुष्य न मिला। उसने बाग़, महल, भवन, वाटिका, तालाब—सब देखे, पर मनुष्य का पता न था। अतः उसने वहाँ डेरे डाल दिये। सैनिक, शत्रु के इस प्रकार भयभीत होकर भाग जाने की खुशी में मस्त होकर जश्न मनाने लगे।

अकस्मात् राजसिंह उस पर आ पड़े। उस समय कोई खा रहा था, कोई नमाज़ पढ़ रहा था, कोई ताश-शतरंज में मस्त था। सब गाजर-मूली की तरह काट डाले गये। जो बचे, भाग निकले। उनका सब सामान लूट लिया गया और छावनी फूँक दी गई। उनके रथ, घोड़े, हथियार क़ब्ज़े में कर लिये गये।

अकबर ने लौटने पर देखा कि लौटने की राह बन्द है। अब बादशाह से मिल जाना सम्भव नहीं। बीच में राजसिंह के सिपाही नंगी तलवारें लिये जमा हैं।

अब अकबर ने गोलकुण्डा के रास्ते मारवाड़ के मैदानों की ओर लौटना चाहा। पर उधर भीलों ने बाणों से उनकी सेना को छेद डाला। इधर भी जान संकट में समझ, वह लौटकर दूसरी ओर को फिरा, तब कुमार जयसिंह ने ऐसा बन्द लगाया कि एक भी मुग़ल का वहाँ से बाहर आना असम्भव होगया। निदान, अकबर ने जयसिंह से कहला भेजा, कि यदि हमें लौट जाने दिया जाय, तो हम युद्ध बन्द कर देंगे। इस पर विश्वास कर, जयसिंह ने उन्हें पथ-प्रदर्शक देकर चित्तौर की प्राचीर तक पहुँचा दिया।

अब दिलेरखाँ की दुर्गति का हाल सुनिये! वह अपनी सेना लेकर मारवाड़ की ओर देसोरी घाटी में होकर पर्वत-माला में घुसा। उसे भी किसी ने नहीं रोका, वह सेना घुसी ही चली गई। जब वे घूम-घुमौवल मार्ग में भटककर एक चौड़े मैदान में पहुँचे, तो विक्रम सोलंकी और गोपीनाथ राठौर उन पर टूट पड़े, और सँभलने से प्रथम ही उन्हें काट

डाला। यह सेना बिलकुल नष्ट करदी गई, और उसका सब असबाब लूट लिया गया।

औरङ्गज़ेब अपने पुत्र अज़ीम को साथ लिये, दीवारी में डेरे डाले पड़ा, इन युद्धों का परिणाम देख रहा था। राणा अकस्मात् ही उस पर टूट पड़े। राठौरों पर इस बादशाह ने बहुत जुल्म किये थे। उनकी तलवारें ख़ून की प्यासी हो रही थीं। दुर्गादास और राजसिंह ने आज बढ़-बढ़कर बदले लिये. सम्राट् की भारी-भारी तोपें, जिनके गोलन्दाज़ सुयोग्य फ्रान्सीसी थे, धरी रह गयीं। राजपूतों ने मुग़लों को बर्छी पर धर लिया। अन्त में बादशाह हार-कर भाग गया। उसका बहुत-सा सामान लूट लिया गया। उसका झण्डा, हाथी और बहुत सामान राजपूतों के हाथ लगे।

उधर भीम ख़ाली नहीं बैठा था। उसने गुजरात को भेदकर ईडर पर अधिकार कर लिया, और मुग़ल क़िलेदारों को मार भगाया। फिर उसने पाटन, सिद्धपुर-आदि नगरों को लूटा और सूरत की ओर बढ़ा। दूसरी ओर राणा के मंत्री दयालशाह ने मालवे को लूट लिया।

सारंगपुर, देवास, सारौन, माँडू, उज्जैन और चन्देरी लूट लिये गये। तमाम क़िले क़ब्ज़े में कर लिये—फौज़ों को काट डाला, मालवा उजाड़ होगया! वहाँ की अटूट सम्पत्ति लूटकर राणा के चरणों में रखदी गई।

बादशाह अकबर और अज़ीम को १२ हज़ार सेना-सहित चित्तौर अधिकार करने को छोड़ गया था। उस पर जयसिंह और दयालशाह ने आक्रमण कर, उसे रणथम्भोर तक खदेड़ दिया। इस प्रकार प्रकाण्ड मुग़ल-सेना सर्वथा मेवाड़ से निकाल बाहर कर दी गई।

अब राणा मारवाड़ की तरफ़ झुके। वहाँ जसवन्त की रानी बड़े हौसले से शाही सेना का मुक़ाबला कर रही थी, जो नगर दख़ल करने को आई थी! राणा ने गनौरा-नामक स्थान पर मुग़लों से लोहा लिया। इस युद्ध में राजपूतों ने एक भयानक हास्य मुग़लों से किया—५०० ऊँट मुग़लों से छीन लिये। उन पर बहुत-से गद्दे-गूदड़ लपेट, तेल से तर कर, उन पर मशालें जलाकर उन्हें मुग़ल छावनी में हाँक दिया। पीछे-पीछे राठौर चले।

छावनी में उन जलते हुए ऊँटों ने वह आफ़त मचाई कि हाहाकार मच गया, और राजपूतों ने उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

इनके बाद बीकानेर के राजा के उद्योग से राणा और राजसिंह में सन्धि-चर्चा चली। पर, इसी बीच में राजसिंह की मृत्यु होगई, और फिर बादशाह और जयसिंह के बीच, जो राणा हुए, सन्धि हुई। इस सन्धि के बाद औरङ्गज़ेब को राजपूताने की ओर देखने का मृत्यु तक साहस नहीं हुआ।

अब तीसरी शक्ति, जो मुग़लों के विरुद्ध खड़ी हुई, सिक्खों की थी। यह प्रथम एक धार्मिक समुदाय था—जिसका कार्य हिन्दु-मुस्लिम-ऐक्य उत्पन्न करने का था। इसका जन्म एक शक्तिशाली साधु पुरुष नानक ने किया। इस धर्म का मुख्य उद्देश्य भिन्न-भिन्न जाति और धर्म के लोगों को एक होकर रहने का था। उसने सब ढकोसलों और भेद-भावों की तीव्र निन्दा की। अद्वितीय ईश्वर की उपासना ही उसका मुख्य उद्देश्य था।

नानक के बाद कई गुरु गद्दी पर बैठे, और ये सब संयमित-चित्त योगी की भाँति रहते थे। धीरे-धीरे इन पर मुसलमान बादशाहों ने अत्याचार आरम्भ किये। वे, वध-स्थल में पशु की भाँति ले जाये जाते और उनका वध लोहे के पींजरे में बन्द कर, निर्दयता से किया जाता। अर्जुन गुरु को जहाँगीर ने क़ैद किया, और वह आर्त-यातनाओं से कुल्हाड़े से मारा गया। इस घटना के बाद सिख उत्तेजित होगये, और उनका पुत्र हरगोविन्द गद्दी पर बैठते ही मुसलमानों का विरोधी होगया। उसने सिक्खों को हथियार-धारण की शिक्षा दी। वह स्वयं दो तलवारें बाँधता था। जब कोई उससे इसका कारण पूछता तो वह उत्तेजित स्वर में कहता—'एक पिता के बदले के लिये और दूसरी मुग़ल-साम्राज्य को ध्वंस करने के लिये।' इनकी मृत्यु के पीछे उनका पोता हरराम गुरु हुआ। फिर हरकिशन गुरु हुआ। इसके बाद गुरु तेग़बहादुर हुए। यही वह समय था, जब औरङ्गज़ेब के अत्याचारों से भारत कम्पायमान् हो रहा था। उनके पास काश्मीर के कुछ पीड़ित ब्राह्मण भागकर आये और दुहाई दी। तेग़बहादुर

ने गंभीर विचार कर, एक भयानक संकल्प किया, और उन्हें यही पढ़ाकर दिल्ली भेजा। उन्होंने दिल्ली जाकर कहा—'यदि आप तेग़बहादुर को मुसलमान बनालें, तो हम खुशी से मुसलमान हो जावेंगे।' तेग़बहादुर के प्रतिद्वन्दी रामराय ने भी बादशाह को इसके लिये उत्तेजित किया। तब बादशाह ने तेग़बहादुर पर सेना भेजी, और वे बन्दी करके दिल्ली ले आये गये। वहाँ भरे दरबार में बादशाह ने कहा—'कुछ करामात दिखाओ!' गुरु ने कहा—'हमारा धर्म सर्व-शक्तिमान् ईश्वर की उपासना करना है। परन्तु तुम्हें हम करामात दिखाने ही आये हैं।' इतना कह, उन्होंने कुछ शब्द काग़ज़ पर लिखकर गले में तावीज़ की भाँति बाँध लिये, और कहा—कि, अब मेरी गरदन तलवार से नहीं काटी जा सकती।

बादशाह ने डरते-डरते जल्लाद को वार करने का संकेत किया। तलवार पड़ते ही उनका सिर कटकर धरती पर लुढ़क गया। यह देख, बादशाह विमूढ़ हो गया। काग़ज़ में लिखा था—"सिर दिया, सार नहीं।"

यह निर्दय घटना तूफ़ान की भाँति फैल गई। तेग़बहादुर चलती बार अपने पुत्र गोविन्दसिंह को गद्दी पर बैठा आये थे—जिसकी अवस्था १५ वर्ष की थी। उन्होंने प्राण देने का निश्चय किया था। वे जानते थे कि इसी से देश में आग लग जायगी। इस तेजस्वी बालक ने नंगी तलवार लेकर हुङ्कार भरी और सिक्खों का संगठन शुरू किया। कई छोटे-छोटे युद्ध मुग़लों के साथ हुए, और सब में उनकी विजय हुई। अन्त में बादशाह ने प्रबल सेना भेजी, जिसमें पराजित होकर गोविन्दसिंह भाग गए। उनके दो पुत्र पकड़े गये और जीते ही दीवार में चुने गये। बादशाह ने गुरु को दिल्ली बुला भेजा। पर उसने कहला भेजा—अभी ख़ालसा बादशाह से गुरु का बदला लेंगे। अन्त में वे बादशाह से मिलने को राज़ी भी होगये, पर इस मुलाक़ात से प्रथम ही बादशाह की मृत्यु हो गई। उनके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने गुरु की बहुत ख़ातिर की। पर उनकी भी अचानक एक पठान के आक्रमण से मृत्यु होगई। यह घटना नर्बदा-तीर के नादर-नामक स्थान पर हुई। उस समय गुरु की आयु ४८ वर्ष की थी।

इसके बाद सिक्ख-समुदाय एक लोह-समुदाय बन गया। एक बार गोविन्दसिंह ने बादशाह को लिखा था—खबरदार रहो! तुम हिन्दू को मुसलमान करते हो, हम मुसलमान को हिन्दू करते हैं। तुम अपने को बेज़रर समझते हो, पर मैं कबूतर से बाज़ का शिकार कराऊँ तो गुरु!

इस गुरु के बाद उनका धर्म-ग्रन्थ ही गुरु के स्थान पर पूज्य हुआ। सिक्खों ने रामनगर और चिलियाँवाला में ऐतिहासिक अमर कारनामे किये। बन्दा बैरागी ने बादशाही को हिला डाला, और अन्त में सिख-महाराज रणजीतसिंह ने जन्म लेकर काबुल तक को थर्रा दिया।

इस बात पर विचार करना उचित है कि इस भयानक व्यक्ति ने ऐसे अत्याचार और प्रजा-पीड़न करने पर भी किस भाँति ५० वर्ष तक राज्य किया, और समस्त कठिनाइयों को कैसे पार किया! यह व्यक्ति वास्तव में बुद्धिमान और तीखा, घमण्डी, धूर्त और मुस्तैद था। किसी को मुँह न लगाता था। एक बार का ज़िक्र है कि इसके किसी उमरा ने खुशामद से कहा—"हुजूर काम में इस क़दर मसरूफ़ हैं कि यह अन्देशा है कि इससे सेहते-जिस्मानी बल्कि दिमाग़ी कुव्वत में कुछ फ़र्क़ आ जाय, और ताक़त को कुछ नुक़सान पहुँचे।'

यह सुनकर बादशाह ने उस बुद्धिमान उपदेशक की ओर से मुँह फेर लिया—मानो उसकी बात सुनी ही नहीं। फिर कुछ ठहरकर एक और बहुत बड़े अमीर की ओर, जो बड़ा ही विद्वान् और बुद्धिमान था, देखकर कहा—"आप तमाम अहले-इल्म इस बात में मुत्तफ़िक़ुलराय हैं कि मुश्किल और ख़ौफ़ के ज़माने में जान जोखों में पड़ जाना और ज़रूरत के वक्त़ रियाआ की बेहतरी के लिये, जिसे खुदा ने उसे सुपुर्द किया है, तलवार पकड़कर मैदाने-जंग में जान देना बादशाह का फ़र्ज़ है। मगर इसके बरअक्स यह नेक और बातमीज़ शख़्स [!] है! यह चाहता है कि रिआया के आराम व आसाइश के लिये ज़रा भी तकलीफ़ न उठाई जाय। और उनकी [रियाआ की] रिफ़ाह की तदबीरों के सोचने में एक रात या एक दिन भी बे-आराम रहे-और यह मुद्दआ हासिल होजाय। इसकी राय

है कि मैं सिर्फ़ अपनी तन्दुरुस्ती को मुक़द्दम जानूँ, और ज़्यादातर ऐशो-इशरत और आराम व आसाइश के उमूर में मसरूफ़ रहूँ; जिसका नतीजा यह हो सकता है कि मैं इस वसीह सल्तनत के कामों को किसी वज़ीर के भरोसे छोड़ बैठूँ। मगर मालूम होता है कि इसने इस अमर पर ग़ौर नहीं किया कि जिस हालत में मुझे खुदा ने बादशाही ख़ानदान में पैदा कर, तख़्त पर बिठाया है, तो दुनियाँ में अपनी ज़ाती फ़ायदे के लिये नहीं भेजा, बल्कि औरों को आराम पहुँचाने और मिहनत करने के लिये। मेरा यह काम नहीं है कि अपनी ही आसाइश की फ़िक्र करूँ। अलबत्ता रिआया के फ़ायदे की ग़रज़ से जिस क़दर आराम लेना ज़रूरी है, उसका मुज़ायक़ा नहीं। बजुज़ इसके कि इन्साफ़ और अदालत से वैसा ही करना साबित हो या सल्तनत के क़ायम रखने और मुल्क की हिफ़ाज़त के लिये यह बात ज़रूरी हो। हर सूरत में रिआया की आसाइश और तरक्क़ी ही एक ऐसी चीज़ है, जिसकी फ़िक्र मुझे होनी चाहिये। मगर यह शख़्स इस बात की तह को नहीं पहुँचा कि उस आराम से, जो यह मेरे लिये तजवीज़ करता है, क्या-क्या कहावतें पैदा होंगी, और यह भी इसे नहीं मालूम कि दूसरों के हाथ में हुकूमत देना कैसी बुरी बात है। शेख़ सादी ने जो यह कहा कि बादशाहों को चाहिये कि नवाब खुद कारोबार-सल्तनत का बोझ अपने ऊपर ले—नहीं तो बेहतर है कि बादशाह कहलाना छोड़ दे, तो क्या बुज़ुर्ग का यह क़ौल ग़लत है? पस, आप अपने इस दोस्त से कह दीजिए कि अगर यह हमारी खुशी और हमसे आफ़रीं हासिल करना चाहता है, तो जो काम इसके सुपुर्द है, उसे ठीक तौर से करता रहे, और ख़बरदार यह सलाह जो बादशाहों के सुनने के लायक़ नहीं है, कभी न दे! अफ़सोस, इन्सान आराम-तलब है, और ऐसे ख़यालात से बचना चाहता है, जो दूसरों की तरक्क़ी की फ़िक्र में आदमी को घुला डालते हैं। मगर हमको ऐसे फ़िज़ूल सलाहकारों की हाजत नहीं है। ऐशो-आराम की सलाह तो हमारी बेगमें भी दे सकती हैं।"

एक बार औरङ्गज़ेब के गुरु मुल्ला सालह ने, जिसने बचपन में उसे

शिक्षा दी थी—यह सोचा कि अब मेरा शागिर्द बादशाह हुआ है, कुछ-न-कुछ जागीर देगा, और वह अमीरों की श्रेणी में रख लिया जायगा। उसने बड़ी-बड़ी शिफ़ारशें पहुँचाई और सभी दरबारियों तथा अमीर-उमरावों को अपने पक्ष में कर लिया। यहाँ तक कि बेगम रौशनआरा तक को पक्षपाती बना लिया, और उसने कई बार बादशाह को याद दिलाया कि आपका माननीय विद्वान् उस्ताद प्रतिष्ठा किये जाने के योग्य है। पर बादशाहने तीन महीने तक तो उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। अन्तमें उसने उसे एक दिन दरबारे-ख़ास में हाज़िर होने का हुक्म दिया। वहाँ कुछ चुने हुए अमीर हाज़िर थे। वहाँ बादशाह ने कहा—

"मुल्लाजी, बराए मेहरबानी यह तो फ़रमाइये कि आप हमारे से चाहते क्या हैं। क्या आपको यह दावा है कि हम आपको दरबार के अव्वल दर्जे के उमरा में दाख़िल करलें? अगर आपकी यह ख़्वाहिश है, तो पहिले इस बात का हिसाब करना ज़रूरी है कि आप किसी निशाने-इज़्ज़त के मुस्तहक़ अभी हैं या नहीं। हम इससे इन्कार नहीं करते कि अगर आप हमारी तालीम व तरबियत ठीक तौर पर करते, तो ज़रूर ऐसी ही इज़्ज़त के मुस्तहक़ होते। आप हमको किसी तरबियतयाफ़्ता नौजवान शख़्स का नाम बतलाइये, कि उसकी तालीम व तरबियत की बाबत शुक्रगुज़ारी का ज़्यादा मुस्तहक़ उसका उस्ताद है या उसका बाप? फ़रमाइये तो सही कि आपकी तालीम से कौन-सी वाक़फ़ियत मुझे हासिल हुई है। क्योंकि आपने तो मुझको यह बतलाया था कि तमाम फ़िरंगिस्तान (यूरोप) एक छोटे जज़ीरे से ज़्यादा नहीं, जिसमें सबसे बड़ा बादशाह अव्वलन् शाह पुर्तगाल था, फिर बादशाह हॉलैण्ड हुआ, और इसके बाद बादशाह इँगलिस्तान। फ़िरंगिस्तान के और बादशाहों—मसलन्, फ्रान्स और इँग्लैण्ड की बाबत आप यह बताया करते थे कि यह लोग हमारे यहाँ के छोटे-छोटे राजाओं के मुआफ़िक़ हैं, और यह कि हिन्दुस्तान के बादशाहों में सिर्फ़ हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ हुए हैं, जिनके आगे तमाम दुनियाँ के बादशाहों की शान व शौकत मद्धिम है। और यह ईरान, उजबक, काशगर, तातार, स्याम, चीन और माचीन के

बादशाह सलातीन-हिन्द के नाम से काँपते हैं। सुबहान अल्लाह! आपकी इस जुग़राफ़ियादानी और कमाले-इल्म-तवारीख़ का क्या कहना है! क्या मुझ-जैसे शख़्स के उस्ताद को लाज़िम न था कि वह दुनियाँ की हर-एक क़ौम के हालात से मुझे मुत्तिला करता! मसलन् उनकी कुव्वत-जंगी से, उनके वसायल-आमदनी से, और तर्ज़े-जंग से, उनके रस्मो-रिवाज, मज़ाहिब और तर्ज़े-हुक्मरानी और उन ख़ास-ख़ास उमूर व तफ़सील से जुदा-जुदा मुझको आगाह करना, जिनको वे अपने हक़ में ज़्यादा मुफ़ीद समझते हैं। मेरे-जैसे शख़्स के उस्ताद को लाज़िम था कि वह मुझको इल्म-तारीख़ ऐसी सिलसिलेवार पढ़ाता कि मैं हर-एक सल्तनत की जड़-बुनियाद, असबाब-तरक्क़ी व तनज़्ज़ुली और उनके साथ उन वाक़यात और उन ग़लतियों से वाक़िफ़ हो जाता, जिनके बायस उनमें ऐसे इन्क़लाबात होते रहे हैं। बनिस्बत इसके कि आप मुझे तमाम दुनियाँ की कामिल तारीख़ से आगाह करने, आपने तो हमारे उन मशहूर व मारूफ़ बुज़ुर्गों के नाम भी अच्छी तरह नहीं बतलाये, जो हमारी सल्तनत के बानी थे। उनकी सवाने उम्री, ख़ास-तौर की लियाक़त, जिनके बाइस वह बड़े-बड़े फ़तूहात करने के क़ाबिल हुए और उन फ़तूहात से पहले जो वाक़यात ज़हूर में आये, उनसे भी मुझे आपने नावाक़िफ़ रक्खा। बावजूदकि बादशाह को अपनी हमसाया क़ौमों की ज़बानों से वाक़िफ़ होना ज़रूरी है, आपने मुझको अरबी लिखना-पढ़ना सिखाया। इस ज़बान के सीखने में मेरी उम्र का एक बड़ा हिस्सा ज़ाया हुआ। मगर, आपने यह समझा कि एक ऐसी ज़बान सिखा-कर जो १०-१२ बरस मिहनत किये बिना हासिल नहीं हो सकती, गोया मुझ पर बड़ा भारी अहसान किया। आपको यह सोचना था कि एक शाहज़ादे को ज़्यादातर किन-किन इल्मों के पढ़ाने की ज़रूरत है? मगर आपने मुझे ऐसे फ़नों की तालीम दी, जो क़ाज़ियों के लिये मुफ़ीद हैं, और मेरी जवानी के दिन बे-फ़ायदा बच्चों की-सी पढ़ाई में बर्बाद किये।

"क्या आपको मालूम न था कि लड़कपन में, जब कि क़ूवत-हाफ़िज़ा मज़बूत होती है, हज़ारों माक़ूल बातें ज़हन-नशीन हो सकती हैं? और

आसानी के साथ इन्सान ऐसी मुफ़ीद तालीम हासिल कर सकता है, जिससे दिल में निहायत आला ख़यालात पैदा होते हैं, और जिनसे मैं बड़े-बड़े नुमायाँ कामों के करने के क़ाबिल हो जाता? क्या नमाज़ सिर्फ़ अरबी ही के ज़रिये अदा हो सकती है? और बड़ी-बड़ी इल्मो हुनर की बातों का जानना क्या अरबी ही के ज़रिये हो सकता है? आपने हमारे वालिद्-मज़ीद को तो यह समझा दिया था कि हम इसे फ़िलॉसफ़ी पढ़ाते हैं, और मुझे ख़ूब याद है कि बरसों तक ऐसी बेहूदा बातों से आप मेरा दिमाग़ परेशान करते रहे, जो पहिले तो जल्दी समझ में नहीं आती थीं, और समझ में आ जाने पर जल्द भूल जाती थीं; और ऐसी थीं, जिनकी दुनियावी मुआमलात में कुछ ज़रूरत नहीं। आपने उम्र के कई साल ऐसी-ही तालीम में ख़राब कराये, जो आपको पसन्द थी। मगर जब मैं आपकी तालीम से अलहदा हुआ, तो किसी बड़े इल्म के जानने का दावा नहीं कर सकता था। बजुज़ इसके कि ऐसी चन्द अजीब व ग़रीब बातों से वाक़िफ़ था, जो एक अच्छी समझ के नौजवान शख़्स की हिम्मत को पस्त, दिमाग़ को ख़राब और तबियत को हैरान कर देती हैं। अगर आप मुझे वे बातें सिखाते, जिनसे ज़ेहन इस क़ाबिल हो जाता कि बग़ैर सही दलील के किसी बात को तसलीम नहीं करता, या आप मुझको वह सबक़ पढ़ाते, जिससे इन्सान की तबियत ऐसी हो जाती है कि दुनियाँ के इन्क़लाबात का उस पर कुछ भी असर नहीं होता, और तरक्क़ी या तनज़्ज़ुली की हालत में वह एक-सा रहता है, या, मुझे क़ुदरती बातों से आगाह करते—तो मैं उससे भी ज़्यादा आपका एहसान मानता—जितना सिकन्दर ने अरस्तू का माना था, और अरस्तू से भी ज़्यादा इनाम आपकी नज़र करता। मुल्लाजी, नाशुक्रगुज़ारी का झूठा इल्ज़ाम ख़्वामख़्वाह मुझ पर न लगाइये! क्या आप यह नहीं जानते थे, कि शाहज़ादों को इतनी बात ज़रूर ही सिखानी चाहिये कि उनको रियाआ के साथ और रिआया को उनके साथ किस तरह का बर्ताव करना चाहिये। और क्या आपको अव्वल ही यह ख्याल कर लेना मुनासिब नहीं था कि मैं किसी वक़्त तख़्तो-ताज की ख़ातिर व अपनी जान बचाने के लिये तलवार पकड़कर अपने

भाइयों से लड़ने पर मजबूर होऊँगा; क्योंकि आप यह ख़ूब जानते हैं कि सल्तनत-हिन्द की औलाद को हमेशा ऐसे मुआमिलात पेश आते रहते हैं। पस, क्या आपने कभी लड़ाई का फ़न या किसी शहर का मुहासरा करना, या फ़ौज की सफ़-आराई का तरीक़ा मुझे सिखाया? यह मेरी ख़ुश-क़िस्मती थी, कि मैंने इन मुआमिलातों में ऐसे लोगों से कुछ सीख लिया, जो आपसे ज़्यादा अक़्लमन्द थे। पस, अपने गाँव को चले जाइये, और अब से कोई न जाने कि आप कौन हैं, और आपका क्या हाल है?"

एक बार औरङ्गज़ेब ने वृद्ध बादशाह शाहजहाँ को क़ैद में एक पत्र लिखा था। वह पत्र भी सुनने योग्य है। उससे बादशाह की तत्परता, राजनीतिज्ञता और दूरदर्शिता प्रकट होती है। वह पत्र इस प्रकार है:—

'क्या हुज़ूर यह चाहते हैं कि मैं सख़्ती के साथ पुरानी रस्मों का पाबन्द रहूँ, और जो कोई नौकर-चाकर मर जाय, उसकी जायदाद ज़ब्त करलूँ? शाहाने-मुग़लिया का यह दस्तूर रहा है कि अपने किसी अमीर या दौलतमन्द महाजन के मरने के बाद, बल्कि बाज़-औक़ात तो दम निकल जाने से पहले, उसके सब माल-असबाब का पता लगाते थे, और जब तक उसके नौकर-चाकर कुल माल व दौलत, बल्कि अदना-अदना ज़ेवर भी, न बतलायें, तब तक उन पर मार-पीट होती और वे क़ैद किये जाते थे। गोकि, यह दस्तूर बेशक फ़ायदेमन्द है, मगर जो नाइन्साफ़ी और बेरहमी इसमें है, उससे कौन इन्कार कर सकता है? अगर हर-एक अमीर नेकनामख़ाँ जैसा मामला करे, या कोई औरत उस महाजन की तरह अपने मालिक की दौलत पोशीदा करले, तो उसका हक़-ब-जानिब है या नहीं? हुज़ूर के ख़ौफ़ से मैं बहुत डरता हूँ, और यह नहीं चाहता कि हुज़ूर मेरे तौरो-तरीक़े की निस्बत ग़लत-फ़हमी फ़रमावें। हुज़ूर फ़रमाते हैं—कि तख़्तनशीनी ने मुझे ख़ुदग़रज़ और मग़रूर बना दिया, लेकिन यह ख़्याल ग़लत हैं। ४० बरस के तजरबे से आप ख़ुद ही ख़्याल फ़रमा सकते हैं कि ताजशाही किस क़दर गिराँदार चीज़ है, और बादशाह जब दरबार से उठता है, तब किस क़दर फ़िक्रें उसके दिल को ग़मग़ीन और दर्दमन्द बनाये रहती हैं। हमारे जद्दे-अमजद जलालुद्दीन

मुहम्मद अकबर ने इस ग़रज़ से, कि उनकी औलाद दानाई, नर्मी और तमीज़ के साथ सल्तनत करे, अपने अहदे-सल्तनत की तारीख़ में अमीर तैमूर का ज़िक्र बतौर नमूना लिखकर अपनी औलाद को उसकी तरफ़ तवज्जह दिलवाई थी। वह तज़किरा यों है। जब तुर्की सुलतान वैजेद गिरफ़्तार होकर अमीर तैमूर के हुज़ूर में लाया गया, और अमीर बहुत ग़ौर के साथ उस मग़रूर कैदी की तरफ़ देखकर हँस दिया, तब वैजेद ने इस हरकत से नाराज़ होकर अमीर से कहा—"तुमको अपनी फ़तहमन्दी पर इस इतराना न चाहिये। दौलत और इज़्ज़त बख़्शना या लेना ख़ुदा के हाथ में है। मुमकिन है कि जिस क़दर तुम आज बातें करते हो, कल मेरी तरह पकड़े जाओ।" अमीर ने जवाब दिया—"दुनियाँ और उसके ज़रो-दौलत की बेएतबारी से मैं ख़ूब वाक़िफ़ हूँ। और ख़ुदा न करे कि मैं किसी मग़लूब दुश्मन की हँसी उड़ाऊँ। मेरी हँसी का सबब यह न था कि तुम्हारा दिल दुखाऊँ, बल्कि, मुझे तुम्हें देखकर अपनी और तुम्हारी बदसूरती के ख़याल ने बेअख़्तियार हँसा दिया। क्योंकि, तुम तो काने हो, और मैं लँगड़ा। मेरे दिल में यह गुज़री कि ताज और तख़्त आख़िर ऐसी क्या चीज़ है, जिसको पाकर बादशाह अपनी हस्ती को भूल जाते हैं। हालाँकि ख़ुदाए-ताला उसको अपने ऐसे बन्दों को अता करता है, जो काने और लँगड़े हों।"

'मालूम होता है कि हुज़ूर यह ख़्याल फ़रमाते हैं कि मेरी मसरूफ़ियत बनिस्बत उन उमूर के, जिनको मैं मुल्कदारी और सल्तनत के अन्दरूनी इन्तज़ाम के लिये निहायत ज़रूरी जानता हूँ, नई फ़तूहात और मुल्कगीरी की जानिब निहायत होनी चाहिये। इस अम्र से मैं हरगिज़ इन्कार नहीं कर सकता कि एक बड़े शाहन्शाह का ओहदा, दौलत और नई-नई फ़तूहात की वजह से मुमताज़ होता है, मगर यह बात क़रीन-इन्साफ़ नहीं कि मुझे काहिल और ख़ामोश बैठे रहने का इल्ज़ाम दिया जावे। क्योंकि बंगाल और दखिन में मेरी फ़ौजों की मसरूफ़ियत को तो हुज़ूर ख़्याल में ला ही नहीं सकते। और मैं हुज़ूर को यह भी याद दिलाता हूँ कि बड़े-से-बड़ा मुल्कगीर भी हमेशा सब से बड़ा बादशाह नहीं हुआ। देखा जाता है कि

कभी-कभी दुनियाँ के अक्सर बादशाह बिलकुल वहशी और नातरबियत-याफ़्ता होने पर भी बड़े आदिल हैं। थोड़े-से अर्से में वे बिलकुल टुकड़े-टुकड़े होगये हैं। बस, हक़ीक़त में सब से बड़ा बादशाह वही है, जो रिआया की मुहब्बत और अद्ल व इन्साफ़ को ही अपना हासिल अमर जाने।'

इस ज़माने में मुग़लों के महलों की क्या दशा थी, और बादशाह किस भाँति अपने व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करते थे—उनका ऐश्वर्य कितना महान् था—उसका वर्णन बर्नियर के निम्न-लिखित उद्धरण से आपको मिलेगा —

"बहुधा राजमहलों में भिन्न-भिन्न नस्लों और जातियों की २००० स्त्रियाँ रहती हैं—जिनमें से प्रत्येक के कर्त्तव्य पृथक्-पृथक् होते हैं। किसी का काम तो बादशाह की सेवा होता है, और किसी का उसकी बेगमों, बेटियों और आशनाओं की सेवा। उस श्रेणी में व्यवस्था-प्रबन्ध स्थिर रखने के लिये उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग कमरे मिले होते हैं, जिनकी ज़नाने पहरेदार निगरानी करते हैं। उसके सिवा उनमें से प्रत्येक को १० या १२ बाँदियाँ मिली होती हैं, जो उपरोक्त स्त्रियों में से दे दी जाती हैं। ज़नाने पहरेदारों को अपने दर्जे के अनुसार तीन-चार या पाँचसौ रुपये तक माहवारी वेतन मिलता है, और इनकी आधीन दासियों को ५०)से २००)तक। ज़नाने पहरेवालों के सिवा गानेवालियों को भी वेतन तो उसी प्रकार मिलता है, पर शाहज़ादे और शाहज़ादियों से, जिनके नाम पाठकों के मनोरञ्जन के लिये मैं आगे चलकर लिखूँगा—बहुमूल्य तोहफ़े भी मिलते रहते हैं। इनमें से कई तो शाहज़ादियों को लिखना-पढ़ना सिखाती हैं, परन्तु बहुधा इन्हें आशिक़ाना ग़ज़लें सिखातीं रहती हैं। इसके सिवा महल की ख़ातूनें गुलिस्ताँ और बोस्ताँ-नामक पुस्तकें, जो एक प्रसिद्ध लेखक शेख़ सादी-द्वारा रचित हैं, और अन्य प्रेम-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ती रहती हैं, जो बहुत करके उपन्यास और क़िस्सों के ढंग की हैं, और अत्यन्त अश्लील हैं।

"यह नौकर-औरतें बादशाह की सेवा किस तरह करती हैं, यह भी उल्लेखनीय बात है। क्योंकि जिस तरह बाहर मर्दों में अमीर और मन-

सबदार हैं, उसी तरह महलों में स्त्रियों में भी हैं। बल्कि बहुतों के तो वही ओहदे भी होते हैं, जो बाहर मर्दों के। जब बादशाह-सलामत बाहर तशरीफ़ न लाना चाहें, तो इन्हीं ओहदेदारों के द्वारा बाहर के अफ़सरों को आज्ञा प्रदान की जाती है। इन ओहदों पर जो स्त्रियाँ नियुक्त की जाती हैं, उनके चुनाव में ख़ास सावधानी की जाती है—जो बुद्धिमान् हों, और राज्य में जो-कुछ हो रहा हो, उससे परिचित रहें; क्योंकि जिन बातों की बादशाह को सूचना आवश्यक हो, उनकी पूरी रिपोर्ट बाहर से अफ़सर लिख भेजते हैं, और जिस तरह बादशाह आज्ञा दें, ज़नाने अफ़सर उन पर रिपोर्ट लिखती और जवाब देती हैं, और बाक़ायदा मुहर करके मर्दाने अफ़सरों के सुपुर्द कर देती हैं, और इधर-से-इधर और उधर-से-उधर जवाब लाती और ले जाती रहती हैं। मुगलों का यह भी एक नियम है कि जो-कुछ राज्य में हो रहा है, सप्ताह में एक बार उसकी रिपोर्ट 'ख़ुफ़िया-नवीस' में अवश्य दर्ज करानी होती है, जो एक प्रकार का गजट या अख़बार है। इन ख़बरों को लगभग सन्ध्या के ६ बजे महल में जनाने अफ़सर बादशाह को सुनाती हैं, और इस तरह महल में भी राज्य-भर की घटनाओं की सूचना मिलती रहती है। इसके सिवाय जासूस हैं, जिनका कर्त्तव्य है कि सप्ताह में कम-से-कम एक बार दूसरे आवश्यक विषयों और ख़ासकर शाहज़ादों के कामों के सम्बन्ध में, आवश्यक रिपोर्ट भेजें। वह रिपोर्ट लिखित होती है। बादशाह आधी रात तक बैठा इसी प्रकार काम करता रहता है। इसके बाद वह केवल तीन घण्टे तक सोता है, और उठते ही मामूली नमाज़ पढ़ता है, जिसमें उसे १॥ घण्टा लगता है। प्रति वर्ष वह एक जल्सा करता है, जिससे ईश्वर उसे विजय और प्रताप दे। परन्तु आजकल चूँकि वह बूढ़ा होगया है, और शत्रु इसे कुछ करने नहीं देते, इसलिये विवश उसे आराम करना पड़ता है। परन्तु वह आवश्यक कार्यों के सम्बन्ध में प्रति दिन सोचने तथा उचित आज्ञा प्रदान करने में कमी नहीं करता। इस तरह इसका यह नियम है कि २४ घण्टे में एक बार भोजन करता है, और केवल तीन घण्टा सोता है। सोने के समय बाँदियाँ उनकी रक्षा करती हैं, जो बड़ी

वीर तथा तीर-कमान और हथियारों के प्रयोग में ख़ूब प्रवीण होती हैं। प्रति दिन शाही बावरची को खाने के ख़र्च के लिये १०००) रु० दिया जाता है। अफ़सरों को इस रक़म में से आवश्यक सामान जुटाना पड़ता है। शाही दस्तरख़्वान् पर एक नियत संख्या में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट मांस भिन्न-भिन्न प्रकार के चीनी के प्यालों में—सुनहरे बर्तनों में रखकर पेश किये जाते हैं, और जब बादशाह को किसी बेगम, शाहज़ादी या जनरल पर विशेष कृपा प्रकट करनी हो, तो इनमें से या और किसी चीज़ में से उसे भेज देता है। पर इस प्रतिष्ठा का मोल उन्हें बहुत देना पड़ता है। क्योंकि ख़्वाजासरा, जो यह खाना लेकर जाते हैं, उनसे भारी रक़म इनाम में प्राप्त करते हैं। जब बादशाह शत्रु के देश में हो, तो यथासम्भव बावरचीख़ाने के ख़र्च का कुछ हिसाब नहीं लिखा जाता, परन्तु महल में बेगम और शाहज़ादियाँ तथा अन्य स्त्रियों के लिये पृथक् वज़ीफ़े नियत होते हैं। किन्तु बादशाह के महल में कई हिन्दू-राजाओं की लड़कियाँ भी हैं, जिन्हें हिन्दू नाम दिये गये हैं। इसी तरह, जैसी उसकी इच्छा हो, मुसलमानों को वह इस्लामी नाम देता है। बादशाहों और मुग़ल-शाहज़ादों में यह भी दस्तूर है कि वह बुड्ढी स्त्रियों से जासूसी का काम लेते हैं, और यह भी उसी ढंग के ख़्वाजा-सराओं को राज्य-भर की सुन्दरी स्त्रियों के पते देते रहती हैं, जिन्हें यह बुढ़ियाएँ धोखा, फ़रेब, या लालच से, जैसे बन सके, उन्हें महल में ले आती हैं। जहाँ बादशाह या शाहज़ादे की इच्छा हो, वहाँ उन्हें आशना लोगों की पंक्ति में रक्खा जाता है। जैसाकि मैं शाहजहाँ और दारा के वर्णनों में कह आया हूँ—जब ऐसा संयोग होता है कि वह इन्हें महल में रखना न चाहें, तो इन्हें कोई भारी नज़राना देकर वापस भेज देते हैं। मैं इन घटनाओं का उल्लेख कर रहा हूँ—क्योंकि मुझे इन गुप्त रहस्यों और अन्य कई बातों के सम्बन्ध में ख़ास ख़बर है, जिनका उल्लेख करना मैं उचित नहीं समझता।

"यद्यपि औरङ्गज़ेब ने प्रत्येक प्रकार के राग-रंग को बन्द कर दिया है, फिर भी बेगम और शाहज़ादियों के मनोरञ्जन के लिए कई-एक नाचने और गानेवालियाँ नौकर हैं।

"बहुधा ये गानेवाली उस्तानियाँ जन्म से हिन्दू होती हैं, जिन्हें बचपन में घरों से भगा लिया जाता है। यद्यपि उनके नाम हिन्दुआना है, पर हैं सब मुसलमान। इनमें से प्रत्येक की आधीनता में लगभग १० शिष्याएँ होती हैं, जिनके साथ वे भिन्न-भिन्न बेगमों, शाहज़ादियों और आशनाओं के महल से उपहार लेती रहती हैं, और प्रत्येक को अपनी स्थिति के अनुसार दर्जा मिला होता है।

"बेगम और अन्य महिलाएँ अपनी-अपनी गानेवालियों के साथ अपने-अपने महलों में समय काट लेती हैं। इन गानेवालियों को सिवाय अपनी मालिका के और किसी के यहाँ गाने की आज्ञा नहीं होती; सिवाय उस सूरत के जबकि कोई भारी त्यौहार हो। तब वे सब की-सब एक ही होती हैं, और उस त्यौहार पर कुछ-न-कुछ गाने का हुक्म दिया जाता है। ये स्त्रियाँ सभी सुन्दरी, उत्तम वस्त्रा-भूषणों से सज्जिता होती हैं, मस्तानी चाल से चलती हैं, और बात-चीत में बड़ी गुस्ताख़, हाज़िर-जवाब, और अत्यन्त वासनायुक्त होती हैं; क्योंकि गाने के सिवाय इनका काम सिवाय व्यभिचार को और कुछ होता ही नहीं।

"महल के दैनिक ख़र्च की तादाद कभी एक करोड़ रुपये से कम नहीं होती। यह रक़म प्रकट में यद्यपि बहुत बड़ी है, पर इतनी बड़ी नहीं रहती, जब यह समझ लिया जाय कि हिन्दुस्तान के सब लोग सुगन्ध और पुष्पों के बहुत शौक़ीन हैं, और भिन्न-भिन्न जाति के इत्रों, सुगन्धित तेलों की सुगन्धि और रूहों पर बहुत-सा रुपया ख़र्च करते हैं। इसके बाद पान का ख़र्च है, जो इनके मुँह में देखा जाता है। स्मरण रहे, कि यह रोज़ाना के ख़र्च है। इसमें वह रुपया भी सम्मिलित होना चाहिये, जो जवाहरात की ख़रीद में ख़र्च होता रहता है, और यही कारण है कि सुनारों को ज़ेवर तैयार करने से फ़ुरसत नहीं मिलती। इन जवाहरातों में से अनेक अत्यन्त बहुमूल्य और दुष्प्राप्य हैं, जो बादशाह और बेगमों तथा शाहज़ादियों के निजू इस्तेमाल में आते हैं। ये बेगमें और शाहज़ादियाँ अपने-अपने जवाहिरातों को देख-देखकर प्रसन्न होतीं और दूसरों को

दिखाने की बड़ी अभिलाषिणी रहती हैं। इनके ऐसा करने का कारण भी है। मैंने स्वयं देखा है कि कई बार इन्होंने मुझे सम्मति लेने के बहाने अपने कमरों में बुलाया, और बात-चीत का सिलसिला प्रारम्भ करने के लिये अपने जवाहिरात तथा ज़ेवर मँगाने शुरू किये, जो सोने की बड़ी किश्तियों में रखकर इनके सामने लाये जाते थे। वे मुझसे उनकी जाति या गुण और विशेषतायें पूछतीं, साथ ही इस प्रकार के अन्य प्रश्न करतीं। इसी बीच में मुझे इनकी सारी पहचान होगई, और मै यह कह सकता हूँ कि मैंने लगभग प्रत्येक प्रकार के जवाहिरात देखें हैं—जिनमें बाज़-तो असाधारण हैं। मैंने एक बार रूप-रंग में एक-से मोतियों की माला देखी है, जिन्हें प्रथम बार देखकर तो मैंने भिन्न प्रकार के मेवेजात समझा था। मैंने मेवेजात कहा है, क्योंकि वह हीरों की माला थी, जो मोतियों की तरह बिंधी और पिरोई हुई थी। उनमें से प्रत्येक हीरा आकृति में नारियल के बराबर था। इनका लाल रंग, जिसमें मोतियों का सफ़ेद रंग अपनी आभा डालता था—इन्हें फल-फूलों का रंग देता था। क्योंकि बेगम जानती हैं कि इनके सिवाय कोई अन्य इनके जवाहिरात को नहीं पहन सकता, इन मालाओं को वे अपने कन्धों पर ओढ़नी की तरह पहनती हैं। इनके साथ दोनों तरफ़ मोतियों की कितनी ही मालाएँ होती हैं। बहुधा इनके गले में तीन से लेकर पाँच तक मोतियों की मालाएँ होती हैं, जोकि पेट के नीचे के हिस्से-तक पहुँचती हैं। सिर में वे मोतियों का गुच्छा-सा पहनती हैं, जो माथे तक पहुँचता है, और जिसके साथ एक बहुमूल्य आभूषण जवाहिरात का बना हुआ सूरज, चाँद या किसी और तारे या कभी-कभी किसी फूल की आकृति का होता है। दाहिनी तरफ़ एक गोल छोटा-सा गहना होता है, जिसमें दो मोतियों के बीच जड़ा एक छोटा-सा लाल होता है। कानों में बहुमूल्य आभूषण पहनती हैं, और गर्दन के चारों तरफ़ बड़े-बड़े मोतियों तथा अन्य बहुमूल्य जवाहिरात के हार, जिनके बीच में एक बहुत बड़ा हीरा, लाल, याकूत या नीलम और इसके बाहर

चारों तरफ़ बड़े-बड़े मोतियों के दाने। बाँहों पर कुहनी से ऊपर दो इञ्च चौड़े बहुमूल्य बाजूबन्द पहनती हैं, जिनके ऊपर विभिन्न जाति के मूल्यवान् जवाहिरात जड़े होते हैं। चारों तरफ़ मोतियों के छोटे-छोटे गुच्छे लटकते हैं। कलाई पर बड़ी क़ीमती पहुँचियाँ या मोतियों के गुच्छे १० या १२ पंक्तियों में होते हैं। इस तरह पर इनकी नब्ज़ की जगह इस तरह ढकी होती है कि मुझे बहुधा इस पर हाथ रखना बड़ा कठिन होजाता था। उँगलियों में बहुमूल्य अँगूठियाँ पहनती हैं, और दाहिने हाथ के अँगूठे में एक आरसी होती है, जिसमें जवाहिरात का एक छोटा-सा गोल आइना तथा इर्द-गिर्द मोती जड़े होते हैं। इस आइने में वे बार-बार मुँह देखती हैं, क्योंकि इस बात की वे बड़ी शौक़ीन होती हैं, और हर-घड़ी इनकी दृष्टि इसी पर लगी रहती है। इनके कमरों के चारों ओर सोने का एक पटका दो अंगुल चौड़ा होता है, जो सारे-का-सारा जवाहिर से भरा हुआ होता है। इज़ारबन्द के दोनों सिरों पर, जो इन के पाजामों को बाँधने का काम देता है—पाँच अंगुल लम्बे १४ लड़ के मोतियों के गुच्छे लटकते हैं, और टाँगों के नीचे के भाग में या तो सोने की पाज़ेब, या बड़े-बड़े मोतियों की लड़ियाँ। उन गहनों के सिवाय—जिनका मैं इस स्थान पर उल्लेख नहीं करता—और जो वे अपनी-अपनी इच्छानुसार पहनती हैं, इन शाहज़ादियों के पास उपरोक्त गहनों के छः से लेकर आठ तक जोड़े होते हैं। इनकी पोशाकें बहुमूल्य और इत्र-गुलाब में बसी हुई होती हैं। दिन-भर में कई-कई बार वे वस्त्र बदलती हैं, क्योंकि पूर्वीय देशों में ऋतु में कई परिवर्तन होते रहते हैं। जब ये महिलायें अपने जवाहिरात को बेचना चाहें, तो इनके लिये ऐसा करना लगभग असम्भव हो जाता है; क्योंकि मुझे मालूम है कि शाहजादा अकबर जब शिवाजी के इलाक़े में था, तो रुपया समाप्त हो जाने के कारण उसने पाँच लाल गोआ में बेचने के लिये भेजे थे, जो इन्हीं जवाहिरातों के बराबर थे। पर इन्हें ख़रीदने पर कोई राज़ी न था। क्योंकि एक तो उनकी क़ीमत बहुत माँगी गई थी, दूसरे वह छिदे हुए न थे।

"हिन्दुस्तान में सभी स्त्रियाँ अपने हाथों और पैरों में एक प्रकार की

मिट्टी लगाती हैं—जिसे मेंहदी कहते हैं। इससे उनके हाथ-पाँव लाल रँग जाते हैं। मानो, इन्होंने दस्ताने पहन रक्खे हैं। इनके ऐसा करने का कारण यह है—कि चूँकि यह देश बहुत गर्म है, इसलिये न तो यहाँ दस्ताने और न मोज़े ही पहने जाते हैं। इसी कारण से इनको ऐसी बारीक पोशाक पहननी पड़ती है कि शरीर के अङ्ग-प्रत्यंग भी दीख पड़ते हैं। इन वस्त्रों को साड़ी और मलमल कहते हैं। वह एक या दो या तीन कपड़े पहनती हैं, जिनका वज़न अधिक-से-अधिक आधी छटाँक होता है। परन्तु मूल्य उनका ४०) से ५०) रुपया तक होता है। स्मरण रहे, इसमें उस सुनहरी किनारी का मूल्य शरीक नहीं है, जो वे उनमें लगाती हैं। ये स्त्रियाँ इन्हीं वस्त्रों में सोती और २४ घण्टे बाद इन्हें बदल डालती हैं, जिसके बाद फिर इन्हें नहीं पहनतीं, बल्कि अपनी बाँदियों को दे डालती हैं।

"इनके बाल सदा अच्छी तरह गुँधे रहते हैं और सुगन्धित तेलों से तर रहते हैं। सर पर वे भिन्न-भिन्न प्रकार और रङ्गों के दुपट्टे पहनती हैं, जो ज़रबफ़्त के होते हैं। सर्दी की ऋतु में भी, जब यहाँ गर्मी कम होती है—क्योंकि बर्फ़ जमना तो यहाँ होता ही नहीं—ये यही वस्त्र पहनती हैं, परन्तु ऊपरी वस्त्र के ऊपर काश्मीर की बनी हुई एक ओढ़नी, जो लम्बा-सा खुला चोग़ा होता है, पहन लेती हैं, और दूसरे वस्त्रों के ऊपर अत्यन्त सुन्दर शाल ओढ़ लेती हैं, जो इतना बारीक होता है कि छोटी अँगूठी में से निकाला जा सकता है। रात के समय बहुधा इनको यह विनोद होता है, कि बड़ी-बड़ी भारी मशालें जलवावें, जिन पर वे डेढ़ लाख से ज़्यादा रुपया ख़र्च कर देती हैं। ये मशालें, तेल या मोम की होती हैं। इन शाहज़ादियों में से कोई-कोई बादशाह की आज्ञा से सिर पर पगड़ी बाँधती है, जो कि मोतियों और बहुमूल्य जवाहरातों से जड़ी होती है, और इनके सौन्दर्य को चौगुना कर देती है। नाच-रङ्ग-आदि में तवायफ़ों को भी यही हक़ प्राप्त होता है। इन बेगमों और शाहज़ादियों को अपने-अपने रुतबे या ख़ानदान के अनुसार वेतन मिलता है, जो 'पाहान' कहाता है।

इसके सिवा वे बहुधा बादशाह के पास से सुगन्ध, वस्त्र और जूते-आदि ख़रीदने के बहाने से खास भेंट नक़द रुपये की सूरत में भी प्राप्त करती हैं। इस तरह पर वे बेगम अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं, और इनका काम सिवाय इसके और कुछ नहीं होता—कि अपना साज-श्रृङ्गार करती रहें, और शान-शौक़त दिखावें; दुनियाँ में इनकी प्रसिद्धि हो, और वह बादशाह को प्रसन्न करने में सफल हों। यद्यपि इनमें परस्पर बहुत ही विद्वेष होता है, परन्तु ऊपर से वे इसे प्रकट नहीं होने देतीं। इतने निठल्लेपन, मस्ती और ठाट-बाट में यह असम्भव है कि इनके मन में बुराइयाँ उत्पन्न न होती हों; क्योंकि वे कभी मृत्यु का विचार भी नहीं करतीं। सारे महल में ऐसा शब्द कभी किसी के मुँह में नहीं सुना जाता, और न कोई ऐसी घटना ही होती है, जिससे मृत्यु का भय इनके सम्मुख आ सके। जब इनमें से कोई रोगिनी हो जाती है, तो उसे एक सुन्दर महल में लेजाते हैं, जिसको बीमारख़ाना कहते हैं। यहाँ पर अत्यन्त सावधानी से उनकी चिकित्सा और परीक्षा होती है, और वहाँ से वे आरोग्य-लाभ करके या मरकर ही बाहर आती हैं। यदि रोगी ऐसा हो, जिसके लिये बादशाह के हृदय में ख़ास इज़्ज़त हो, तो रोग के प्रारम्भ में वह एक बार उसकी ख़बर लेने आते हैं। परन्तु अगर वह जल्द आरोग्य न हो, तो फिर उसके पास नहीं जाते, बल्कि समय पर किसी ग़ुलाम को भेजकर उसके समाचार मँगा लेते हैं। यद्यपि महल की स्त्रियाँ, जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ—प्रत्येक प्रकार का ठाट-बाट, दिखावा करती और बड़ी नज़ाक़त से रहती हैं, पर औरङ्गजेब इसमें कोई दख़ल नहीं देता। क्योंकि सब लोग रूपवती स्त्रियों के बड़े शौक़ीन होते हैं, और जगत् में यही एक चीज़ है, जो प्रसन्नता प्रदान कर सकती है। मुग़ल-सम्राटों का तो यह एक नियम ही होगया है। परन्तु वर्तमान बादशाह अपने पिता शाहजहाँ की तरह ठाट-बाट से नहीं रहता। इसके कपड़े अत्यन्त सादे होते हैं। पगड़ी में साफ़ तुर्रा और छाती पर एक हार के सिवाय वह कोई ज़ेवर नहीं पहनता। यद्यपि उसकी सन्तान—बल्कि चौथी पीढ़ी तक सब-के-सब, मोतियों की मालाएँ पहनते हैं। परन्तु वह इस ओर से उदासीन है।

इसके वस्त्र अत्यन्त मामूली क़ीमत के कपड़े के होते हैं। यहाँ तक कि इस पर १०) से ज़्यादा लागत नहीं होती। जितने जवाहरात वह पहनता है, उनके नाम किसी-न-किसी नक्षत्र पर रक्खे हुए होते हैं। जैसे सूर्य्य, चन्द्र या कोई और नक्षत्र—जैसा हकीमों ने बतला दिया है। क्योंकि, वह जब कोई जवाहरात माँगना चाहे, तो वह यह नहीं चाहता कि असली नाम लेकर पत्थर माँगे, इसलिये यह कहता है—'महताब लाओ।' 'आफ़ताब लाओ।' इन जवाहरातों में से बादशाह को कई तो मुग़ल सम्राट् तैमूर-आदि अपने पूर्वजों से विरासत में मिले हैं। साथ ही कई-एक गोलकुण्डा या बीजापुर की रियासतों से प्राप्त हुए हैं। महल में छोटे-बड़े सब प्रकार के लालों की यद्यपि कमी नहीं—फिर भी जवाहरात की ख़रीद बराबर जारी रहती है। जब महल में कोई शाहज़ादी पैदा होती है तो स्त्रियाँ अत्यन्त प्रसन्न होतीं, और मन का हर्ष प्रकट करने के तौर पर अधाधुन्ध ख़र्च कर डालती हैं। पर जब शाहज़ादा पैदा होता है, तो दरबार भी उस प्रसन्नता में भाग लेता है। राग-रङ्ग होते और बाजे बजते हैं, और जितने दिन तक बादशाह हुक्म दे, जश्नों की महफ़िलें गर्म रहती हैं। अमीर-उमरा रुपया, हाथी, घोड़े-आदि तोहफ़े लेकर बधाइयाँ देने आते हैं। इसी दिन बादशाह शाहज़ादे का नाम रखता है, और उसका 'याहान' नियत करता है, जो सदा राज्य के बड़े-से-बड़े जनरल की तनख़ाह से अधिक होता है। इसके सिवा शाहज़ादे के नाम पर ज़मीन के बड़े-बड़े टुकड़े नियत किये जाते हैं, और साल के बाद इस ज़मीन की पैदावार से जो-कुछ आमदनी हो, ख़ज़ाने में इनके नाम पर अलग जमा की जाती है। और जब इसकी शादी हो जाती है और इसे रहने को अलग मकान दिया जाता है, तो वह रुपया इसे दे दिया जाता है। इन शाहज़ादों में किसी की तनख़ाह २० हज़ार से ज़्यादा नहीं होती, और यह रक़म भी बहुधा सब से बड़े पुत्र को दी जाती है। आज-कल शाहआलम यही तनख़ाह ले रहा है। परन्तु इसकी अपनी आमदनी दो करोड़ रुपया से ज़्यादा है। इसके महलों में १००० के क़रीब स्त्रियाँ हैं, और उसके दरबार की शान

बिलकुल बादशाह के दरबार-जैसी है । जब यह शाहज़ादे एक बार शाही महल से बाहर आ जाते हैं, तो फिर गुप्त रीति से हिन्दू-राजाओं और मुसलमान-जनरलों को इनाम-इकराम और वेतन बढ़ाने के लालच-आदि देकर उन्हें अपना मित्र बनाना शुरू कर देते हैं । वह भी इनसे सहमत हो जाते हैं, और जब यह शाहज़ादा बादशाह हो जावे, तो वह यही समझता है कि यह अमीर इसके पक्ष में है। जब किसी शाहज़ादे के यहाँ लड़का पैदा हो, तो बादशाह उसका नाम रखता है, और वही उसका वेतन भी नियत करता है, जो दो-तीन-सौ रुपये रोज़ाना तक पहुँचता है । बच्चे का बाप भी आमदनी के अनुसार उसका वेतन नियत कर देता है—जब तक कि वह विवाह-योग्य अवस्था को न पहुँच जावे, और जब कि उसे विशेषतः तड़क-भड़क करनी पड़ती है । बादशाहज़ादे और उनके पुत्र 'शाहज़ादे' कहाते हैं, और उन्हें सुलतान की पदवी दी जाती है । बादशाह को जो नज़रें भेंट की जाती है, वह उन्हें मालिक की हैसियत से स्वीकार करता है । अर्थात् वह समझता है कि भेंट देनेवाला अपनी आधीनता प्रकट करने के तौर पर यह भेंट दे रहा है, और इसे लेना बादशाह का अधिकार है । बाहर को भेंट लेने पर भी यही ख्याल किया जाता है । क्योंकि उन्हें वसूल करते समय बादशाह प्रकट करता हैं कि मानो उसे स्वीकार करके वह कोई ख़ास कृपा कर रहा हो; क्योंकि वह अपने-आपको दुनियाँ में सब से बड़ा बादशाह समझता है । इसी प्रकार से जब वह किसी बादशाह को कुछ लिखे, तो उसे भी अमीर या रेज़ीडेण्ट कहकर सम्बोधन करता है । यदि कोई आदमी स्थान या नौकरी प्राप्त करने की इच्छा से कोई भेंट उपस्थित करे, और फिर उसे वह जगह न मिले, जैसा कि कभी-कभी होता है, तो उसकी भेंट व्यर्थ हो जाती है । मुझे खूब याद है कि एक फ़ान्सीसी सौदागर मोशिये-पेशियन के प्रति यही घटना हुई थी, जिसने इस आशा पर कि बादशाह इसके तमाम जवाहिरात ख़रीद लेगा—एक हज़ार रुपये क़ीमत का एक जमरूद भेंट किया था । पर जब बादशाह ने इनमें से एक भी न ख़रीदा, तो वह बहुत पछताया, और मुल्लाफ़ख़ाँ से, जो इस समय शाही

ख़िलअतख़ाने का अफ़सर था, जाकर अनुनय-विनय करने लगा कि उसका अमरूद वह उसे वापिस दिला दे इसमें सन्देह नहीं कि मुलताफ़ख़ाँ की सिफ़ारिश से वह अमरूद उसे वापिस मिल गया, पर फिर भी उस पर उसका आधा मूल्य ख़र्च होगया; और यह भी बादशाह की उस पर विदेशी होने के कारण कृपा थी। भारतवर्ष में यह एक प्रथा-सी होगई है, कि वसीले और रुपया ख़र्च किये बिना कुछ नहीं मिल सकता। यहाँ तक कि जब शाहज़ादे भी कोई मतलब सिद्ध करना चाहें, तो बिना रुपया ख़र्च किये नहीं कर सकते। साल-गिरह या अन्य त्यौहार के अवसरों पर और ख़ासकर नौ-रोज़ के दिन—जब, जैसा कि मैं आगे चलकर बताऊँगा, बादशाह और शाहज़ादे अपने-आपको तौलते हैं, तमाम अमीरों की स्त्रियाँ बेगमों और शाहज़ादियों को मुबारिकबादी देने के लिये जाती हैं। यह भी, ख़ाली हाथ नहीं—सदैव बहुमूल्य भेंट लेकर आतीं और इस त्यौहार की समाप्ति-तक—जो बहुधा ६ से ८ दिन तक रहता है—दरबार ही में रहती हैं। नाचने और गानेवालियाँ बधाई गा चुकती हैं, तो बेगमात सोने-चाँदी की बनी हुई किश्तियाँ प्रदान करती हैं। तमाम ज़नाने पहरेदारों को सिर से पैर तक वस्त्र और जवाहरात दिये जाते हैं, तथा तनख़्वाहों में तरक्क़ी की जाती है। अमीरों की स्त्रियाँ भी जब आती हैं, तो इन्हें बहुमूल्य वस्त्र और जवाहरात मिलते हैं, और जब वह बिदा होती हैं, तो उनके हाथ खिचड़ी से भरे होते हैं। खिचड़ी एक प्रकार का खाना है, जो भिन्न प्रकार की मेवा और फलों को मिलाकर तैयार किया जाता है। पर स्मरण रहे, इनकी खिचड़ी साधारण खिचड़ी नहीं होती; बल्कि सोने-चाँदी के सिक्कों और बहुमूल्य जवाहरात तथा छोटे-बड़े मोतियों की बनी हुई होती है। जिस दिन कोई शाहज़ादा या शाहज़ादी पैदा हो, तो बच्चे को एक पीले रेशम का तागा पहनाकर उसमें गाँठ दे दी जाती है, जो उस दिन का चिन्ह है, जब वह पृथ्वी पर जन्मा हो। अगले वर्ष उसी दिन एक और गाँठ दे दी जाती है। और इस वर्ष-गाँठ उपलक्ष्य में वैसे-ही और जल्से-जश्न और गाने-बजाने का बाज़ार गर्म रहता है। पैदा होने के थोड़ी देर बाद

बच्चे का नार काटा जाता है, और १० धागे से बाँधकर ४० दिन तक कुछ तावीज़ों के साथ उसके सिरहाने रख दिया जाता है। ४० दिन के बाद, यह तार और तावीज़ों की थैली शाहज़ादे के गले में बाँध दी जाती है। मुग़ल-साम्राज्य में यह रस्म बिना पालन किये नहीं रह सकती।

"बहुधा औरङ्गज़ेब को 'पीर-दस्तगीर' कहकर पुकारते हैं। अर्थात् वह पूज्य पुरुष हाथ के हिलाने से दुःख और रंज दूर कर सकता है। जब यह छोटा शाहज़ादा,जिसका मैं ज़िक्र कर रहा हूँ,दो साल की आयु को प्राप्त होता है, तो इसे पिता की भाषा या—तातारी, जो तुर्क की पुरानी भाषा है,सिखलाई जाती है। इसके बाद, इसे विद्वानों और ख़्वाजासरों के हवाले कर दिया जाता है। वे इसे समस्त फ़ौजी और सांसारिक विद्यायें सिखा देते हैं। इस बात की विशेष चेष्टा की जाती है, कि वह बुरी आदतें न सीखने पावे। विनोद के तौर पर कई नाटक-आदि इसे दिखाये जाते हैं, या मुक़दमे पेश किये जाते हैं, जिनमें वह दोनों तरफ़ के बयान और जिरह-आदि सुनकर फ़ैसले करता है। इसी तरह इसको युद्ध में भी ले जाते हैं, जिससे यह अनुमान किया जाता है कि वह यदि कभी अधिकार प्राप्त करे, तो उसे संसार का कुछ-न कुछ अनुभव हो, और वह प्रत्येक मामले पर उसके दिल और दिमाग़ से ग़ौर कर सके।

"जब बादशाह शिकार खेलने को या मस्जिद में जाते हैं, तब इन छोटे शाहज़ादों को साथ ले जाते हैं। इस तरह ये महल के अन्दर सोलह साल की आयु तक रहते तथा शिक्षा पाते हैं। इसके बाद इनकी शादी की जाती है। ये आयु-भर महल ही में रहते हैं, और इन्हें ख़ासी पेन्शन मिलती है। शादी के बाद शाहज़ादों को अलग महल प्रदान किया जाता है। इनके पास बहुत-सी आमदनी और दास-दासियों की एक बड़ी संख्या हो जाती हैं। परन्तु अच्छे-अच्छे विद्वान् और जासूस सदा इनके साथ रहते हैं,जो बादशाह को सब बातों की सूचना देते रहते हैं। जब यह शाहज़ादे अपने-अपने महलों में रहते हैं, तो वे स्वयं उपरोक्त विधि से अपनी सालगिरह और त्यौहार मनाते हैं, और उनके अफ़सरों को उन्हें उसी प्रकार भेंट-आदि

देनी पड़ती है। सन् १६६६ ई० में, जब बादशाह आलमशाह औरंगाबाद में अपनी वर्ष-गाँठ की प्रसन्नता मना रहा था, तो उसकी माता ने कई बहु-मूल्य भेटें—जिनका मूल्य ५० हजार के लगभग था—उसे दीं, परन्तु इस पर भी उसने अप्रसन्न होकर शिकायत की, कि दूसरे वर्षों की अपेक्षा इस साल माता ने बहुत कंजूसी दिखाई है। इस तरह पर मल्का को विवश और भेंट देनी पड़ी। महल की आम शाहज़ादियों ने भी इसी तरह अपनी शक्ति के अनुसार भेंट दी। इन अवसरों पर इन बातों का यहाँ तक ख़्याल रक्खा जाता है, कि प्रत्येक आदमी, चाहे वह बड़ा आदमी हो, चाहे मामूली हैसियत का, अपनी सामर्थ्य के अनुसार अवश्य कुछ-न-कुछ ले जाता है। इन लोगों का वर्ष २२ मार्च को आरम्भ होता है, और उस दिन—जैसा-कि मैं वर्णन कर चुका हूँ, एक भारी महोत्सव मनाया जाता है। महल के इर्द-गिर्द और भीतर-बाहर बहुमूल्य पर्दे लटकाये जाते हैं, जो शाहजहाँ की आज्ञा से तख़्त ताऊस के साथ तैयार किये गये थे। यह तख़्त बहुत मूल्य-वान् है, परन्तु बनानेवाले के भाग्य में इस पर बैठना नहीं लिखा था। औरङ्गज़ेब ने ही पहिले-पहल अपने राजतिलक के दिन इसका प्रयोग किया था। यह एक ऊँची छत के कमरे में रक्खा हुआ है, और उत्सव के दिन बादशाह इस पर विराजता है। उस दिन का यह दस्तूर है कि हिन्दुस्तान के इससे प्रथम के बादशाहों ने जो तख़्त काम में लिये थे, वे इस तख़्त के चारों तरफ़—ज़रा नीचे, रखे जाते हैं।

"उस दिन पुरानी रीति के अनुसार शाही ख़ान्दान के तमाम व्यक्ति भिन्न भिन्न रीति से तोले जाते हैं। प्रथम, हर प्रकार की धातुओं के साथ, जैसे सोना, चाँदी, ताँबा-आदि। फिर विविध प्रकार के वस्त्रों के साथ, जैसे ज़रबफ़्त, कलाबत्तू, मख़मल-आदि। तत्पश्चात् भिन्न प्रकार के अन्नों के साथ, जैसे गेहूँ, चावल, जौ-आदि। इससे अभिप्राय यह होता है, कि पिछले साल और इस साल के वज़न में अन्तर मालूम हो जाय। वे तमाम वस्तुएँ ग़रीबों में दान कर दी जाती हैं, और प्रत्येक का वज़न उस दिन की पुस्तक में दर्ज कर लिया जाता है। बादशाह को उस दिन ख़ूब फ़ायदा होता है।

क्योंकि महल के प्रत्येक व्यक्ति और दर्बार के अमीरों का कर्तव्य है कि उसे भेंट दें। उस दिन को नौरोज़, यानी नया साल कहते हैं। बादशाह भी इस दिन अनेक रीतियों से अपनी कृपायें प्रदान करता है। जैसे, उस दिन वह कई जगह नये हाकिम नियत करता है, कई जगह पुरानी बातों में परिवर्तन करता है, और बहुत-से लोगों को हाथी, घोड़े, जवाहरात, सरोपा-आदि देता है। जब वह सफ़र में हो, तो वैसी शान से उत्सव नहीं होता, न तख़्त लाये जाते हैं। क्योंकि वह दिल्ली के क़िले के बाहर नहीं लाये जाते।

"एक और त्योहार भी है, जो बड़ी शान से मनाया जाता है। इसे ईद-.कुरबानी, यानी कुर्बानियों का त्योहार कहते है, जो इनके रोज़ों की समाप्ति पर होता है, और उस दिन बादशाह नौ बजे बड़े ठाट-बाट के साथ महल के बाहर निकलकर मस्जिद में जाता है। वहाँ पर क़ाज़ी अज़म सात नम्बर के ज़ीने के पास खड़ा हुआ, उसकी प्रतीक्षा कर रहा होता है। उसके पीछे एक .गुलाम नंगी तलवार हाथ में लिये हुए खड़ा होता है। पहली रसूम हो चुकने के पीछे क़ाजी बड़ी ऊँची आवाज़ से तैमूरलंग से आरम्भ करके तमाम मुग़ल-बादशाहों के नाम और उनकी प्रशंसा बड़ी सफ़ाई के साथ और बढ़ा-चढ़ाकर सुनाता है। इसी तरह जब वर्तमान बादशाह का नम्बर आता है, तो वह उसकी प्रशंसा में बहुत-कुछ कहता है, जिसके साथ ख़ुशामद की भारी मात्रा होती है। वह बादशाह को अनेक प्रकार के धार्मिक ख़िताब देता है, और अन्त में उसके गुणों की तारीफ़ के पुल बाँध देता है, तथा उसकी बहादुरी और न्याय की सराहना करता है। इस फ़तवे के पढ़ते समय यह अनिवार्य होता है, कि वह ख़ूब सावधान रहे, और अपने हृदय की सभी बातों को बयान कर दे; क्योंकि ज़रा-सी भी भूल या ग़लतबयानी करने पर सिर काटने के लिये जल्लाद उसके पीछे खड़ा रहता है। जब वह बात ख़त्म हो चुकती है, तो क़ाज़ी को ख़ुद बादशाह सिर से पैर तक के वस्त्र प्रदान करता है। मस्जिद से जिस समय चलते हैं, तो सीढ़ियों के नीचे कुरबानी के लिये एक ऊँट तैयार खड़ा रहता है। बादशाह अपनी सवारी पर सवार होकर उसकी गर्दन पर नेजे से वार करता है। या यदि स्वयं

ऐसा न करना चाहे, तो अपने पुत्रों में किसी को ऐसा करने की आज्ञा देता है। बहुधा जब शाहआलम दरबार में होता था, तो वह इस रस्म या कुर-बानी को—जैसाकि यह लोग इसे कहते आये हैं—किया करता था। इसके बाद ग़ुलाम ऊँट को ज़मीन पर लिटाकर इसका गोश्त इस तरह बाँट देता है, मानों यह किसी महात्मा का प्रसाद है।

ख़्वाज़ासरों को—जिनका मैंने ऊपर नाम दिया है—नाज़िर यानी सुपरिण्टेण्डेण्ट का ख़िताब मिला हुआ है। बादशाह, शाहज़ादे, शाहज़ा-दियाँ, बेगमात उन पर विश्वास करते हैं, और हर-एक बेगम, शाहज़ादी या महल की अन्य स्त्री का एक-एक नाज़िर होता है, जो इसकी जायदाद, जागीर और आमदनी का हिसाब-किताब रखता है, अथवा इनका प्रबन्ध करता है। तमाम अफ़सरों, नौकरों और ग़ुलामों को अपने तमाम कामों और तमाम कपड़े-आदि का हिसाब इन ख़्वाजासराओं को देना होता है। बहुधा नाज़िर की आधीनता में भी अन्य कई वृद्ध और जवान ख़्वाजासरा होते हैं, जिनका महल में आगमन लगा रहता है। इनमें से कोई चिट्ठी-पत्री-आदि ले जाता है, और कइयों पर इधर-उधर के बहुत-से कामों की ज़िम्मेवरी होती है। कई-एक का फाटक पर यह काम होता है कि वह महल के अन्दर आनेवालों को देख लें, और इस बात की साव-धानी रक्खें कि महल में शराब, भंग, अफ़ीम या अन्य कोई नशे की चीज़ न जाने पाये; क्योंकि महल की तमाम स्त्रियाँ ऐसी-ऐसी नशीली चीज़ों को बहुत चाहती हैं। न महल के अन्दर गाजर, मूली, बैंगन और ऐसी सब्ज़ी, जिनका नाम न लेना चाहिए, प्रवेश नहीं हो सकतीं। जब कोई स्त्री किसी को मिलने महल में आये—तो, यदि वह परिचित न हो, तो बिना इस बात का ख़्याल किये कि इसकी पद मर्यादा क्या है, उसकी तलाशी की जाती है। इतनी कड़ाई का कारण यह है कि ख़्वाज़ासरों का इस बात का भय रहता है कि कोई नवयुवक-मर्द ज़नानी पोशाक में महल के भीतर न चला जाय। जब राज-मिस्त्री या अन्य मज़दूर वहाँ काम करते हों, तो प्रत्येक दर्वाज़े से गुज़रते हुए इनके नाम रजिस्टर में नोट किये जाते

हैं। साथ-ही, इनके चेहरों के निशान-आदि, जिनसे इनकी पहचान हो सके, लिख लिये जाते हैं। एक काग़ज़ पर यह सब विवरण लिखकर ख़्वाजा-सराओं के सुपुर्द कर दिये जाते हैं—इन्हें महल से इसी तरह बाहर ले जाते हैं, और वे इस बात की विशेष सावधानी रखते हैं कि वापस आनेवाला व्यक्ति वही और उसी हुलिये का है। इस तमाम सावधानी का कारण यह भय है, कि कहीं कोई आदमी भीतर न रह जाय, या किसी को भीतर से बदलकर न भेज दिया जाय। दरवाज़ों पर स्त्रियाँ भी नियत होती हैं, जो बहुधा काश्मीर की होती हैं। उनका काम यह है कि जिस चीज़ की आवश्यकता हो, महल के भीतर ले आयें, और वहाँ से बाहर ले आयें। ये स्त्रियाँ किसी से पर्दा नहीं करतीं। महल के बड़े-बड़े दर्वाज़े सूर्यास्त होने पर बन्द कर दिये जाते हैं, और बड़े फाटक पर सिपाहियों का एक मज़बूत दस्ता पहरे पर होता है। इसके सिवा उन पर मुहर भी लगा दी जाती है। सारी रात मशालें जलती रहती हैं। प्रत्येक के पास एक-एक घड़ियाल होता है, तथा एक स्त्री भी मौजूद रहती है, जिसे नाज़िर को प्रत्येक घटना और सब आने-जानेवालों के सम्बन्ध में रिपोर्ट देनी पड़ती है। जब किसी हकीम को महल के भीतर ले जाने की आवश्यकता होती है, तो उसके सिर और शरीर को कमर-तक ढक दिया जाता है, और इस दशा में उसे ख़्वाजासरा अन्दर ले जाते हैं, तथा इसी प्रकार बाहर निकाल लाते हैं। अन्य अमीर भी अपनी स्त्रियों पर इसी प्रकार कड़ाई करते हैं, जैसाकि बादशाह। इसका कारण यह है कि, इस मामले में मुसलमान लोग बहुत ही अनुदार होते हैं, और उनका स्वभाव इतना शङ्काशील होता है, कि अपनी स्त्रियों को वे किसी के सामने जाने की आज्ञा नहीं देते। यही नहीं, हालत यहाँ तक पहुँची हुई है कि बहुत-सों को अपने भाइयों तक पर विश्वास नहीं। इस तरह स्त्रियाँ कड़ी निगरानी में बन्द रहती हैं, और कड़ी पाबन्दियों में दिन काटती हैं। न इन्हें स्वाधीनता है, न कोई काम। इसलिये तमाम दिन इन्हें सिवाय शृङ्गार-पटार के और कोई काम नहीं। इनके मन की भावनायें उत्तेजना से परिपूर्ण होती। इस बात का एक बार स्वयं इन

स्त्रियों में से एक ने मेरे सामने इक़रार किया था। यह स्त्री आसफ़ख़ाँ वज़ीर की पत्नी थी। इसका नाम नवलबाई था। इसने मुझे बताया, कि 'मेरे ख़्यालात सदा यह सोचने के लगे रहते हैं, कि कोई-न-कोई ऐसा ज़रिया हो, जिससे मैं अपने पति को प्रसन्न कर सकूँ, और वह दूसरी स्त्रियों के निकट न फटकें।' इससे यह नतीजा निकलता है, कि इन सब के विचारों की धारा केवल एक ही ओर है। उसके सिवाय कोई और विचार उन्हें आता ही नहीं। अच्छे-अच्छे शोरबे-कबाब खाने और अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनने तथा जवाहरात और मोतियों से लदी रहने का उन्हें बड़ा चाव है। शरीर को सदा इत्र और सुगन्ध से तर रखने की उन्हें इच्छा होती है। हाँ, इस बात की इन्हें बेशक आज्ञा होती है कि स्वाँग-तमाशे और नाच देखें, इश्क़िया कहानियाँ और क़िस्से सुनें, फूलों की सेजों पर आराम करें, बाग़ों के घूमें, बहते हुए पानी में किलोल करें, राग-रंग का आनन्द लें, आदि-आदि। कोई-कोई ऐसी हैं, जो केवल इसलिये समय-समय पर बीमारी का बहाना करती हैं, कि इस बहाने हकीम देखने आयेगा, तो बात-चीत करने और नब्ज़ छुआने का मौक़ा हाथ आयगा। हकीम आकर पर्दे में हाथ देखता है, तो वह उसे पकड़कर चूम लेती है, और धीरे-से दाँतों में दबा लेती हैं। बल्कि कई-एक तो उसे अपनी छाती पर रख लेती हैं। ऐसी घटनाएँ मेरे साथ कई बार हुई हैं। परन्तु मैंने ऐसा प्रकट किया, मानो कुछ हुआ ही नहीं। अन्यथा, इर्द-गिर्द की स्त्रियाँ और ख़्वाजासरा असल मामले को भाँपकर सन्देह में पड़ जाते। ये स्त्रियाँ हकीमों से बहुधा उत्तम व्यवहार करती हैं, और वह भी इनके साथ बात-चीत अथवा अन्य विषयों में बड़ी बुद्धिमानी से पेश आते हैं। कारण कि इनकी भाषा मँजी हुई और संयत होती है। ये दरबार के उमराओं को दवाइयाँ देने में बड़ी उदारता दिखाती हैं, और उनके लिये —जिनकी वे इज़्ज़त करती हैं—तरक़्क़ी और ख़ास नौकरियाँ प्राप्त करने में बुद्धिमान होती हैं। इनके तोहफ़े बहुधा घोड़े, सरापा, तुर्रा तथा अन्य चीज़ें होती हैं।

शायद ही इनकी कोई ऐसी सेवा की जाती होगी, या इनसे कोई

अच्छा सलूक किया जाता होगा, जिसका वह एक या दूसरी तरह से बदला न चुका देती हों। हाँ, इतना अन्तर अवश्य होता है, कि प्रत्येक आदमी को अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार ही सब-कुछ मिलता है;—या, यह कि जितना वे इन महिलाओं के दिल पर अपना प्रभाव जमा सकें। मैंने देखा है, कि औरंगज़ेब की लड़की ने नवाब ज़ुल्फ़िक़ारख़ाँ और उसके पिता के साथ भिन्न-भिन्न व्यवहार किये थे। इस नवाब को बादशाह ने कर्नाटक का हाकिम बनाकर भेजा था, और चलने से प्रथम वह इस शाहज़ादी से विदा होने गया; क्योंकि इसका विवाह इसके किसी सम्बन्धी से ही हुआ था। शाहज़ादी ने चलते समय इसे एक पान की डिबिया और एक सोने का पीकदान प्रदान किया था, जो चारों तरफ़ क़ीमती जवाहरात से जड़ा था। इस घटना के एक साल बाद कुछ सरकारी कारणों से बादशाह ने अपने पुत्र कामबख़्श को वज़ीर आसफ़ख़ाँ की आधीनता में उसी ओहदे पर नियुक्त करके भेजा, और जब वज़ीर इस शाहज़ादी से मिलने आया, तो उसने चलते वक़्त एक पान की डिबिया प्रदान की—जो चाँदी की थी। इस पर आसफ़ख़ाँ ने इतने कम मूल्य का तोहफ़ा देखकर शिकायत करते हुए कहा —"कम-से-कम मुझे अपने प्यारे पुत्र से अधिक नहीं, तो उसके बराबर तो मिलना चाहिये; क्योंकि मैं उसका पिता हूँ, और उससे ऊँचा पद रखता हूँ, तथा साम्राज्य का प्रधान-मन्त्री हूँ।"

शाहज़ादी—"परन्तु उनमें और आपमें एक अन्तर भी है। वह यह कि आपका पुत्र हमारा सम्बन्धी है, परन्तु आप केवल नौकर हैं।" यह सुनकर बेचारा बूढ़ा कुछ न बोल सका, और कोर्निश करके चलता बना। —क्योंकि सभी शाही व्यक्तियों की उसी तरह अभिवादन करना पड़ता है, चाहे उनका बादशाह से कैसा-ही निकट का रिश्ता क्यों न हो।

इन स्त्रियों से विदा माँगने की विधि वह नहीं, जो आप में से बहुतों का विचार होगया है; क्योंकि इन्हें कोई देख तो पाता नहीं, इसलिये मैं यहाँ उसका भी कुछ वर्णन किये देता हूँ। जब किसी आदमी को इनसे विदा होना हो, तो वह पहले महल के दरवाज़े पर जाकर ख़्वाजासराओं से

कहता है कि मैं इस मतलब से आया हूँ, और अमुक व्यक्ति को मेरे आने की सूचना दे दो। ख़्वाजासरा यह सन्देशा भीतर ले जाकर उसका जवाब ले आते हैं। जैसाकि मैंने ऊपर कहा है, इन स्त्रियों में से कोई बाहर नहीं निकलती; सिवाय उस दशा के, जबकि कोई ख़ास कारण हो। किन्तु उस समय भी वह पर्दे में ढकी हुई, पालकियों में सवार होती हैं, जिनमें छोटी-छोटी खिड़कियों में सोने की जालियाँ होती हैं, और जिनके भीतर से वे देख सकती हैं। अभिप्राय यह है कि कोई आदमी इन महिलाओं के निकट नहीं पहुँच सकता, सिवाय इनके पतियों के, या इन हकीमों के, जो इसकी नाड़ी देखते हैं। अमीर-उमरा घोड़े से उतरकर कोर्निश बजा लाते हैं। इनमें जिन व्यक्तियों से वे ज़्यादा प्रीति करती हैं, उन्हें निकट आने की आज्ञा देती हैं, और अन्तिम सलाम के तौर पर अपनी सवारी से ही ख़्वाजासरा के हाथ पान भेज देती हैं, जिसे लेकर अमीर एक और कोर्निश बजाकर चल देते हैं। यह प्रतिष्ठा कई अवसरों पर मुझे भी प्राप्त हुई है। एक बार बादशाह-बेगम यानी शाहआलम की माता ने मुझे अपनी प्रसन्नता और शाहज़ादे के साथ रहने के कारण दरबार में जाने के समय मेरी सेवाओं के प्रति ऐसा ही किया था। वह बेगम मेरे साथ बहुत प्रेम करती थी; क्योंकि मैंने कई बार इनका इलाज किया था, और इनकी फ़स्द खोली थी। रोगी रहने के कारण बहुधा इन्हें मेरी सेवाओं की आवश्यकता रहती थी, और चूँकि मैं ही इसके लिये नुस्ख़ा तजवीज़ किया करता था, इसलिये वह कोई-न-कोई उम्दा चीज़ बहुधा मुझे भेज दिया करती थी, जैसाकि ऐसी महिलाओं का, उन लोगों के साथ, जिनकी वे प्रतिष्ठा करती हों— करने का दस्तूर है। जब मुझे इनकी फ़स्द खोलनी पड़ती थी, तब वह अपने पैर को परदे से बाहर निकाल देती थीं, जो रगों के निकट एक-दो अंगुल चौड़ी जगह के सिवाय सब-का-सब ढका होता था। उस इलाज के लिये मुझे ४००) और सरोपा मिलता था। बाक़ायदा साल में दो दफ़ा इनकी फ़स्द खोलनी पड़ती थी। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि प्रथम इसके कि कोई फ़िरंगी इन शाहज़ादों के यहाँ हकीम बन सके, उसे मुद्दत तक अपनी योग्यता-आदि

का प्रमाण देना पड़ता था; क्योंकि ये लोग इन मामलों में शक्की और नाज़ुक-तबियत के होते हैं। हर-महीने बेगमें और शाहज़ादियाँ, इसी तरह से, जैसाकि मैं ऊपर लिख चुका हूँ, फ़स्द खुलवाती हैं। यही विधि इस समय काम में लाई जाती है, जब उन्हें पाँव से ख़ून निकलवाना हो—या, किसी ज़ख्म या फोड़े की मरहम-पट्टी आदि करानी हो। सिवाय घायल स्थान या उस रग के, जिससे ख़ून निकालना हो, बाक़ी शरीर का कोई भाग नंगा नहीं किया जाता। जब मैं शाहआलम की स्त्रियों और बेटियों की फ़स्द खोलने को जाया करता था, तो मुझे प्रति रोगी २००) और एक सरोपा मिलता था। परन्तु यदि स्वयं शाहज़ादे का, जो मेरा स्वामी था, ख़ून निकालना होता, तो बादशाह की आज्ञा के बिना ऐसा नहीं किया जा सकता, और तब मुझे ४००) रुपये, एक सरोपा और एक घोड़ा मिलता था। जब मैं चीर-फाड़ समाप्त कर चुकता, तो मुझे निकाले हुए रक्त की मात्रा और शाहज़ादे की इस समय की दशा की रिपोर्ट बादशाह को देनी होती थी, और उन सवालों का, जो वह पूछना चाहें—जवाब देना होता था। इसके बाद सरोपा प्रदान करके मुझे विदा कर दिया जाता था। शाहआलम के पुत्रों की फ़स्द खुलवाने के लिये मुझे २००) और एक घोड़ा, फ़ी व्यक्ति प्रदान किया जाता था।

बर्नियर ने औरङ्गज़ेब के दरबारियों और सरदारों-आदि का वर्णन इस भाँति किया है:

"बादशाह के दरबार में उपस्थित रहनेवाले अमीरों के अतिरिक्त प्रान्तीय तथा सैनिक अमीर भी होते हैं, जो भिन्न-भिन्न स्थानों में रहते हैं। उनकी संख्या कितनी है; यह मैं ठीक नहीं कह सकता। बादशाह के दरबार में उपस्थित रहनेवाले अमीरों की संख्या २५ से ३० तक है, और जैसाकि पहले लिखा जा चुका है, घोड़ों की संख्या के अनुसार उनका वेतन है, जो एक हज़ार से बारह हज़ार रुपये तक होता है।

ये अमीर राज्य के स्तम्भ हैं। इनको राजधानी अथवा दूसरे नगरों की सेना में बड़े-बड़े उच्च पद और अत्यन्त माननीय ख़िताब दिये जाते हैं।

इनसे राज-दरबार की शान बनी रहती है। जो राजधानी में रहते हैं, वे बहुत उत्तम वस्त्र पहने-बिना कभी घर से बाहर नहीं निकलते, और कभी हाथी-घोड़े पर और कभी पालकी में सवार होते हैं। इनके साथ में सवारों के अतिरिक्त पैदल ख़िदमतगार व्यक्ति भी होते हैं, जो सवारी के आगे-आगे दोनों तरफ़ पैदल चलते हैं, और केवल रास्ते में से लोगों को हटाते और गर्द झाड़ते हैं। बल्कि कोई-कोई तो पीकदान, जल की सुराही, हुक़्क़ा, और कभी-कभी क़िस्से-कहानी की कोई पुस्तक अथवा क़ाग़ज़ लेकर ही साथ-साथ रहते हैं।

प्रत्येक अमीर के लिये यह आवश्यक है कि प्रति दिन प्रातःकाल ११ बजे, जब बादशाह दरबार में बैठता है, और फिर संध्या के समय ६ बजे, सलाम करने के लिये उपस्थित हों, और प्रत्येक को अपनी-अपनी बारी पर दुर्ग में उपस्थित होकर सप्ताह में एक दिन पहरा देना पड़ता है। उस समय वे लोग बिछाने के वस्त्र और क़ालीन अपने साथ ले जाते हैं, परन्तु भोजन इन्हें शाही भोजनालय से ही मिलता है, जिसको लेते समय एक विशेष प्रकार की प्रथा के अनुसार कार्य किया जाता है। अर्थात् खड़े होकर और बादशाह के तथा बादशाह के महल की ओर मुँह करके अमीर तीन बार झुककर सलाम करते हैं। फिर अपना हाथ प्रथम भूमि तक लेजाकर फिर मस्तक तक उठाता है।

जब कभी बादशाह पालकी, हाथी या तख़्त पर सवार होकर निकलता है, तो बीमार या वृद्ध अथवा उन आदमियों को छोड़कर, जो किसी विशेष कारण से मुक्त होते हैं, सब अमीरों को उसके साथ अवश्य ही रहना पड़ता है। हाँ, जब वह नगर के निकट शिकार खेलने, या बाग़ में या किसी मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के लिये जाता है, तो केवल कभी-कभी वही अमीर उसके साथ जाते हैं, जिनकी उस दिन चौकी होती है। नियम यह है कि बादशाह चाहे शिकार में हों, चाहे सेना लेकर किसी लड़ाई में जायें, अथवा एक नगर से दूसरे नगर को जाते हों, छत्र-चँवर-आदि उसके साथ रहते हैं, और अमीरों को—चाहे कैसी ही कड़ी धूप पड़ती हो, वर्षा

हो, या गर्मी के मारे दम घुटा जा रहा हो,—घोड़ों पर चढ़कर बिना किसी प्रकार की छाया के साथ-साथ रहना होता है।

मनसबदार एक प्रकार के सवार हैं, जो मन्सब या वेतन पाते हैं। उनका वेतन माकूल और उनकी प्रतिष्ठा के योग्य होता है। यद्यपि वह अमीरों के वेतन के समान नहीं है—परन्तु साधारण सवारों से बहुत अधिक है। इसी कारण छोटी श्रेणी के अमीरों में इनकी गणना की जाती है। बादशाह के अतिरिक्त ये किसी के आधीन नहीं हैं, और जो काम अमीरों से लिया जाता है—वही इनसे भी लिया जाता है। यदि इनके पास भी कुछ सवार हों, जैसा कि पहले नियम था, तो वह भी अमीरों के बराबर हो जायें। परन्तु आज कल इनके पास केवल दो-चार घोड़े रहते हैं, जिन पर बादशाही चिन्ह लगे रहते हैं। इनका वेतन कभी कभी १२०० रु० मासिक तक होता है। परन्तु ७००) रु० मासिक से अधिक नहीं होता।

रोज़ीनेदार भी एक प्रकार के सवार ही हैं, जिनका वेतन प्रति दिन मिल जाया करता है; जैसाकि स्वयं उनके नाम से प्रकट है। परन्तु इनकी आमदनी बहुत है। कभी-कभी तो ये लोग मन्सबदारों से भी अधिक पा लेते हैं। तथापि विशेष प्रकार का वेतन होने के कारण अधिक वेतन से इनकी प्रतिष्ठा नहीं है, और मन्सबदारों की भाँति ये लोग ऐसे क़ालीन और फ़र्श मोल लेने को विवश नहीं हैं, जो महलों में काम में आने के बाद मन्सबदारों को लेने पड़ते हैं; तथा प्रायः जिनके लिये मन्सबदारों को बहुत मूल्य देना पड़ता है। इन लोगों की संख्या बहुत अधिक है, और छोटे छोटे कार्य इन लोगों के सुपुर्द हैं। इनमें बहुत-से मुत्सद्दी और नायब-मुत्सद्दी हैं, और बहुत-से इस काम पर नियुक्त हैं कि उन आज्ञा-पत्रों पर, जो रुपया देने के लिये लिखे जाते हैं—सरकारी मुहरें लगायें। उन्हीं में कुछ ऐसे हैं, जो इन आज्ञा-पत्रों का कार्य शीघ्र समाप्त कर देने के बदले घूस लिया करते हैं।

अब साधारण सवारों का वृत्तान्त सुनिये। ये उन अमीरों के आधीन होते हैं—जिनका हाल ऊपर लिखा जा चुका है। साधारण सवार दो प्रकार

के होते हैं। एक तो दो घोड़ेवाले, जिनको बादशाही सेवा के लिये तैयार रखना अमीरों के लिये आवश्यक है, और जिनके घोड़ों की रानों पर उन अमीरों के चिह्न लगे रहते हैं। दूसरे एक घोड़ेवाले होते हैं, और दो घोड़ेवालों का वेतन और सम्मान एक घोड़ेवाले की अपेक्षा अधिक है। यद्यपि सरकार से एक घोड़ेवाले सवार के निमित्त २५) रु० मासिक के हिसाब से मिलता है, परन्तु सवारों को कम या अधिक देना बहुत-कुछ उनके सरदारों, अर्थात् अमीरों की उदारता पर निर्भर रहता है।

पैदल सिपाहियों का वेतन सब प्रकार के ऊपर लिखे कर्मचारियों से कम है। इनकी श्रेणी के लोग बन्दूक़ची हैं। इन्हें आराम और शान्ति के समय भी बहुत-से बखेड़ों में रहना पड़ता है। अर्थात् बन्दूक़ चलाते समय जब ये घुटने टेककर बैठते हैं, और अपनी बन्दूक़ को लकड़ी की तिपाइयों पर रखकर, जो बन्दूक़ के साथ लटकती है—चलाते हैं, तो उनकी यह बैठक देखने ही योग्य होती है, और इतनी सावधानी करने पर भी यह डर लगा रहता है, कि कहीं बन्दूक़ दाग़नेवाले की लम्बी दाढ़ी और आँखें न जल जाँय, अथवा किसी भूत-प्रेत के विघ्न से बन्दूक फट न जाय!

पैदल सैनिकों में किसी का वेतन २०) रु० मासिक है, किसी का १५) और किसी का १०) रु०। परन्तु गोलन्दाज़ों का वेतन बहुत है,—विशेषकर विदेशी गोलन्दाज़ों का; अर्थात्—पुर्तगीज़ों, डचों, अँग्रेज़ों, जर्मनों और फ़्रान्सीसियों का, जो गोआ और डचों तथा अँग्रेज़ों की कम्पनी के कार्यालयों से भाग आते हैं। प्रारम्भ में जब मुग़ल-लोग तोप चलाना अच्छी तरह नहीं जानते थे, इन विदेशी गोलन्दाज़ों को अधिक वेतन मिलता था, और उनमें से अब भी कुछ लोग हैं, जो २००) रु० मासिक तक पाते हैं। परन्तु अब बादशाह इन लोगों को बहुत कम नौकर रखता है, और २०) रु० से अधिक वेतन नहीं देता।

तोपख़ाना दो प्रकार का है—एक भारी, दूसरा हल्का। भारी तोपख़ाने के विषय में मुझे स्मरण है कि जब बादशाह बीमारी के बाद सेना-सहित लाहौर के मार्ग से काश्मीर गया था—जिसको भारतवर्ष में द्वितीय

रखते कहते हैं, तो उस बाग़ में ज़म्बूरकों अर्थात् ऊँटों पर एक प्रकार की बहुत छोटी-छोटी तोपें रखनेवालों के अतिरिक्त, जो दो-तीन-सौ तेज़ ऊँटों पर थे, सत्तर भारी तोपें, जिनमें प्रायः फिरङ्गी तोपें थीं (वे छोटी तोपें दो-दो बन्दूक़ों के बराबर थीं) साथ थीं।

भारी तोपख़ाना बादशाह के साथ नहीं रहता था; क्योंकि आखेट करने या पानी के निकट रहने के अभिप्राय से बादशाह सीधे मार्ग से अलग होकर चलता था, और ये तोपें ऐसी भारी थीं कि दुर्गम मार्गों, नावों या पुलों पर से, जो शाही सेना के उतरने के लिये बनाये गये थे—जा नहीं सकती थीं। परन्तु हल्का तोपख़ाना सदैव बादशाह के साथ रहता था। आखेट के स्थानों में, जो बादशाह के लिये ठीक किये हुये रहते हैं, और जानवरों को रोक रखने के लिये, जिनकी नाके-बन्दी आखेट के समय की जाती है, जब बादशाह बन्दूक़ से अथवा और किसी प्रकार से आखेट करना चाहता है, तो यह तोपख़ाना जितना शीघ्र सम्भव होता है, आगे के पड़ाव—जहाँ बादशाह और बड़े-बड़े अमीरों के ख़ेमे पहले से लगे होते हैं—जा रहता है। बादशाही ख़ेमों के सामने इन तोपों की लाइन लगा दी जाती है, और जब बादशाह पड़ाव में पहुँचता है, तो सब की सूचना के लिये सलामी की जाती है।

जो सेना प्रान्तों में नियत रहती है, उसकी, और बादशाह के साथ रहनेवाली सेना की अवस्था में इसके अतिरिक्त और कुछ अन्तर नहीं है। प्रान्तों में रहनेवाले सैनिकों की संख्या अधिक है। प्रत्येक प्रान्त में अमीर, मन्सबदार, साधारण प्यादे और तोपख़ाने उपस्थित रहते हैं। एक दक्षिण प्रान्त में २५-३० सहस्र सवार रहते हैं, जो गोलकुण्डा के शक्ति-सम्पन्न बादशाह के धमकाने, और बादशाह-बीजापुर तथा उन राजाओं से लड़ने के लिये आवश्यक हैं, जो आपके बचाव के विचार से अपनी सेना लेकर बीजापुर के बादशाह से मिल जाते हैं। क़ाबुल-प्रान्त में जो सेना है, और जिसका ईरान, बिलोचिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान तथा अन्यान्य पहाड़ी देशों के विरोध और उपद्रवों की रोक-थाम करने के लिये रहना प्रयोजनीय है, वह सदाह

अथवा पन्द्रह सहस्र से कम नहीं हो सकती। काश्मीर में चार सहस्र से अधिक सैनिक, और बङ्गाल में, जहाँ सदैव लड़ाई-भिड़ाई रहा ही करती है, बहुत अधिक सेना रहती है। कोई प्रान्त ऐसा नहीं है,जहाँ उसकी लम्बाई, चौड़ाई और अवस्था के विचार से कम या अधिक सेना रखना आवश्यक न हो। इसलिये समग्र सैन्य की संख्या इतनी अधिक है, जिस पर सहसा विश्वास नहीं हो सकता। पैदल सेना को, जिसकी संख्या कम है, अलग रखकर और घोड़ों की उस संख्या को, जो नाम-मात्र के लिये है, और जिसको सुनकर अनजान आदमी धोखा खा सकता है, छोड़कर, मैं तथा दूसरे जानकार लोग अनुमान करते हैं कि वे सवार, जो बादशाह के साथ रहते हैं, राजपूतों और पठानों-समेत पैंतीस या चालीस हज़ार होंगे, जो प्रान्तीय सैनिकों के साथ मिलकर दो लाख से अधिक होजाते हैं।

इस बात का वर्णन् भी आवश्यक है कि अमीरों से लेकर सिपाहियों तक का वेतन के हर-दूसरे महीने बाँट दिया जाना प्रयोजनीय होता है; क्योंकि वेतन के सिवा, जो कि बादशाही ख़ज़ाने से मिलता है, कोई और द्वार उनके पेट पालने का नहीं है।

आगरे और देहली के अस्तबलों में दो या तीन सहस्र तो केवल अच्छे घोड़े ही हैं, जो आवश्यकता के लिये सदा तैयार रहते हैं, और आठ या नौ-सौ हाथी तथा बहुत-से टट्टू और ख़च्चर और मज़दूर भी होते हैं, जो इन असंख्य और बड़े लम्बे-चौड़े ख़ेमों और उनके साथ छोटे खेमों, तथा बेगमों और महल की अन्यान्य स्त्रियों, और सामान तथा बावर्चीख़ाने के असबाब और गंगा-जल आदि बहुत-सी वस्तुओं के उठाने के लिये होते हैं, जिनका यात्रा के समय बादशाह के साथ रहना आवश्यक रहता है।

औरंगज़ेब के समय की दिल्ली, क़िला और तत्कालीन नागरिकता का वर्णन भी 'बर्नियर' इस भाँति करता है:—

"यह शहरपनाह नगर और क़िले, दोनों को घेरे हुए है, तथा उसकी लम्बाई इतनी अधिक नहीं है, जितनी लोग समझते हैं; क्योंकि तीन घण्टे

मैं मैं उसके चारों ओर फिर आया हूँ। मेरे घोड़े की चाल एक फ्रान्सीसी 'लीग' या तीन मील प्रति घण्टे से अधिक न थी। मैं इसमें राजधानी के आस-पास की उन बस्तियों को नहीं मिलाता, जो बहुत दूर तक लाहौरी दरवाज़े की ओर चली गई हैं, और पुरानी देहली के उस बचे हुए भाग को, और उन तीन चार बस्तियों को भी नहीं मिलाता हूँ, जो राह के पास हैं; क्योंकि इन्हें भी उसी में मिलाने से शहर की लम्बाई इतनी बढ़ जाती है कि यदि शहर के बीचोबीच एक सीधी रेखा खींची जाय, तो वह साढ़े-चार मील से भी अधिक होगी। यद्यपि बाग़-आदि के बीच में आजाने के कारण मैं नहीं कह सकता कि नगर का ठीक व्यास कितना है,—पर फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि वह कुछ छोटा-मोटा नहीं है।

क़िला, जिसमें शाही महलसरा और मकान हैं, जिनका वर्णन मैं आगे चलकर करूँगा, अर्द्ध-गोलाकार-सा है। इसके सामने जमना नदी बहती है। क़िले की दीवार और जमना नदी के बीच में एक बड़ा मैदान है, जिसमें हाथियों की लड़ाई दिखाई जाती है, अमीर सरदारों और हिन्दू-राजाओं की फ़ौज बादशाह के देखने के लिये खड़ी की जाती है, जिन्हें बादशाह महल के झरोखों से देखता है।

क़िले की दीवार अपने पुराने ढंग के गोल बुर्जों के के कारण शहर-पनाह से मिलती-जुलती है। यह लाल पत्थर की ईंटों से बनी हुई है, जो संगमरमर से मिलता-जुलता है। इसीलिये शहरपनाह की अपेक्षा यह अधिक सुन्दर है। साथ-ही यह शहरपनाह से ऊँची और सुदृढ़ भी है। इस पर छोटी तोपें चढ़ी हुई हैं, जिनका मुँह नगर की ओर है। नदी की ओर को छोड़कर क़िले की सब ओर गहरी और पक्की खाई बनी हुई है। इसके बाँध मज़बूत पत्थर के बने हुए हैं। यह खाई हमेशा पानी से भरी रहती है, और इसमें मछलियाँ बहुत अधिकता से हैं। यद्यपि यह इमारत देखने में बहुत बड़ी मालूम होती है, पर वास्तव में यह दृढ़ नहीं है। मेरी समझ में एक साधारण तोपख़ाना इसे गिरा सकता है। इस खाई के निकट एक बहुत बड़ा बाग़ है, जिसमें बहुत सुन्दर और अच्छे फूल होते हैं। क़िले

की लाल रंग की दीवार। सामने होने के कारण यह बाग़ बहुत ही सुन्दर मालूम होता है। इसके सामने शाही चौक है, जिसके एक ओर क़िले का दरवाज़ा है, और दूसरी ओर शहर के दो बड़े बाज़ार आकर समाप्त होते हैं। जो नौकर प्रति सप्ताह यहाँ चौकी देने आते हैं, उनके ख़ेमे इसी मैदान में लगाये जाते हैं; क्योंकि यह लोग, जो एक प्रकार के छोटे बादशाह होते हैं, क़िले में रहना स्वीकार नहीं करते, और इसीलिये क़िले में उमरा और मन्सबदारों का पहरा होता है। इस जगह सवेरे बादशाही घोड़े फिराये जाते हैं, और वे उसके निकट ही एक बड़े अस्तबल में रहते हैं। इसी स्थान पर फ़ौज का मीरबख़्श नये सवारों के घोड़ों को देखता-भालता है, और तुर्की या और अच्छे मज़बूत घोड़ों की रान पर बादशाही तथा उस अमीर का निशान लगवा देता है, जिसकी फ़ौज में वे नौकर हों। इससे यह लाभ होता है, कि पेश करने के समय नये सवार इन्हीं घोड़ों को लेकर पेश नहीं कर सकते। इसी स्थान पर तरह-तरह की चीज़ों की बिक्री के लिये पेंठ लगती है। इसमें पेरिस के 'पॉण्ट-नि-योफ़' की तरह भानमती का-सा खेल दिखानेवाले हिन्दू तथा मुसलमान नजूमी इकट्ठे होते हैं। ये झूठे ज्योतिषी, धूप में एक मैला क़ालीन का टुकड़ा बिछाये बैठे रहते हैं। उनके सामने एक बड़ी-सी किताब खुली पड़ी रहती है, जिसमें ग्रहों के चित्र बने होते हैं, और सामने रमल फेंकने का पासा होता है। इसी प्रकार ये लोग राह-चलतों को धोखा देते और फुसलाते हैं। लोग उन्हें विद्वान् समझकर इनसे प्रश्न करते हैं। एक पैसा लेकर ये लोग उस बेचारे को उसका भविष्य बतला देते हैं, और उसके हाथ और मुँह को अच्छी तरह देख-भालकर उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि वे वास्तव में कुछ हिसाब लगा रहे हैं। किसी काम के आरम्भ करने के लिये समय पूछने पर ये लोग मुहूर्त बतलाते हैं। नासमझ स्त्रियाँ सिर से पैर तक सफ़ेद चादर ओढ़कर उनके निकट खड़ी रहती हैं। वे प्रायः अपनी सब बातों के सम्बन्ध में उनसे कुछ-न-कुछ पूछा करती हैं, और अपना सारा हाल इन्हें सुना देती है; ठीक वैसे ही—जैसे फ्रान्स में कोई भी पादरी के सामने क्षमा किये जाने के लिये अपने सारे दोष कह-सुनाती हैं। इन

मूर्खों को पूर्ण रूप से वह विश्वास होता है, कि ग्रहों के फलों को बदल देना इन्हीं ज्योतिषियों के हाथ में हैं। इनमें सब से विचित्र एक दोग़ला पुर्तगीज़ था—जो गोआ से भाग आया था। वह भी क़ालीन बिछाये हुए बड़े-ही शान्त भाव से बैठा रहता था। इसके पास बहुत-से लोग आया करते थे। यह व्यक्ति कुछ भी लिखा-पढ़ा नहीं था। इसके पास ज्योतिष के यंत्रों के स्थान में केवल एक पुराना जहाज़ी-दिग्दर्शक यन्त्र या क़ुतुबनुमा था, और ज्योतिष की पुस्तकों के स्थान में रोमन कैथलिक ईसाइयों की नमाज़ की दो पुरानी सचित्र पुस्तकें थीं। वह कहा करता था—योरोप में ग्रहों के चित्र ऐसे ही होते हैं। एक दिन एक पादरी फ़ादर क़ुजा ने यह बात सुनकर उससे प्रश्न किया कि तू यह क्या कहता है। उसने निर्लज्जता से उत्तर दिया—"ऐसे मूर्खों का ज्योतिषी भी ऐसा ही होना चाहिये।"

यह हाल उन ग़रीब ज्योतिषियों का है, जो बाज़ारों में बैठे दिखाई देते हैं। पर जो ज्योतिषी अमीरों के पास जाते हैं, वे बहुत ही विद्वान् समझे जाते हैं। यों-ही ये लोग धनवान् बन जाते हैं। सारा एशिया इस व्यर्थ के वहम में फँसा हुआ है। स्वयं बादशाह तथा और बड़े-बड़े अमीर इन धोखेबाज़ भविष्य-वक्ताओं को लम्बे-चौड़े वेतन देते हैं, और बिना इनकी सलाह के साधारण काम भी आरम्भ नहीं करते। मानो यह नजूमी भविष्य की सारी बातें जानते हैं। प्रत्येक काम के आरम्भ करने के लिये उत्तम समय नियत करते और कुरान के पन्ने उलट-पलटकर सब प्रश्नों का उत्तर दे देते हैं। दिन के समय यही लोग बारों पर बैठकर व्यापार और सराफ़े का अपना-अपना काम करते हैं, और ग्राहकों को माल दिखाते हैं। इन बरामदों के पीछे असबाब-आदि रखने के लिये कोठियाँ बनी हुई हैं, जिनमें रात के समय सारा असबाब रख दिया जाता है। इनके ऊपर व्यापारियों के रहने के लिये मकान बने हुए हैं, जो बाज़ार में देखने पर बहुत-ही सुन्दर मालूम होते हैं। ये मकान हवादार होते हैं, और इनमें गर्द या धूल बिलकुल नहीं आती।

यद्यपि शहर के भिन्न-भिन्न भागों में भी दुकानों के ऊपर इसी प्रकार के मकान होते हैं, पर वे इतने छोटे और नीचे होते हैं, कि बाज़ार से भली भाँति दिखाई नहीं देते। धनिक व्यापारी दूकानों पर नहीं सोते। वरन् रात को काम कर चुकने पर अपने-अपने मकानों को, जो शहर में होते हैं—चले जाते हैं।

इनके अतिरिक्त पाँच और बाज़ार हैं। यद्यपि उनकी बनावट-आदि वैसी ही है, पर वे इतने लम्बे और सीधे नहीं हैं। और भी बहुत-से छोटे-छोटे बाज़ार हैं, जो एक दूसरे को काटते हुए चले जाते हैं। यद्यपि उनके सामने की इमारतें महराब के ढंग की हैं, तथापि वे ऐसे लोगों के हाथ की बनी हुई होने के कारण, जिन्हें इमारत के सुडौल होने का कोई विचार नहीं था, इतनी सुन्दर, चौड़ी और सीधी नहीं हैं, जितने वह बाज़ार हैं, जिनका वर्णन् मैंने अभी ऊपर किया है। शहर के गली-कूचों में मन्सबदारों, हाकिमों और धनी व्यापारियों के मकान हैं। उनमें भी बहुधा अच्छे और सुन्दर हैं।

ईंट या पत्थर के बने मकान बहुत ही कम हैं; कच्चे या घास-फूस के घर अधिक हैं। इतना होने पर भी वे सुन्दर और हवादार हैं। बहुत-से मकानों में चौक और बाग़ होते हैं। इनमें सब प्रकार की सुख-सामग्री वर्तमान रहती हैं। जो मकान घास-फूस के बने होते हैं, वह भी अच्छी सफ़ेदी किये हुए होते हैं। इनमें साधारण नौकर, खिदमतगार और नानबाई-आदि जो बादशाह के लश्कर के साथ जाया करते हैं—रहते हैं। इन्हीं के कारण नगर में प्रायः आग लगती है। गत वर्ष तीन बार ऐसी आग लगी कि तेज़ हवा के कारण, जो यहाँ गरमी के दिनों में चला करती है, कोई ६० हज़ार छप्पर जलकर ख़ाक हो गये, और कुछ ऊँट, घोड़े तथा परदेदार स्त्रियाँ भी इसमें जल-भुनकर राख हो गईं। यह स्त्रियाँ कुछ ऐसी लजीली होती हैं, कि पुरुषों के सामने मुँह छिपाने के सिवा और कुछ इनसे होता ही नहीं। इसी लिये, जो स्त्रियाँ आग लगने के कारण जल मरीं, उनमें इतना साहस नहीं था, कि भागकर बच जायें। इन कच्चे और घास-फूस के मकानों के कारण ही मैं समझता हूँ, कि देहली कुछ देहातों का समूह या फ़ौज की

छावनी है, पर भेद इतना है कि यहाँ कुछ थोड़ा- सा सामान आराम का भी है।

अमरों के मकान प्रायः नदी के किनारे और शहर के बाहर हैं। इस गरम देश में भी वही मकान अच्छा समझा जाता है, जिसमें सब प्रकार का आराम मिले, और चारों ओर से—विशेषतया उत्तर की दिशा से—खुली हवा आती हो। यहाँ वही मकान अच्छे कहे जाते हैं, जिनमें एक अच्छा बाग़, पेड़ और हौज़ हो, और दालान या दरवाज़े में छोटे-छोटे फ़ौव्वारे या तहख़ाने हों। इन तहख़ानों में बड़े बड़े पंखे लगे होते हैं। और गर्मी के दिनों में सन्ध्या को (दोपहर से चार या पाँच बजे तक हवा ऐसी गर्म होती है, कि साँस नहीं लिया जाता) यहाँ बहुत आराम मिलता है, पर तहख़ानों की अपेक्षा लोग, ख़स ख़ानों को अधिक पसन्द करते हैं। यह छोटे-छोटे ख़ास कमरे होते हैं, जो एक प्रकार की ख़ुशबूदार घास की जड़ों से, बाग़ में हौज़ के निकट इस अभिप्राय से बनाये जाते हैं, कि नौकर चमड़े की डोलचियों में भर-भरकर अच्छी तरह उन पर पानी छिड़कें, और उन्हें तर कर सकें।

जिस मकान के चारों ओर ऊँचे-ऊँचे दालान हों, और वे किसी बाग़ के अन्दर बने हों,—तो बहुत अधिक पसन्द किये जाते हैं। वास्तव में कोई बढ़िया मकान ऐसा नहीं है, जिसमें घरवालों के सोने के लिये आँगन न हों। वर्षा या आँधी के समय या सवेरे, जब ठण्डी हवा चलती हो—ओस पड़ने लगती है, तो पलँग को खसकाकर अन्दर कर लेते हैं। यह ओस यद्यपि अधिक नहीं होती, तो भी बदन में पैठ जाती है, तो कभी-कभी हाथ-पाँव ऐंठ जाते हैं।

अच्छे घरों में बैठने के लिये फ़र्श के ऊपर रुई का एक भारी और चार अंगुल मोटा गद्दा बिछा रहता है, जिस पर गर्मी के दिनों में अच्छा कपड़ा (चाँदनी) और जाड़े के दिनों में रेशमी क़ालीन बिछाया जाता है। इस दीवानख़ाने में अच्छे स्थान पर दो छोटे गद्दे पड़े रहते हैं, जिन पर रेशम की हल्के काम की सुज़नी—जिसमें सुनहरी और रुपहली ज़री की

आरियाँ होती हैं, पड़ी रहती हैं। इस पर मालिक या और प्रतिष्ठित लोग, जो उनसे मिलने आते हैं, बैठते हैं। प्रत्येक गद्दे पर कमख़्वाब का एक तकिया पड़ा रहता है। इसके अतिरिक्त और लोगों के लिये दालान में इधर-उधर मख़मली और फूलदार रेशमी तकिये पड़े रहते हैं। ज़मीन से डेढ़ या दो गज़ ऊँचाई पर भाँति-भाँति के सुन्दर ताक़ बने होते हैं, जिनमें चीनी के बर्तन और गुलदान रक्खे जाते हैं। दालान की छत पर बेल-बूटे बने होते हैं, और उन पर मुलम्मा किया हुआ होता है। पर मनुष्य या किसी और जीवित पदार्थ की तस्वीर उस पर नहीं होती; क्योंकि यह बात मुसलमानी धर्म में वर्जित है।

भारतवर्ष के एक अच्छे मकान का यह पूरा वर्णन है। दिल्ली में ऐसे बहुत-से मकान हैं। मैं समझता हूँ कि भारतवर्ष की राजधानी के मकान, यद्यपि योरोप के मकानों से उनकी समानता नहीं हो सकती, सुन्दरता में किसी प्रकार कम नहीं हैं। वास्तव में योरोप के शहरों की सुन्दरता का कारण है, वे बड़ी-बड़ी शानदार दूकानें, जिनका दिल्ली में अभाव है। यह शहर एक बड़े और ज़बरदस्त बादशाह के दर्बार का स्थान है, जहाँ पर बहुमूल्य चीज़ों की अच्छी दुकानों का होना एक आवश्यक बात है। पर, फिर भी यहाँ कोई ऐसा बाज़ार नहीं है—जैसा हमारे यहाँ 'सेण्ट-डेनिस' है, और जिसकी समानता का बाज़ार कदाचित् एशिया-भर में न होगा।

बहुमूल्य वस्तुएँ यहाँ प्रायः मालख़ानों में रखी रहती हैं, और इङ्गलैण्ड की तरह भड़कदार और बहुमूल्य असबाबों से दुकानें शायद ही कभी सजाई जाती हों। यदि किसी एक दूकान में पशमीना, कमख़्वाब ज़रीदार मन्दीलें, और रेशमी कपड़े आदि हैं, तो पास ही कोई पचीस दुकानों में चावल, दाल, घी, तेल और गेहूँ आदि अनेक प्रकार के अनाज—जो न-केवल शाकाहारी हिन्दुओं ही के खाद्य-पदार्थ हैं, वरन् ग़रीब मुसलमान और बहुत-से सिपाही भी यही खाते हैं—बोरियों में भरे हुए रखे रहते हैं। हाँ, एक बाज़ार ऐसा है, जिसमें केवल मेवा बिकता है। गर्मी के दिनों में इन दुकानों में ईरान, बलख़, बुख़ारा और समरक़न्द के मेवे बादाम, पिस्ता, किशमिश, बेर,

शफ़तालू और अनेक प्रकार के सूखे फल और जाड़े के दिनों में रुई की तह में लपेटे हुए बढ़िया ताज़े अँगूर, जो विदेशों से आते हैं, और नाशपाती तथा कई प्रकार के अच्छे सेव और सर्दे, जो जाड़ों-भर बिकते हैं, होते हैं। ये मेवे मँहगे मिलते हैं। इनके मँहगेपन का अन्दाज़ा आप इसी से लगा सकते हैं कि एक सर्दा पौने चार रुपये को मिलता है। इतना मँहगा होने पर भी यहाँ के लोग और मेवों की अपेक्षा इसे अधिक पसन्द करते हैं। अमीर लोग इसे बहुत अधिक ख़रीदते हैं। मुझे अच्छी तरह याद है कि मेरे आग़ा के यहाँ सवेरे भोजन के समय ५०) रु० के मेवे आते थे। गर्मी के दिनों में देसी ख़रबूजे बहुत सस्ते मिलते हैं। पर ये कुछ अधिक स्वादिष्ट नहीं होते। हाँ, वे ख़रबूजे, जिनका बीज ईरान से मँगवाया और यहाँ बोया जाता है, (प्रायः अमीर लोग ऐसा ही करते हैं) बहुत अच्छे होते हैं। इतना होने पर भी अच्छे और स्वादिष्ट ख़रबूजे यहाँ बहुत कम मिलते हैं; क्योंकि यहाँ की ज़मीन इनके अनुकूल नहीं है। गर्मी के दिनों में आम यहाँ बहुत सस्ते और अधिकता से मिलते हैं। पर देहली में जो आम पैदा होता है, वह न तो कुछ ऐसा अच्छा होता है और न बुरा। सब से अच्छा आम बंगाल, गोलकुण्डा और गोंडा से आता है, जो वास्तव में बहुत अच्छा होता है, और जिसकी बराबरी कोई मिठाई भी नहीं कर सकती। तरबूज़ यहाँ बारहों-मास रहता है। पर जो तरबूज़ देहली में पैदा होता है, वह नरम और फीका होता है। इसकी रङ्गत भी अच्छी नहीं होती। पर अमीरों के यहाँ कभी-कभी बहुत ही स्वादिष्ट तरबूज़ देखने में आते हैं, जो इसके लिये बहुत धन व्यय करके बाहर से बीज मँगवाकर बड़ी सावधानी से पेड़ लगवाते हैं।

शहर में हलवाइयों की दूकानें अधिकता से हैं। पर मिठाई इनमें अच्छी नहीं बनती। उन पर गर्द पड़ी होती है, और मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं। नानबाई भी बहुत हैं। पर यहाँ के तँदूर हमारे यहाँ के तँदूरों से बहुत ही भिन्न और बड़े होते हैं। इसी कारण रोटी न अच्छी होती है, और न भली भाँति सिकी हुई। पर जो रोटी क़िले में बिकती है, वह कुछ

अच्छी होती है। अमीर लोग तो अपने मकानों ही पर रोटियाँ बनवा लेते हैं। उनमें दूध, मक्खन और अण्डा डाला जाता है। इससे वह और भी स्वादिष्ट हो जाती हैं। यद्यपि वह बहुत फूल जाती है, पर स्वाद उसका जली हुई रोटी-सा होता है। यह रोटी साधारण से लेकर विलायती चपाती की तरह होती है, पर पैरिस की 'गौलिबन' (एक प्रकार की रोटी)-सी स्वादिष्ट नहीं होती। बाज़ार में बहुत तरह का कबाब और कलिया बिकता है, पर मुझे विश्वास नहीं कि वह किसी अच्छे जानवर का मांस हो; क्योंकि मैं जानता हूँ कि कभी-कभी यह मांस ऊँट, घोड़े या बीमार पशुओं का भी होता है, और इसीलिये जो चीज़ें अपने मकान पर न बनाई जाँय, वे कभी खाने और व्यवहार में लाने के योग्य नहीं होतीं। दिल्ली की प्रत्येक गली में मांस बिकता है। पर कभी बकरी के धोखे में भेड़ का भी मांस दे देते हैं। इसलिये इन सबों को अच्छी तरह देख-भालकर लेना-खाना चाहिये। यद्यपि बकरी वा अन्य ऐसे पशुओं के मांस का स्वाद बुरा नहीं होता, पर वह कुछ गर्म होता है, तथा बादी करता और देर में पचता है। बकरी के बच्चे का मांस सब से अच्छा होता है। पर वह बाज़ार में नहीं मिलता। इससे जीवित बच्चा ख़रीदना पड़ता है। बड़ी कठिनता तो यहाँ यह है कि सुबह का मांस शाम तक नहीं ठहरता। दूसरी यह कि जानवर दुबले मिलते हैं, जिससे उनके मांस का स्वाद बिगड़ जाता है। बाज़ार में क़साइयों की दूकानों पर भी दुबली बकरियों का मांस मिलता है, जो बहुधा कठोर होता है। पर मैं इन सब कष्टों से बचा हुआ हूँ। कारण यह है कि मैं इन लोगों के फन्दों से परिचित हूँ, और इसलिये अपने खाने का मूल्य बादशाह के बावर्चीख़ाने के दारोग़ा के पास क़िले में अपने नौकर के हाथ भेज देता हूँ, और वह मुझे ख़ुशी से अच्छा भोजन देते हैं। यद्यपि इन चीज़ों पर उनकी लागत बहुत ही कम आती है, पर मैं उन्हें मूल्य कुछ अधिक देता हूँ। मैंने एक दिन अपने आग़ा से इस चोरी और चालाकी के विषय में कहा भी—जिस पर वह बहुत हँसा। फ्रान्स में मैं ।।) में बादशाही भोजन कर लिया करता था। पर यहाँ यदि ऐसी चालाकी न करता, तो कदाचित्

१७२) रु० में, जो मुझे मेरे भाग्य की सरकार से मिलते हैं, मेरा गुज़ारा कभी न होता और मैं भूखों मर जाता।

इस देश के लोगों में दया अधिक है, और इसी कारण मुर्गी बाज़ार में दिखाई नहीं देती। पर नहीं मालूम, यह दया उन मनुष्यों के भाग्य में क्यों नहीं होती, जो ज़माने मकानों के लिये खोजा बनाता है। चिड़ियाँ बाज़ार में अनेक प्रकार की अच्छी और सस्ती मिलती हैं। यहाँ हर प्रकार की छोटी मुर्गी, जिसका चमड़ा काला होता है, और जिसका नाम मैंने 'जिप्सी' रक्खा है, मिलती है। कबूतर भी मिलते हैं, पर बच्चे नहीं मिलते। इसका कारण यही है, कि यहाँ के लोग बच्चों को मारना बड़ी निष्ठुरता का कार्य समझते हैं। तीतर भी मिलते हैं, जो हमारे देश के तीतरों से छोटे होते हैं। किन्तु जाल में फाँसकर और पिंजरे में बन्द करके लाये जाने के कारण वे ऐसे अच्छे नहीं होते, जैसे और अनेक पशु। यही अवस्था यहाँ मुर्गियों और खरगोशों की होती है, जो जीवित पकड़े जाकर पिंजरों में भरे हुए शहर में आते हैं। देहली के मछुए अपने कार्य में कुछ ऐसे चतुर नहीं हैं। पर फिर भी मछलियाँ कभी-कभी बाज़ारों में अच्छी बिकती हैं;—विशेषकर सिघाड़ी, जो अपने यहाँ की 'कार्प' के समान होती है—अच्छी होती है। जाड़े के दिनों में मछुए मछलियाँ कम पकड़ते हैं। कारण कि, यहाँ के लोग सर्दी से उतना ही डरते हैं, जितने हम लोग जाड़े के दिनों में गर्मी से! यदि कोई मछली बाज़ार में दिखलाई दे, तो ख़्वाजासरा उसे स्वयं ख़रीद लेते हैं। वे लोग इसे बहुत पसंद करते हैं। परन्तु इसका कोई विशेष कारण मुझे अब तक मालूम नहीं हुआ। अमीर लोग अपने कोड़ों के बल, जो उनके दरवाज़े पर इसी कार्य के लिये लटकते रहते हैं—जाड़े के दिनों में प्रायः मछली पकड़वाया करते हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि यहाँ के धनी लोगों को हमेशा अच्छी चीज़ें मिला करती हैं; पर इसका कारण केवल रुपया और उनके पास बहुत-से नौकरों का रहना ही है। देहली में साधारण स्थिति के लोग नहीं रहते। बड़े-बड़े अमीर, उमरा और रईस बिलकुल ही कम हैं। ऐसी हैसियत के लोग—जिनका जीवन कष्ट से बीतता है,

अधिक रहते हैं। यद्यपि मुझे यहाँ अच्छा वेतन मिलता है, परन्तु सामान जो मिलता भी है, वह बहुत ही रद्दी और केवल वही, जोकि अमीर लोगों के नापसन्द होने के कारण बच रहता है। मदिरा, जो हमारे यहाँ भोजन का प्रधान अङ्ग है—दिल्ली की किसी दुकान में नहीं मिलती। जो मदिरा यहाँ देशी अंगूर की बन सकती है, वह भी नहीं मिलती; क्योंकि मुसलमानों की क़ुरान और हिन्दुओं के शास्त्रों में उसका पीना वर्जित है। मुग़ल-राज्य में भी जो मदिरा शीराज़ या कनारी टापू से आती है, अच्छी होती है। शीराज़ी मदिरा ईरान से ख़ुश्की के रास्ते—'बन्दर-अब्बास' और वहाँ के जहाज़ के द्वारा सूरत में पहुँचती और फिर वहाँ से दिल्ली आती है। शीराज़ से देहली तक मदिरा आने में छः दिन लगते हैं। कनारी टापू से मदिरा सूरत होती हुई दिल्ली आती है। पर यह दोनों मदिरायें इतनी मँहगी होती हैं कि इनका मूल्य ही इन्हें, बदमज़ा कर देता है। एक शीशी, जो तीन अँग्रेज़ी बोतलों के बराबर होती है, १४) या १८) रुपये में आती है। जो मदिरा इस देश में बनती है, जिसे यह लोग अर्क़ कहते हैं—वह बहुत ही तेज़ होती है। यह भभके में खींचकर गुड़ से बनाई जाती है, और बाज़ार में नहीं बिकने पाती। धर्म-विरुद्ध होने के कारण अँग्रेज़ों व ईसाइयों के अतिरिक्त इसे कोई नहीं पी सकता। यह अर्क़ ठीक वैसा ही है, जैसा कि पोलैण्ड के लोग अनाज से बनाते हैं, और जिसे परिमाण से ज़रा भी अधिक पीजाने से मनुष्य बीमार पड़ जाता है। समझदार आदमी तो यहाँ सादा पानी पियेगा या नीबू का शरबत, जो यहाँ सहज ही मिल जाता है, और जो हानिकारक भी नहीं होता। इस गर्म देश में लोगों को मदिरा की आवश्यकता भी नहीं होती। मदिरा न पीने और बराबर पसीने आते रहने के कारण यहाँ के लोग सर्दी, बुख़ार, पीठ का दर्द-आदि रोगों से बचे रहते हैं, और जो ऐसे रोगी यहाँ आते हैं, वह शीघ्र-ही अच्छे भी होजाते हैं, जिसकी मैं स्वयं परीक्षा कर चुका हूँ।

चित्रकारी और नक़्क़ाशी करने का काम तो यहाँ ऐसा उत्तम और बारीक होता है, जिसे देखकर मैं चकित होगया। अकबर बादशाह की एक

बड़ी लम्बाई की तस्वीर, एक चित्रकार ने सात वर्ष में, एक ढाल पर बनाई थी। उसे देखकर मैं हैरान रह गया। परन्तु भारतीय चित्रकार मुँह तथा किसी अन्य अंगों द्वारा उन भावों को व्यक्त नहीं कर पाते, जो पात्र की चित्रित दशा में हुआ करते हैं। यदि इन्हें इसकी पूर्ण रूप से शिक्षा दी जाये, तो यह इस दोष से मुक्त हो सकते हैं। हाँ, इससे स्पष्ट प्रकट है कि भारत में बहुत अच्छी-अच्छी चीज़ों का न होना, वहाँ के लोगों की अयोग्यता के कारण नहीं, वरन् शिक्षा के अभाव से है। यह भी स्पष्ट है कि यदि इन लोगों को उत्साह दिलाया जाय, तो भारत में उत्कृष्ट कलाओं का प्रादुर्भाव सहज ही में हो सकता है। कारीगरों को यहाँ इनके कला-कौशल का यथोचित पुरस्कार नहीं मिलता, बल्कि उनके साथ कठोरता का व्यवहार होता है।

धनी लोग सब वस्तुएँ सस्ते मूल्य पर लेना चाहते हैं। जब किसी अमीर को कारीगर की आवश्यकता होती है, तो वह उन्हें बाज़ार से पकड़वा मँगाता है, और उस बेचारे से ज़बरदस्ती काम लिया जाता है, तथा चीज़ तय्यार हो जाने पर उसके योग्यतानुसार नहीं, किन्तु अपनी इच्छानुसार उसे मज़दूरी देता है। कारीगर कोड़ों की मार खाने से ही बच जाने में अपना अहोभाग्य समझता है। तब ऐसी अवस्था में यह कब सम्भव है, कि कोई कारीगर अच्छी और सुन्दर चीज़ें बनाने की चेष्टा कर सके?

क़िले के दरवाज़े पर कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसका वर्णन् किया जाय। हाँ, उसके दोनों ओर दो पत्थर के बड़े-बड़े हाथी बनाकर खड़े कर दिये गये हैं, जिनमें से एक पर चित्तौर के सुविख्यात राजा जयमल और दूसरे पर उनके भाई फत्ता की मूर्ति बनी है। यह दोनों वीर बड़े पराक्रमी थे। इनकी माता इनसे भी अधिक बहादुर थीं। यह दोनों भाई अकबर के साथ बड़ी बहादुरी से लड़े थे, कि उनका नाम प्रलय तक संसार में अमर रहेगा। जिस समय शाहन्शाह अकबर ने इनके नगर को चारों ओर से घेर लिया था, इन्होंने बड़ी वीरता से उसका सामना किया, और इतने बड़े बादशाह के सामने भी पराजय स्वीकार करने की अपेक्षा उन्होंने, तथा

उनकी वीरांगना माता ने, रण-भूमि में अपने प्राण विसर्जन कर दिये। यही कारण है, जो उनके शत्रुओं ने भी उनकी इन मूर्तियों को चिन्ह-स्वरूप स्थापित रखना अपना सौभाग्य समझा। वह दोनों हाथी—जिन पर यह दोनों वीर बैठे हैं, बड़े शानदार हैं। इन्हें देखकर मेरे मन में ऐसा आतङ्क उठा, जिसका वर्णन् मैं नहीं कर सकता।

इस फाटक से होकर क़िले में जाने पर एक लम्बी-चौड़ी सड़क मिलती है, जिसके बीचो-बीच पानी की एक नहर बहती है, और उसके दोनों ओर पाँच या छः फ़ान्सीसी फ़ुट ऊँचा और प्रायः चार फ़ुट चौड़ा चबूतरा पेरिस के 'पॉयटनियोफ़' की भाँति बना हुआ है। इसको छोड़कर दोनों ओर बराबर महराबदार दालान बनते चले गये हैं। जिनमें भिन्न-भिन्न विभागों के दारोग़ा और छोटी श्रेणी के ओहदेदार बैठे हुए अपना काम करते रहते हैं, और वह मन्सबदार भी, जो रात के साथ पहरा देने आते हैं, यहीं ठहरते हैं। पर इनके नीचे से आने-जानेवाले सवारों और साधारण लोगों को इससे कोई कष्ट नहीं होता।

क़िले की दूसरी ओर के फाटक के अन्दर और भी ऐसी-ही लम्बी-चौड़ी सड़क है। उसके भी दोनों ओर ऐसे-ही चबूतरे हैं। पर मेहराबदार दालानों के स्थान में वहाँ दुकानें बनी हुई हैं। सच पूछिये, तो यह एक बाज़ार है, जो लदाव की छत के कारण, जिसमें ऊपर की ओर हवा और प्रकाश के लिये रोशनदान बने हुए हैं, गर्मी और बरसात के काम की जगह है।

इन दोनों सड़कों के अतिरिक्त इसके दाहिनी और बाईं ओर भी अनेक छोटी-छोटी सड़कें हैं, जो उन मकानों की ओर जाती हैं, जहाँ नियमानुसार उमरा लोग सप्ताह में बारी-बारी से पहरा दिया करते हैं। यह मकान, जहाँ उमरा लोग चौकी देते हैं, अच्छे हैं। इनके सहन में छोटे-छोटे बाग़ हैं, जिनमें छोटी-छोटी नहरें, हौज़ और फ़व्वारे बने हुए हैं। जिस अमीर की नौकरी होती है, उसके लिये भोजन शाही ख़ज़ाने से आता है। जब भोजन आता है, तो अमीर को धन्यवाद और सम्मान-स्वरूप महल की

ओर मुँह करके तीन बार आदाब बजा लाना, अर्थात् ज़मीन तक हाथ ले जाकर माथे तक ले आना होता है। इनके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न स्थानों में सरकारी दफ़्तर के लिये दीवानख़ाने बने हुए हैं, और ख़ेमे लगे हुए हैं, जिनके प्रत्येक भाग में किसी अच्छे कारीगर की निगरानी में काम हुआ करता है। किसी में चिकनदोज़ और ज़रदोज़-आदि काम करते हैं, किसी में सुनार, किसी में चित्रकार और नक़्क़ाश, किसी में रंगसाज़, बढ़ई और खरादी, किसी में दर्ज़ी और मोची, किसी में कमख़ाब और मख़मल बुननेवाले और जुलाहे, जो पगड़ियाँ, कमर के बाँधने के फूलदार पटके और ज़नाने पायजामों के लिये बारीक कपड़ा बनाते हैं—बैठते हैं। यह कपड़ा इतना महीन होता है, कि एक ही रात व्यवहार में लाने से बे-काम हो जाता है। यह २५) ३०) मूल्य का होता है। जब इस पर सुई से बढ़िया ज़री का काम किया जाता है, तो इसका मूल्य और भी अधिक हो जाता है। यह सब कारीगर सबेरे से आकर अपना-अपना काम करते हैं, और शाम को अपने घर चले जाते हैं। इसी दिनचर्या में इन लोगों का जीवन व्यतीत हो जाता है। जिस अवस्था में यह लोग जन्म लेते हैं, उसमें उन्नतिशील होने की चेष्टा तक नहीं करते। चिकनदोज़-आदि अपनी सन्तान को अपना-ही काम सिखलाते हैं। सुनार का लड़का सुनार-ही होता है। शहर का हकीम अपने पुत्र को हकीमी ही सिखलाता है। यहाँ तक कि कोई व्यक्ति अपने लड़के या लड़की का विवाह अपने पेशेवालों के अतिरिक्त और किसी के घर नहीं करता। इस नियम का पालन मुसलमान भी वैसा-ही करते हैं, जैसाकि हिन्दू; जिनके शास्त्रों की यह आज्ञा है। इसी कारण से बहुत-सी सुन्दर लड़कियाँ कुमारी ही रह जाती हैं। उनके माता-पिता यदि चाहें, तो उन लड़कियों का विवाह बहुत अच्छी जगह हो सकता है।

अब मैं दरबार ख़ास व आम का वर्णन उचित समझता हूँ—जो इन मकानों के आगे मिलता है। यह इमारत बहुत सुन्दर और अच्छी है। यह एक बड़ा-सा मकान है, जिसके चारों ओर महराबें हैं, और यह 'पैलेस-रॉयल' से मिलता है। पर भेद इतना ही है कि इसके ऊपर कुछ इमारत

नहीं है। इसकी महराबें ऐसी बनी हुई है कि एक महराब से दूसरी महराब में आ सकते हैं। इसके सामने एक बड़ा दरवाज़ा है, जिसके ऊपर नक़्क़ारख़ाना बना हुआ है। इसमें शहनाई, नफ़ीरियाँ और नक़्क़ारे रक्खे हैं। इसी से लोग इसे नक़्क़ारख़ाना कहते हैं, जो दिन और रात को नियत समय पर बजाये जाते हैं। यह नक़्क़ारे एक-साथ बजाये जाते हैं। इसमें सब से बड़ी नफ़ीरी—जिसको 'करना' कहते हैं, ६ फ़ीट लम्बा है, और इसके नीचे का मुँह एक फ़ान्सीसी फुट से कम नहीं है। लोहे या पीतल के सब से छोटे नक़्क़ारे की गोलाई कम-से-कम छः फ़ीट है। इससे आप समझ सकते हैं, कि इस नक़्क़ारख़ाने से कितना शोर होता होगा। जब मैं पहले-पहल यहाँ आया, तो शोर के मारे कान बहरे हो गये। अभ्यास के कारण अब मैं उसे बड़े चाव से सुनता हूँ। विशेषतः रात के समय, जबकि मकान की छत पर लेटे हुए इसकी आवाज़ दूर से सुनाई देती है, तो बहुत-ही सुरीली और भली मालूम होती है। और यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है, कारण कि इसके बजानेवाले बचपन ही से इसकी शिक्षा पाते और इन बाजों की आवाज़ को ऊँचा नीचा करने और सुरीली तथा लय-पूर्ण बनाने में बड़े चतुर होते हैं। यदि यह नफ़ीरी दूर से सुनी जाय, तो अच्छी मालूम होती है। नक़्क़ारख़ाना शाही महल से बहुत दूर बना है, जिससे बादशाह को इसकी आवाज़ से कष्ट न हो।

नक़्क़ारख़ाने के दरवाजे के सामने सहन के आगे एक बड़ा दालान है, जिसकी छत सुनहरे काम की है। यह बहुत ऊँचा, हवादार और तीन ओर से खुला हुआ है। उस दीवार के बीचोंबीच, जो इसके और महल के मध्य में है, प्रायः ६ फ़ीट ऊँचा और १ फुट चौड़ा शहनशीन बना हुआ है, जहाँ नित्य दोपहर के समय बादशाह आकर बैठता है। उसके दाएँ-बाएँ शहज़ादे खड़े होते हैं, और ख़्वाज़ासरा या तो मोर्छल हिलाते हैं या बड़े-बड़े पंखे हिलाते हैं, और या बादशाह का हुकुम बजा लाने के लिये हाथ-बाँधे खड़े रहते हैं। तख़्त के नीचे चाँदी का जँगला लगा हुआ है, जिसमें उमरा, राजे तथा अन्य राजाओं के प्रतिनिधि हाथ-बाँधे और नीची आँखें किये बैठे

रहते हैं। तख़्त से कुछ दूर हटकर मन्सबदार या छोटे-छोटे उमरा खड़े रहते हैं। इसके अतिरिक्त जो स्थान ख़ाली बचता है, उसमें बड़े-छोटे अमीर-ग़रीब सब तरह के लोग भरे रहते हैं। केवल यही एक स्थान है, जहाँ बादशाह को सर्व-साधारण के आगे उपस्थित होने का सुअवसर मिलता है, और इसीलिये इसे आम व ख़ास कहते हैं। यहाँ डेढ़-दो घण्टे तक लोगों का सलाम व मुजरा होता रहता है। इसीलिये बादशाह के मुलाहज़े के लिये अच्छे-अच्छे सजे और सधे घोड़े पेश किये जाते हैं। इनके बाद हाथियों की बारी आती है, जिनकी मैली खाल ख़ूब नहला-धुलाकर साफ़ कर दी जाती है, और फिर स्याही से रंग दी जाती है। इनके सिर से लाल रङ्ग की लकीरें सूँड के नीचे तक खींच दी जाती है। फिर इन पर ज़री की झूलें पड़ती हैं, जिनमें चाँदी के घण्टे एक ज़ंजीर से बाँधकर उसके दोनों ओर लटका दिये जाते हैं। दो छोटे-छोटे हाथी, जो ख़ूब सजे होते हैं, ख़िदमतगारों की तरह इन बड़े हाथियों के दोनों ओर चलते हैं। यह हाथी झूम-झूमकर और सँभलकर पैर रखते हैं, इतराते हुए चलते हैं, और जब तख़्त के निकट पहुँचते हैं, तो महावत—जो उनकी गर्दन पर बैठा होता है अंकुश चुभोकर कुछ आज्ञा-सूचक शब्द कहता है। उस समय हाथी घुटने के बल बैठकर, सूँड ऊपर की ओर उठाकर चिङ्घाड़ता है, जिसे लोग उसका सलाम करना समझते हैं। इसके उपरान्त और-और जानवर पेश होते हैं। सिखाये हुए हरिन लड़ाये जाते हैं। नील गाय, गैंडे और बंगाल के बड़े-बड़े भैंसे भी लाये जाते हैं—जिनके सींग इतने लम्बे और तेज़ होते हैं, कि वे शेर के साथ लड़ सकते हैं। चीते, जिनसे हिरन का शिकार खेला जाता है, और अनेक प्रकार के शिकारी कुत्ते, जो बुख़ारा-आदि से आते हैं, जिनके बदन पर लाल रंग की झूलें पड़ी होती हैं पेश होते हैं। अन्त में शिकारी पक्षी, जैसे बाज़, शिकरे-आदि, जो तीतर और ख़रगोश को पकड़ते हैं, पेश किये जाते हैं। कहते हैं, यह पक्षी हिरन पर भी छोड़े जाते हैं; जिन पर यह बहुत तेज़ी से झपटते और पंजे मार-मारकर उन्हें अन्धा कर देते हैं। इन सब के पेश हो जाने के बाद कभी-कभी दो अमीरों के सवार भी पेश किये

जाते हैं, जिनके कपड़े और समय की अपेक्षा अधिक बहुमूल्य और सुन्दर होते हैं। इनके घोड़ों पर पाखरें पड़ी होती हैं। तरह-तरह के ज़ेवर, जैसे— हैकल, झुनझुने-आदि, से यह सजे होते हैं। बहुधा बादशाह की प्रसन्नता के लिये अनेक खेल किये जाते हैं। मरी हुई भेड़ें, जिनका पेट साफ़ करके फिर सी दिया जाता है, बीच में रख दी जाती हैं। उमरा मन्सबदार, गुर्जबर्दार और नेज़ा बर्दार, उन पर तलवार से अपना करतब दिखलाते हैं, और एक-ही हाथ में उन्हें काटने की चेष्टा करते हैं। यह सब खेल दरबार के आरम्भ में हुआ करते हैं। इसके बाद राज्य-सम्बन्धी अनेक मामले पेश होते हैं। फिर बादशाह सब सवारों को बड़े गौरव से देखता है। जब से लड़ाई बन्द हुई, कोई सवार या पैदल ऐसा नहीं है, जिसे बादशाह ने स्वयं न देखा हो। बहुतों का वेतन बादशाह स्वयं बढ़ाता, अनेकों का कम करता, और कइयों को बिल्कुल ही मौकूफ़ कर देता है,

इस अवसर पर सर्व-साधारण जो अर्ज़ियाँ पेश करते हैं, वह सब बादशाह के कानों तक पहुँचती हैं, और बादशाह स्वयं लोगों से उनके दुःख के विषय में पूछता और उसके निवारण के उपाय करता है। इनमें से दस अर्ज़ियाँ देने वाले चुनकर सप्ताह में १ दिन बादशाह के सामने पेश किये जाते हैं, और उस दिन बादशाह पूरे दो घण्टों तक वह अर्ज़ियाँ सुना करता है।

इन अर्ज़ी देनेवाले व्यक्तियों के चुनने का काम अमीर के सुपुर्द है। इनका फ़ैसला बादशाह शहर के दो क़ाज़ियों के साथ 'अदालतख़ाना' नामक कमरे में बैठकर करता है; और इसमें कभी नाग़ा नहीं होती। इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि वह एशिया के बादशाह, जिन्हें हम फ़िरंगी लोग मूर्ख और तुच्छ समझते हैं, अपनी प्रजा का न्याय करने में त्रुटि नहीं करते।

आम-ख़ास के बड़े दालान से सटा हुआ एक ख़िलवतख़ाना है, जिसे ग़ुस्लख़ाना कहते हैं। यहाँ बहुत कम आदमियों को जाने की आज्ञा है। यद्यपि यह आम व ख़ास के बराबर नहीं है, फिर भी बहुत ही बड़ा, सुन्दर और सुनहरे काम का है, और शहनशीन की तरह चार-पाँच फ़्रान्सीसी फ़ुट

ऊँचा है। यहाँ कुरसी पर बैठकर बादशाह—वज़ीरों से, जो इधर-उधर खड़े होते हैं, सलाह करता है, बड़े-बड़े अमीरों और सूबेदारों की अर्ज़ियाँ सुनता है, और अनेक गूढ़ राज्य-कार्य करता है। यद्यपि गुस्लख़ाने के दरबार में यही बात होती है, जो मैंने अभी कही है, पर आम व ख़ास की तरह यहाँ भी अधिकांश जानवरों आदि का मुलाहज़ा होता है। हाँ, रात हो जाने के कारण और सामने सहन के छोटे हो जाने के कारण अमीरों के रिसालों का मुलाहज़ा नहीं हो सकता। इस समय के दरबार में यह विशेषता है, कि वह मन्सबदार, जिनकी उस दिन चौकी की बारी होती है, बड़ी-ही शिष्टता और अदब के साथ सामने से सलाम करते हुए गुज़र जाते हैं। इनके आगे लोग हाथों में 'कौर' लिये हुए चलते हैं। यह 'कौर' बहुत-ही सुन्दर होते हैं, और चाँदी की छड़ियों के सिरे पर मढ़े होते हैं। इनमें से कुछ तो मछलियों की शक्ल के और हाथ और पंजे की तरह बने हुए होते हैं। इन लोगों में से बहुत से गुर्ज़बरदार होते हैं, जो हृष्ट-पुष्ट शरीर देखकर भर्ती किये जाते हैं, और जिनका काम है कि दरबार के समय हुल्लड़ या गड़बड़ न होने दें, तथा बादशाही आज्ञा-पत्र-आदि यथा-स्थान पहुँचा दें और बादशाह जो आज्ञा दे, बहुत शीघ्र उसका पालन करें।

---

(१२)

मुग़ल-साम्राज्य का ध्वंस

औरंगज़ेब के बाद उसका पुत्र मुअज़्ज़म आगरे में गद्दी पर बैठा। उसने अपनी उपाधि बहादुरशाह रखी। उसके छोटे भाई ने विद्रोह किया, पर वह क़ैद कर लिया गया। यह व्यक्ति उतना क्रूर न था। परन्तु, इस समय इस महान् साम्राज्य को सम्हालने की शक्ति भी उसमें न थी। इस समय मुग़ल-साम्राज्य का विस्तार इतना था, जितना पहले कभी न हुआ था।

इसने प्रजा को सन्तुष्ट करने की चेष्टा की। राजपूतों और मरहठों की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया। मरहठों को मुग़ल-प्रान्तों से चौथ लेने का भी अधिकार दे दिया। परन्तु सिक्खों से उसका समझौता नहीं हो सका। सिक्ख-लोग तूफ़ानी ढंग से बढ़ रहे थे। उन्होंने पूर्वी पंजाब और सरहद को जीत लिया था। उनका नेता बन्दा बड़ी वीरता दिखा रहा था। बादशाह को इनके विरुद्ध स्वयं यात्रा करनी पड़ी। यह बादशाह तीन ही वर्ष राज्य करके लाहौर में मर गया।

इसके बाद इसका छोटा पुत्र 'जहांदारशाह' के नाम से गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते-ही उसने सब सम्बन्धियों को तलवार के घाट उतारा। पर वह जितना ज़ालिम था, उतना-ही कायर भी था। वह सेनापति ज़ुल्फ़िक़ारख़ाँ के हाथ की कठपुतली था। ज़ुल्फ़िक़ारख़ाँ अच्छा सेनापति तो था, परन्तु अच्छा प्रबन्धक न था। अतः प्रजा में चारों तरफ़ कुप्रबन्ध तथा अत्याचारों के दौर होने लगे। दक्षिण में तो दाऊदख़ाँ ने हद करदी। अन्त में दक्षिण के हाकिम सैयद हसनअली और अवध के हाकिम अब्दुल्ला ने ज़ुल्फ़िक़ार को हटाकर बहादुरशाह के पोते फ़र्रुख़सियर को गद्दी पर बैठाया। यह अभागा ६ वर्ष गद्दी पर रह पाया, और जब तक रहा, तब तक दोनों सैयदों

के हाथ की कठपुतली बना रहा। इसके राज्य-काल में दक्षिण बिलकुल हाथ से निकल गया, और उसे मरहठों का करद राज्य स्वीकार कर लिया गया। इसी बादशाह ने अंग्रेज़ों को बंगाल में बिना चुंगी व्यापार करने का अधिकार दे दिया। सिक्ख-क़ैदी बन्दा, ७४० सिक्ख-क़ैदियों-सहित दिल्ली लाये गये, और अति क्रूरता से मारे गये। अन्त में दक्षिण का सैयद सूबेदार १०००० मरहठों को बालाजी विश्वनाथ पेशवा की अध्यक्षता में चढ़ा लाया, जिनके हाथों यह बादशाह मार डाला गया।

इसके बाद सैयदों ने एक और व्यक्ति को बादशाह बनाया, जिसे क्षय-रोग था। तीन मास ही बादशाह रहकर वह मर गया। फिर एक और व्यक्ति बादशाह बना। वह एक वर्ष राज्य करके मर गया। इस बीच में मुग़ल-प्रान्त एक-एक करके ख़त्म होगये। तब सैयदों ने बहादुरशाह के एक पोते मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाया, पर सैयदों के उपद्रव से तंग आकर इसने दो पराक्रमी सरदार सआदतख़ाँ और आसफ़जाह की सहायता से उन्हें मार डाला। इसके इनाम में सआदतख़ाँ को अवध की नवाबी दी गई, जिसे उस सरदार ने जल्द ही एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में सम्पादित कर लिया। तब से किसी ने भी अवध को फिर क़ब्ज़े में करने की चेष्टा नहीं की, और १३० वर्ष तक सआदत के वंशधर वहाँ की बादशाहत भोगते रहे।

इसके दो वर्ष बाद आसफ़जाह ने, जो इसका मन्त्री था, मन्त्री पद से इस्तीफ़ा दे दिया, और दक्षिण में जाकर हैदराबाद को राजधानी बना, नया राज्य स्थापित कर लिया। १० वर्ष तक वह मरहठों से लोहा लेता रहा और एक विख्यात राज्य पैदा कर दिया।

शिवाजी के वंशधर अब मुग़ल-सम्राट् से कर ग्रहण करते थे। शिवाजी के समय में राज्य-सत्ता बालाजी विश्वनाथ के हाथों मे पहुँच गई थी, जो पेशवा के नाम से प्रख्यात हुए। दूसरा पेशवा बाजीराव इतना सशंक हुआ कि उसके समय में महाराष्ट्र-शक्ति उन्नति के उच्च-शिखर पर पहुँच गई। शीघ्र ही मरहठों के तीन बड़े राज्य स्थापित होगये। सिन्धिया ग्वालियर में, होल्कर इन्दौर में, और गायकवाड़ बड़ौदे में।

तीनों सरदार शूद्र से क्षत्रिय-वर्ण में परिणित हुए। अन्त में मराठों की पूर्ण-शक्ति संगठित होकर दिल्ली पर चढ़ आई। बादशाह ने आसफ़ को सहायता के लिये लिखा। वह हैदराबाद से भारी सैन्य लेकर चला। भूपाल में बाजीराव ने ८० हज़ार सवार लेकर उससे लोहा लिया। निज़ाम की पूरी हार हुई, और उसने मालवा-प्रान्त मरहठों के हवाले कर दिया, तथा ५० लाख रुपये दिल्ली के ख़ज़ाने से दिलाने स्वीकार कर लिये। बाजीराव ने मालवा सिन्धिया और होलकर को इनाम में दे डाला।

अब नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। यह खुरासान का एक गड़रिया था, जिसने अपने बाहु-बल से ईरान का राज्य प्राप्त किया था। निज़ाम और सआदत ने उसे करनाल में रोकना चाहा, पर वे बुरी तरह हराये गये। दिल्ली के निकट पहुँचकर उसने बादशाह को लिखा—"दो करोड़ रुपये दो, वरना दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दूँगा।"

जब यह दूत दरबार में पहुँचा, तो बादशाह शराब पी रहा था, और शेर-ग़ज़लें गाई जा रही थीं। बादशाह स्वयं भी अपनी कविताएँ सुना रहे थे, और अमीर-उमरा उन्हें 'कलामुल्मुलूक लूकुलकलाह' कहकर झुक-झुककर सलामें झुका रहे थे। दूत ने ख़त दिया तो बादशाह ने वज़ीर से कहा—"पढ़ो क्या है?" वज़ीर ने पढ़ा और कहा—"हुज़ूर, ऐसे गुस्ताख़ी के अल्फ़ाज़ हैं कि जहाँपनाह के सुनने क़ाबिल नहीं।" बादशाह ने कहा—"ताहम—पढ़ो!" ख़त सुनकर कहा "क्या यह मुमकिन है, कि यह शख़्स दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दे?" ख़ुशामदी दरबारियों ने कहा—"हुज़ूर, क़तई नामुमकिन है।" तब बादशाह ने हुक्म दिया—'यह ख़त शराब की सुराही में डुबो दिया जाय, और इसके नाम पर एक-एक दौर चले।" जब दौर ख़तम हुआ तो दूत ने कहा—"हुज़ूर, बन्दे को क्या इरशाद है?" बादशाह ने हुक्म दिया—"पाँचसौ अशर्फ़ी और एक दुशाला इसे इनाम में दिया जाय।"

दूत चला गया और नादिरशाह तूफ़ान की भाँति दिल्ली में घुस आया। तब रङ्गीले बादशाह की आँखें खुलीं। उसने नगर पर और क़िले पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने सिर झुकाकर तख़्त उसकी नज़र

किया। कहते हैं कि उसने उसे हुक्म दिया महल की तमाम बेगमात और शाहज़ादियाँ उसके सामने हाज़िर की जाएँ। जब उसके हुक्म की तामील की गई और तमाम औरतें उसके सामने खड़ी कर दी गईं, तो उसने कमर से तलवार खोलकर तख़्त के एक किनारे रख दी, और आराम से तख़्त पर लेट गया। कुछ देर बाद वह उठा और लाल-लाल आँखों से घूरकर प्रत्येक औरत को देखा, और कहा - 'तुम लोग शाहज़ादी और शाही बेगमात हो, परन्तु इस क़दर बेशर्म और बे-ग़ैरत हो, कि बिना तअम्मुल दुश्मन के सामने आ-खड़ी हुईं। किसी में इतनी ग़ैरत न थी, जो जान खो देती, मगर मेरे सामने न आती ? मैंने तलवार दूर रख दी, और इतनी देर आँखें बन्द किये पड़ा रहा। इस पर भी किसी की हिम्मत न हुई कि अपनी बेहुर्मती और बे-इज़्ज़ती करनेवाले दुश्मन के कलेजे में कटार भोंक दे। ओ, ज़लील औरतो! क्या तुमसे यह उम्मीद की जाय कि तुम हिन्दुस्तान पर हुकूमत करनेवाले बच्चे पैदा कर सकती हो ? हटो सामने से !" - यह कहकर वह वहाँ से चल दिया।

दूसरे दिन उसके मरने की अफ़वाह फैल गई, और उसके सिपाही जहाँ-तहाँ मारे जाने लगे। यह देख वह स्वयं घोड़े पर सवार होकर निकला, पर उस पर भी पत्थर फेंके गये। यह देख, वह सुनहरी मस्जिद पर चढ़ गया और वहाँ से उसने क़त्ले-आम का हुक्म दिया। चार दिन तक क़त्ले-आम होता रहा। शहर लाशों से पट गया। नगर धाँय-धाँय जलने लगा। शहर-भर लूट लिया गया। राज्य का ख़ज़ाना भी लूट लिया गया। व्यापारियों और सरदारों के जवाहरात लूट लिये गये। तख़्त-ताऊस भी वह लूट ले गया। इस लूट में उसे तख़्त के अलावा दस करोड़ का माल मिला।

इसके बाद दिल्ली की शक्ति छिन्न-भिन्न होगई। दक्खिन, मालवा, गुजरात, राजपूताना, यह सब दिल्ली के अधिकार से बाहर होगये। अब से बंगाल के नवाब अलीवर्दीख़ाँ ने भी अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया और ख़िराज देना बन्द कर दिया। यह सब उलट-पुलट माया के जादू से— औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद सिर्फ़ तीस वर्ष के भीतर-ही-भीतर होगई!

इसके मरने पर अहमदशाह तख़्त पर बैठा। छः वर्ष राज्य करने के बाद गाज़ीउद्दीन-नामक एक सरदार ने उसको पटककर आँखें निकाल लीं, और जहाँदार के बेटे को तख़्त पर बैठाया। उसका नाम आलमगीर द्वितीय रक्खा। इसके गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिन बाद अहमदशाह दुर्रानी ने भयानक रीति से दिल्ली को लूटा। फिर वह मथुरा पर चढ़ गया, और यहाँ क़त्लेआम मचा दिया और लौट गया। अब गाज़ीउद्दीन ने बादशाह से बिगड़कर मरहठों को बुलाया। पेशवा का भाई रघुनाथराव दिल्ली आया और गाज़ीउद्दीन को बादशाह का मन्त्री बनाकर पंजाब चला गया। वहाँ से दुर्रानी के हाकिम को मार भगाया। अब मरहठों का आधिपत्य सर्वोपयोगी होगया, और वे प्रत्येक प्रान्त से चौथ वसूल करने लगे।

अब दुर्रानी फिर एक भारी सेना लेकर चढ़ आया। गाज़ीउद्दीन ने यह देख, आलमगीर को मरवा डाला और वह स्वयं जाटों की रियासत में भाग गया। उधर मराठे बड़े दर्प से दुर्रानी का मुक़ाबिला करने पानीपत के मैदान में आ डटे। परन्तु परस्पर की फूट और विग्रह ने उनका पतन किया। होलकर और सूरजमल लड़ाई से फिर गये। दो लाख मरहठे काट डाले गये और बाईस हज़ार को पकड़कर दुर्रानी ग़ुलाम बनाकर लेगया। इस घटना ने महाराष्ट्र में हाहाकार मचा दिया।

युद्ध के पीछे अली-गौहर गद्दी पर बैठा और अपना नाम 'शाहेआलम' रक्खा। इसके समय में ग़ुलाम क़ादिर नामक एक सर्दार रुहेलों को चढ़ा लाया। ग़ुलाम ज़ोरों से महल में घुस गया और बादशाह को तख़्त से नीचे गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। कटार से आँखें निकालकर बाहर फेंक दीं। फिर क़िले को ख़ूब लूटा। यहाँ तक कि बेगमों के बदन से कपड़े भी उतरवा लिये। महाराष्ट्रों ने जब यह सुना, तो तुरन्त महादजी सिन्धिया दिल्ली पर आ धमके, और ग़ुलाम क़ादिर को पकड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इसके बाद सिन्धिया ने बादशाह को तो क़िले में बन्द कर दिया और नगर पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया।

अब अँग्रेज़ रंग-मञ्च पर खुल्लम-खुल्ला आये। लॉर्ड लेक ने दिल्ली

आकर बादशाह को सिन्धिया की क़ैद से छुड़ाया और इलाहाबाद ले गये। उन्होंने अवध के नवाब से डरा-धमकाकर इलाहाबाद और कड़ा का इलाक़ा बादशाह के लिये ले लिये, और बादशाह को इलाहाबाद का क़िला सौंप दिया। इसके बाद ही लॉर्ड क्लाइव ने आकर बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी बादशाह से ले ली। इसका मतलब यह था कि अँग्रेज़ों को इन तीनों प्रान्तों से कर और लगान उगाहने का अधिकार मिल गया। अँग्रेज़ों ने इसके बदले बादशाह को छब्बीस लाख रुपये पेन्शन देने का वचन दिया। मुर्शिदाबाद के नवाबों का केवल शासनाधिकार-मात्र रह गया।

परन्तु इसके कुछ दिन बाद ही ज्योंही बादशाह दिल्ली आये, उधर वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर हुए। उन्होंने पचास लाख रुपये नक़द लेकर अवध के नवाब को फिर इलाहाबाद और कड़ा का इलाक़ा बेच दिया। साथ-ही बादशाह को ख़िराज भेजना भी बन्द कर दिया। उसका कारण यह बता दिया कि बादशाह मराठों से मिल गया है।

बादशाह ने कई बार गवर्नर को पत्र लिखा। एक बार पत्र के उत्तर में वारेन ने लिखा था:—

"जब आप कम्पनी और अवध के नवाब-वज़ीर से अलहदा होकर दूसरों को (मराठों को) अपना कृपा-पात्र बनाने लगे, जिसमें कम्पनी की सरासर हानि है, तो जो-कुछ आपके पास था, उसी समय कम्पनी का हो चुका।"

परन्तु, बादशाह ने फिर भी ठण्डे-ठण्डे लिखा—

"कम्पनी के अधिकारी सुलहनामे की रू से आप हमारे पाक दामन से अलहदा नहीं हो सकते, और बङ्गाल के सूबे का ख़िराज भेजना उनका फ़र्ज़ है। हम कहीं क्यों न रहें; कड़ा और इलाहाबाद हमारे नौकरों के हाथों में बने रहने चाहियें। दो वर्षों से हमें इलाहाबाद और कड़ा के रुपये नहीं मिले। रुपयों की हमें अज़हद ज़रूरत है।"

परन्तु इस पत्र का कोई जवाब नहीं दिया गया। विवश, बादशाह ने फिर मरहठों की शरण ली। उन्होंने महादजी सिन्धिया को लिखा कि

तुम ख़ुद कलकत्ता जाकर यह ख़िराज वसूल करो। नाना फड़नवीस से भी सहायता माँगी गई। सिन्धिया पूना पहुँचकर नाना से इस सम्बन्ध में सलाह कर ही रहे थे, और सम्भव था कि एक भारी सैन्य लेकर वे कलकत्ते ख़िराज के लिये चढ़ दौड़ते, पर, अकस्मात्-ही उनकी मृत्यु होगई। कहा जाता है कि उन्हें मरवा डाला गया।

इस व्यक्ति की प्रशंसा में एक बार बादशाह ने कहा था—

"माधोजी सोंधिया फ़र्ज़न्द जिगर बन्देमन्।
हस्त मसरूफ़ तलाफ़ीए सितमगरि एमा॥"

अर्थात्—माधोजी सोंधिया मेरे जिगर का टुकड़ा और मेरा बेटा है। मेरे दुःखों को दूर करने में लगा हुआ है।

इसके बाद अँग्रेज़ों ने मरहठों और बादशाह में विरोध उत्पन्न करा दिया और एक इक़रारनामा लिख दिया, जिसका अभिप्राय यह था कि उन्हें मराठों से सम्पूर्ण अधिकार दिला दिये जावेंगे।

परन्तु यह वादा कभी पूरा नहीं किया गया। लार्ड लेक ने दिल्ली के समस्त अधिकार अपने क़ब्ज़े में कर लिये और बारह लाख रुपये बादशाह की पेन्शन नियत करदी। अब बादशाह के हाथ में कुछ भी अधिकार न थे। वह सिर्फ़ पेंशनभोगी नाम-मात्र का बादशाह था। दिल्ली पर क़ब्ज़ा रखने और बादशाह को क़ब्ज़े में रखने के लिये, दिल्ली में एक मज़बूत सेना रखने की व्यवस्था की गई। एक बार बादशाह को दिल्ली से हटाकर मुँगेर भेजने का विचार किया गया, परन्तु विद्रोह के भय से यह विचार काम में न लाया गया।

शाहआलम के बाद बादशाह अकबरशाह (दूसरा) गद्दी पर बैठा। इसके समय में ही लखनऊ के नव्वाबों को बादशाह की उपाधि प्राप्त हुई और अँग्रेज़ों ने उन्हें बादशाह स्वीकार किया।

अब तक अँग्रेज़-अधिकारी दिल्ली के बादशाह को भारत का बादशाह मानते तथा कम्पनी-सरकार का न्यायाधिराज स्वीकार करते थे। उनके साथ बात-चीत करने, मिलने और पत्र-व्यवहार में, सभी अफ़सर

प्राचीन-मर्यादा का पालन करते थे, तथा प्रत्येक गवर्नर-जनरल दिल्ली आकर उनसे मिलता था।* परन्तु जब वारन हेस्टिंग्स गवर्नर हुए, तब बादशाह अकबरशाह ने हेस्टिंग्स को दिल्ली बुलाना चाहा। परन्तु हेस्टिंग्स ने साफ़ इनकार कर दिया, और यह कहा कि मुझे इस नियम को स्वीकार करने में ऐतराज़ है कि, दिल्ली के बादशाह कम्पनी की सरकार के अधिराज हैं।

जब लॉर्ड एमहर्स्ट गवर्नर बनकर आये, तब दिल्ली आकर बादशाह से मिले। इन्होंने यह प्रथम ही तय कर लिया था कि इस मुलाक़ात में प्राचीन शाही अलक़ाब आदाब काम में न लाये जायँगे। जब गवर्नर बादशाह के सामने पहुँचा, तब वे तख़्त पर बैठे थे। एमहर्स्ट बादशाह के सामने दाहिनी ओर की शाही कुर्सी पर बैठे। उनका रुख़ बादशाह के बाँई ओर था। रेज़ीडेण्ट और बड़े-बड़े तमाम अफ़सर खड़े रहे।

जब बात-चीत शुरू हुई, तो लार्ड एमहर्स्ट ने बात-चीत में सब अल-क़ाब-आदाब बदल दिये, और इस प्रकार बादशाह तमाम दरबारियों की नज़र में तुच्छ होगये। उन्होंने पुराने वायदों को भी राजनैतिक छल कह-कर पालन करने से इनकार कर दिया। इसके बाद जो पत्र-व्यवहार बादशाह से अँगरेज़ी सरकार का हुआ, उसमें भी कोई आदाब-अलक़ाब काम में नहीं लाया गया।

इस मुलाक़ात का जो असर हुआ, उसका वर्णन 'पीटर ऑरा' नामक एक अँगरेज़ ने इस भाँति किया है:—

"इससे प्रथम कि इस कल्पना का अन्त कर दिया जाय कि अँगरेज़ी सरकार दिल्ली के बादशाह की प्रजा हैं, अत्यन्त स्वभाविक था कि इस घटना ने एक ज़बर्दस्त सनसनी पैदा कर दी थी; क्योंकि यह पहला अव-सर था, जबकि हमने खुले और निश्चित तौर पर बृटिश-सत्ता की स्वाधीनता का प्रतिपादन किया। लोग आम तौर पर यह कहते थे कि—हिन्दोस्तान

---

* गवर्नर की मुहर पर 'दिल्ली के बादशाह का फ़िदवी-ख़ास' खुदा रहता था।

का ताज दिल्ली के बादशाह के सर से हटाकर अब अँगरेज़ों के सिर पर रख दिया जाय।"

कहा जाता है कि शाही ख़ान्दान और उसके आश्रितों ने इस घटना पर गहरा शोक मनाया। उन्होंने अनुभव किया कि इससे प्रथम उन्हें मराठों के कारण और तकलीफ़ें चाहे कुछ भी क्यों न सहनी पड़ी हों, किन्तु मराठे दिल्ली-सम्राट् को सदा समस्त भारत का न्याय-अधिराज स्वीकार करते रहे। अब पहली बार उनका रुतबा छीना गया है।

बादशाह ने खिन्न होकर लॉर्ड लेक का दस्तख़ती इक़रारनामा देकर राजा राममोहनराय को विलायत भेजा था। वहाँ वह गुम कर दिया गया और इस बात पर खेद प्रकट कर दिया गया कि किसी भी भाँति वह नहीं मिला।

अब तक कम्पनी का रेज़ीडेण्ट, जो कि दिल्ली में रहता था, साधारण अमीर की भाँति बादशाह को बाक़ायदा तस्लीम, कोर्निश और मुजरा किया करता था और शाही ख़ान्दान के प्रत्येक बच्चे के प्रति प्रतिष्ठा प्रकट करता था। पर, अब उसके स्थान पर मेटकाफ़ नियुक्त होकर आया। उसने अपना व्यवहार बिलकुल बदल दिया, और बारम्बार बादशाह का अपमान करना शुरू कर दिया।

बादशाह ने अपने पुत्र मिरज़ा सलीम को युवराज-पद देना चाहा, परन्तु अँग्रेज़ों ने उसे इलाहाबाद क़िले में नज़रबन्द कर दिया। अन्त में बादशाह मरा, और उसका पुत्र बहादुरशाह पिता की भाग्यहीन गद्दी पर बैठा।

यह वह समय था, जब भारत में भीतर-ही-भीतर अशान्ति के चिन्ह उठ रहे थे। बादशाह की आर्थिक स्थिति बहुत नाज़ुक थी। बादशाह ने अँग्रेज़ों को ख़र्च की रक़म अधिक देने को लिखा, पर उसे जवाब दिया गया—'आप अपने और अपने वंशजों के समस्त अधिकार कम्पनी को सौंप दें, तो यह रक़म बढ़ सकती है।' बादशाह ने इसे नामंजूर किया।

अब तक भी यह रस्म बनी थी कि ईद के दिन या नौरोज़ या बाद-

शाह की साल-गिरह पर गवर्नर-जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़, दोनों, शाही दरबार में हाज़िर होकर या रेज़ीडेण्ट-द्वारा, नज़रें पेश करते थे। बहादुरशाह के तख़्त पर बैठने तक भी यह रस्म की गई थी। परन्तु इसके कुछ ही वर्ष बाद लॉर्ड एलेनब्रु क ने इस नज़र को भी बन्द कर दिया।

इस अवसर पर गवर्नर-जनरल लार्ड एलेनब्रु क ने रेज़ीडेण्ट टॉमस मेटकाफ को लिखा था—

"बादशाह की ऊपरी शानो-शौक़त का शृंगार उतर चुका है। उसके वैभव की पहली-सी चमक-दमक नहीं रही। बादशाह के वे अधिकार, जिन पर तैमूर के ख़ान्दानवालों को घमण्ड था, एक दूसरे के बाद छिन चुके हैं। इसलिये बहादुरशाह के मरने के बाद क़लम के एक डोबे में 'बादशाह' की उपाधि का अन्त कर देना कुछ भी कठिन नहीं है। बादशाह की नज़र, जो गवर्नर-जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ देते थे, बन्द हुई। कम्पनी का सिक्का, जो बादशाह के नाम से ढाला जाता था, बन्द कर दिया गया। गवर्नर-जनरल की मुहर में जो पहले 'बादशाह का फ़िदवी-ख़ास'—ये शब्द रहते थे, वे निकाल दिये गये, और हिन्दुस्तानी रईसों को तम्बीह कर दी गई, कि वे अपनी मोहरों में बादशाह के प्रति ऐसे शब्दों का उपयोग न करें। इन सब बातों के बाद गवर्नमेण्ट ने अब फ़ैसला कर लिया है कि, दिखावे की अब कोई भी बात ऐसी न रखी जाय, जिससे हमारी गवर्नमेंट बादशाह के आधीन मालूम हो। इसलिये दिल्ली के बादशाह की उपाधि एक ऐसी उपाधि है, जिसे रहने देना गवर्नमेंट की इच्छा पर निर्भर है।"

सन् १८३९ में बादशाह के पुत्र दाराबख़्त की मृत्यु हुई। बादशाह उसके बाद बेगम ज़ीनतमहल के पुत्र शाहज़ादे जवाँबख़्त को युवराज नियत किया चाहते थे। परन्तु अँग्रेज़-सरकार ने बादशाह के आठ पुत्रों में से मिरज़ा फ़ोमास के साथ एक गुप्त सन्धि करके उसे युवराज स्वीकार कर लिया। उस सन्धि में तीन शर्तें थीं—

१ वह बादशाह के स्थान पर 'शाहज़ादा' कहा जायेगा।

२—दिल्ली का क़िला ख़ाली करना पड़ेगा।

३—एक लाख मासिक के स्थान पर १५ हज़ार रुपये मासिक ख़र्च के लिये मिला करेगा।

१० मई को सन् '५७ का विद्रोह मेरठ में फूट निकला, और उसी दिन बाग़ी फ़ौजें दिल्ली को चल दीं। यह फ़ौजें ११ मई को दिल्ली में आ पहुँचीं। दिल्ली के सिपाही उनसे मिल गये और अफ़सरों को मार डाला। संयुक्त-सेना काश्मीरी दरवाज़े से नगर में घुसी। दरियागंज की तमाम अँग्रेज़ी बस्ती जला डाली गई, और बहुत-से अँग्रेज़ काट डाले गये। दिल्ली के क़िले पर तुरन्त उनका क़ब्ज़ा होगया। इतने में मेरठ की पैदल फ़ौज और तोपख़ाना भी आ पहुँचा। उसने क़िले में घुसते-ही बादशाह को ११ तोपों की सलामी दी। बादशाह ने उनसे कहा—"मेरे पास कोई ख़ज़ाना नहीं। मैं आप लोगों को तनख़्वाह कहाँ से दूँगा?"

सिपाहियों ने कहा—"हम लोग हिन्दुस्तान-भर के अँग्रेज़ी ख़ज़ाने को लूटकर आप के क़दमों पर डाल देंगे।"

अन्त में बादशाह ने ग़दर का नेतृत्व ग्रहण किया। दिल्ली में प्रत्येक नागरिक ने विद्रोह का स्वागत किया। जो अँग्रेज़ जहाँ मिला, काट डाला गया। दिल्ली-निवासी, विद्रोही सिपाहियों को ओलों और बताशों का शरबत लुटियों में घोल-घोलकर पिलाने लगे। दिल्ली का अँग्रेज़ी दूतावास लूटकर जला दिया गया। अन्य अँग्रेज़ी इमारतें भी तहस-नहस कर दी गईं। दिल्ली के मेगज़ीन में ९ लाख कारतूस, १० हज़ार बन्दूक तथा बहुत-सा गोला-बारूद था। मेगज़ीन में ९ अँग्रेज़ और कुछ हिन्दुस्तानी सिपाही थे। हिन्दुस्तानियों ने जब क़िले पर हरा और सुनहरा झण्डा फहराते देखा, तब वे भी उनमें मिल गये। नौ अँग्रेज़ों ने मेगज़ीन का बचना असम्भव देखकर उसमें आग लगादी। उसके धड़ाके से तमाम दिल्ली हिल गई। ५ अँग्रेज़, २५ हिन्दुस्तानी सिपाही, और ३०० आदमी इधर-उधर गली में टुकड़े-टुकड़े होगये। बन्दूकें विद्रोहियों के हाथ आईं। प्रत्येक सिपाही को ४-४ बन्दूकें मिलीं।

शीघ्र ही यह विद्रोह की आग भारत-भर में फैल गई। असंख्य अँगरेज़ मारे-काटे और लूट लिये गये।

लॉर्ड केनिंग ने एक भारी सेना जनरल नील की आधीनता में विद्रोह-दमन को भेजा। यह सेना जिधर से गुज़री, रास्ते-भर बिना विचारे क़त्ले-आम करती, गाँवों को लूटती, और फूँकती बढ़ी चली आई। इस समय का वर्णन् मि. जॉन ने इस प्रकार किया है:—

"फौजी और सिविल दोनों अदालतें, बिना किसी तरह के मुक़दमे का ढोंग रचे, और बिना मर्द-औरत या छोटे-बड़े का विचार किये—भारत-वासियों का संहार कर रही थीं।.......बूढ़ी औरतों और बच्चों का उसी तरह वध किया गया, जिस प्रकार विद्रोहियों का। उन्हें सोच-समझकर फाँसी नहीं दी गई, बल्कि उन्हें उनके गाँवों में अन्दर जलाकर मार डाला गया, गोली से उड़ा दिया गया। सड़कों के चौरस्तों पर, बाज़ारों में जो लाशें टँगी हुई थीं उनको उतारने में प्रातःकाल से संध्या तक मुरदे ढोने-वाली आठ-आठ गाड़ियाँ बराबर तीन महीने तक लगी रहीं।........."

जनरल नील भयानक मार-काट करता हुआ इलाहाबाद तक बढ़ा चला गया। इलाहाबाद का क़िला अब भी सिक्खों की बदौलत अँगरेज़ी अधिकार में था। वहाँ के विद्रोही नेता मौलवी लियाक़तअली ने डट-कर युद्ध किया। अन्त में तीस लाख रुपये का ख़ज़ाना लेकर कानपुर को भाग आया। इलाहाबाद में भयानक क़त्ले-आम और अग्नि-काण्ड करके वह सेना आगे बढ़ी——लखनऊ, कानपुर-इत्यादि विद्रोह के मुख्य केन्द्र थे। उधर सिक्खों ने किसी भाँति विद्रोह में सहायता न दी। बादशाह ने एक अपना ख़ास दूत ताजुद्दीन पटियाला, नाभा-आदि रियासतों के राजाओं के पास भेजा था। उसने बादशाह को लिखा—

"सिख-सरदार सब सुस्त और कायर हैं। उनसे बहुत कम आशा है। वे फ़िरंगियों के हाथों के खिलौने हैं। मैं उनसे एकान्त में मिला और बातें कीं, उनके सामने कलेजा पानी कर दिया। इस पर उन्होंने जवाब दिया—'हम मौक़े की इन्तज़ारी में हैं। बादशाह का हुक्म होते ही हम

दुश्मनों को एक-ही दिन में मार भगावेंगे, ...परन्तु मेरे विचार में उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।"

उधर अँग्रेज़-सरकार ने इन राजाओं को अपने आधीन करने में बड़ी-बड़ी युक्तियाँ काम में लीं।

अब सिक्ख राजाओं की सहायता लेकर सर हेनरी बर्नार्ड भारी सेना ले, दिल्ली पर चढ़ आये। उन्होंने भी मार्ग में लूट-मार अग्नि-काण्ड, क़त्ले-आम बराबर जारी रक्खा। उधर दिल्ली में पल्टन और ख़ज़ाने जमा हो रहे थे। बादशाह के नाम राज-भक्ति के पत्र आ रहे थे। शहर में बारूद और हथियारों के कारख़ाने खुल गये थे, जिनमें दर्जनों तोपें रोज़ ढलतीं, और हज़ारों मन बारूद तैयार होती थी। बादशाह, हाथी पर बैठकर नगर में निकलता और नगरवासियों को उत्साहित करता था।

बादशाह ने एक ऐलान छपाकर सब फ़ौजों और बाज़ारों में बँटवाया था। वह इस प्रकार था—

"तमाम हिन्दू मुसलमानों के नाम। हम महज़ अपना धर्म समझकर जनता के साथ शरीक हुए हैं। इस मौक़े पर जो बुज़दिली दिखायेगा—या भोलेपन के कारण दग़ाबाज़ फ़िरङ्गियों पर एतबार करेगा—वह जल्द शर्मिन्दा होगा, और इङ्गलिस्तान के साथ अपनी वफ़ादारी का वैसा ही इनाम पावेगा, जैसा लखनऊ के नवाबों ने पाया। इसके अलावह इस बात की भी ज़रूरत है कि इस जङ्ग में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिलकर काम करें, और किसी प्रतिष्ठित नेता की हिदायतों पर चलकर इस तरह का व्यवहार करें, जिससे कि अमनो-अमान क़ायम रहे, और ग़रीब सन्तुष्ट रहें तथा उनका रुतबा और शान बढ़े। जहाँ तक मुमकिन हो सकता है, सब को चाहिये कि इस ऐलान की नक़ल करके किसी आम जगह पर लगायें।"

अब दिल्ली में युद्ध छिड़ा, मिरज़ा मुग़ल सेनापति थे। पर वे सुप्रबन्धक और सुशासक न थे। न कोई सेनापति ही उस समय योग्य था। बादशाह ने उसकी जगह बख़्तख़ाँ को प्रधान सेनापति बनाया। वह वीर

और साहसी था। इसके साथ चौदह हज़ार पैदल, तीन हज़ार सवार, और अनेक तोपें थीं। सेना को उसने छः महीने का वेतन पेशगी बाँट दिया था, और चार लाख रुपया बादशाह को नज़र किया था। उसने नगर में घोषणा करदी थी, कि कोई शस्त्र-रहित न रहे। जिनके पास शस्त्र न थे, उन्हें मुफ़्त में हथियार बाँट दिये गये। यह प्रबन्ध कर, तीन जुलाई को आम-परेड हुई। इसमें बीस हज़ार सिपाही सम्मिलित थे।

चार जुलाई को बख़्तख़ाँ ने अँग्रेज़ी सेना पर आक्रमण किया। छोटे-बड़े घमासान युद्ध हुए। जयपुर, जोधपुर, सिन्धिया, और होलकर अभी-तक आगा-पीछा कर रहे थे। फिर भी बादशाह के पास पचास हज़ार सेना थी। परन्तु सेनानायक का अभाव था। बख़्तख़ाँ वीर और साहसी था, पर कुल-वंश का उच्च न था, और कुलीन राजे उसकी आधीनता में युद्ध करना अपना अपमान समझते थे।

बादशाह ने जोश में आकर एक ख़त राजपूत-राजाओं को अपने हाथों से लिखा—

"मेरी यह दिली ख़्वाहिश है कि जिस ज़रिये और जिस क़ीमत पर भी हो सके, फ़िरङ्गियों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। मेरी यह ज़बर्दस्त ख़्वाहिश है कि तमाम हिन्दुस्तान आज़ाद होजाय। इस मक़सद को पूरा करने के लिये जो लड़ाई शुरू की गई है, उसमें उस वक़्त तक फ़तहयाबी नहीं होसकती, जब तक कि कोई शख़्स अपने ऊपर ऐसी ज़िम्मेवरी न ले ले, जो क़ौम की मुख़्तलिफ़ ताक़तों को संगठित करके एक ओर लगा सके, और अपने तईं तमाम क़ौम का नुमाइन्दा कह सके। अँग्रेज़ों को हिन्दुस्तान से निकाल देने के बाद अपने ज़ाती फ़ायदे के लिये हिन्दुस्तान पर हुकूमत करने की मुझे ज़रा भी ख़्वाहिश नहीं है। अगर आप सब देशी राजे दुश्मन को निकालने की ग़रज़ से अपनी तलवार खींचने के लिये तैयार हों, तो मैं इस बात के लिये राज़ी हूँ कि अपने तमाम शाही हुक़ूक़ और अख़्तियारात राजाओं के ऐसे गिरोह के हाथों में सौंप दूँ—जो इस काम के लिये चुने जायँ।"

पचीस अगस्त तक युद्ध होता रहा। इसके बाद विद्रोही-सेना में द्वेष-भाव उत्पन्न होगया। अब साहस करके अँग्रेजी सेना नगर की ओर बढ़ने लगी। इस समय अँग्रेजी सेना में पाँच हजार सिक्ख, गोरखे और पंजाबी तथा ढाई हजार काश्मीरी और स्वयं महाराज जींद अपनी सेना-सहित थे। दोनों ओर भयानक मार-काट होती गई। अन्त में १४ सितम्बर को अँग्रेज़ी सेना दिल्ली में घुस आई। इसी दिन सेनापति निकलसन घायल हुआ और २३ सितम्बर को अस्पताल में मरा। इधर अव्यवस्था बढ़ गई थी। कुछ सेना दिल्ली छोड़कर चल दी। अन्त में १६ सितम्बर तक अधिकांश नगर अँग्रेज़ी अधिकार में आगया। तब बादशाह क़िला छोड़-कर हुमायूँ के मक़बरे में चले गये। बख़्तख़ाँ मक़बरे की दाहिनी ओर फ़ौज लिये पड़े थे। उन्होंने बादशाह से कहा—"अभी आप हिम्मत न हारिये। मेरे साथ दिल्ली से निकल चलिये। हम, पूरी तैयारियों से फिर युद्ध करेंगे।" पर मिरज़ा इलाहीबख़्श, जो अँगरेज़ों के एजेण्ट थे, बादशाह को भागने की सलाह न देते थे। अन्त में बादशाह ने उससे कहा—

'बहादुर, मुझे तेरी बात का यक़ीन है, और तेरी राय भी दिल से पसन्द करता हूँ, मगर जिस्म की कुव्वत ने जवाब दे दिया है। इसलिए मैं मामला तक़दीर के हवाले करता हूँ। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो, और बिस्मिल्लाह करो। यहाँ से जाओ, और कुछ काम करके दिखाओ! मैं नहीं, मेरे ख़ानदान में से नहीं, तुम या और कोई हिन्दुस्तान की लाज रखे। हमारी फ़िक्र न करो, अपने फ़र्ज़ को अदा करो।"

बादशाह के इस जवाब से बख़्तख़ाँ हताश होगया। वह गर्दन नीची करके मक़बरे के पूर्वी दरवाज़े से निकल आया। उधर इलाहीबख़्श ने पश्चिमी दरवाज़े से निकलकर कप्तान हडसन को सूचना दी, कि बादशाह को गिरफ़्तार करने का यही समय है। उसने तुरन्त ५० सवार लेकर, पश्चिमी दरवाज़े पर पहुँच, बादशाह को गिरफ़्तार कर लिया।

बादशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शाहज़ादे जवाँबख़्त को लाकर लाल-क़िले में क़ैद किया गया। बख़्तख़ाँ का किसी को पता नहीं लगा।

बादशाह के दो बेटे मिरजा मुग़ल और मिरजा अख़्तर सुलतान तथा बादशाह का पोता मिरजा अकबर हुमायूँ के मक़बरे में अब भी थे। इलाहीबख़्श से सूचना पाकर हडसन ने फिर वहाँ आकर उन्हें क़ैद कर लिया। इलाहीबख़्श के समझाने से वे चुपचाप क़ैद होगये। जब उन्हें रथों पर सवार कराकर हडसन शहर की ओर लौटा, और शहर एक मील रह गया, तब उसने रथों को ठहराया और शाहज़ादों को रथों से उतरने का हुक्म दिया। उनके कपड़े उतरवाए और एक सिपाही के हाथ से तमंचा लेकर तीनों को गोली मार दी। उसके बाद उनके तत्काल सिर काट लिये गये, और उन्हें रूमाल में रखकर बादशाह के सामने पेश किया गया, और कहा गया—"आपको बहुत दिन से शिकायत थी कि कम्पनी ने आपको ख़िराज नहीं दिया। यह ख़िराज हाज़िर है।"

बादशाह ने देखकर मुँह फेर लिया और कहा—"अलहम्दोलिल्लाह! तैमूर की औलाद है, जो सुर्ख़रू होकर बाप के सामने आई है।"

अगले दिन दो सिर ख़ूनी दरवाज़े के सामने लटका दिये गये। और धड़ कोतवाली के सामने टांग दिये गये। दूसरे दिन उन्हें जमना में फिकवा दिया गया। इसके बाद दिल्ली की तत्कालीन भयानक अवस्था का रोमांचकारी वृत्तान्त लॉर्ड राबर्ट्स ने लिखा है—

"हम सुबह को लाहौरी दरवाज़े से चाँदनी चौक गये, तो हमें शहर, वास्तव में मुर्दों का शहर नज़र आता था। कोई आवाज़, सिवाय हमारे घोड़ों की टापों के, सुनाई नहीं देती थी। कोई जीवित मनुष्य नज़र नहीं आया। सब ओर मुर्दों का बिछौना बिछा हुआ था, जिनमें से कुछ मरने से पहले पड़े सिसक रहे थे।

हम चलते-चलते बहुत धीरे-धीरे बात करते थे, इस डर से कि कहीं हमारी आवाज़ से मुर्दे न चौंक पड़े। ········एक ओर लाशों को कुत्ते खा रहे थे और दूसरी ओर लाशों के आस-पास गिद्ध जमा थे, जो उनका मांस नोच-नोचकर खा रहे थे, और हमारे घोड़ों की टापों की आवाज़ से उड़-उड़कर थोड़ी दूर परे जा बैठते थे।

इन ....”

शहर पर क़ब्ज़ा करने के बाद ३ दिन तक कम्पनी की फ़ौज नगर को लूटती रही। ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि—..........एक दस्ता फ़ौज का इस काम के लिये नियुक्त किया गया कि जहाँ कहीं आबादी पाओ – मर्द, औरत और बच्चों को घर के असबाब-सहित गिरफ़्तार कर, ले आओ। आगे-आगे मर्द असबाब के गट्ठर सिर पर रक्खे हुए आते, और पीछे-पीछे उनकी औरतें रोती हुई पा-पैदल और बच्चों को साथ लिये हुए। जिन औरतों को कभी पैदल चलने की आदत न थी, वे ठोकरें खा-खाकर गिरती थीं, बच्चे गोद से गिरे पड़ते थे और सिपाही क्रूरता के साथ उन्हें आगे चलने के लिये धकेलते थे।

“जब वे लोग सामने पेश होते तो हुक्म दिया जाता कि असबाब में जितनी क़ीमती चीज़ें हैं, उन्हें ढूँढ़कर ज़ब्त करलो। व्यर्थ की चीज़ें इन्हें वापिस दे दो। यह हो चुकने पर दूसरा हुक्म होता कि इन्हें सिपाहियों की देख-रेख में लाहौरी दरवाजे तक ले जाओ, और ये लोग शहर से बाहर धक्का देकर निकाल दिये जाते।

दिल्ली शहर के बाहर इस प्रकार हज़ारों मर्द, औरतें और बच्चे असहाय, नंगे-पाँव, नंगे सिर, भूखे-प्यासे फिर रहे थे। ....सैकड़ों माताएँ छोटे बच्चों का दुख न देख सकने के कारण उन्हें अकेला छोड़कर कुएँ में डूब मरीं।......नगर के अन्दर हज़ारों औरतें ऐसी थीं, जो बे-इज़्ज़ती और मुसीबतों से बचने के लिये कुओं में गिरने लगीं। ये इतनी अधिक संख्या में गिरीं कि डूबने को पानी न रहा। अनेक कुएँ औरतों की लाशों से भर गये थे।

“इस प्रकार बदनसीब दिल्ली ने एक बार फिर भयानक दिन देखे। शाही ख़ानदान पर बुरी बीती। बहुतों को तो फांसी नसीब हुई। कुछ शाहज़ादे जेलख़ाने में भेज दिये गये। जब वे अपना काम पूरा न कर सकते थे—तो उन पर कोड़ों की मार पड़ती थी।”

मिर्ज़ा क़ोयास, जिसे अँगरेज़-सरकार ने युवराज बनाना स्वीकार

किया था, एक दिन दिल्ली के पास जंगल में घोड़े पर सवार नंगा खड़ा दिखाई दिया था। हडसन उसकी तलाश में घूम रहा था। उसके बाद आज तक उसका पता न लगा, कि कहाँ है ?

बहादुरशाह की एक बेटी रज़िया बेगम ने रोटियों से मुहताज होकर दिल्ली के एक बावर्ची हुसैनी से शादी करली थी। उनकी दूसरी बेटी फ़ातिमा सुलताना ने ईसाई-ज़नाना-स्कूल में नौकरी करली। बादशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शाहज़ादा जवाँबख़्त क़ैद करके रंगून भेजे गये, जहाँ सन् १८६३ में इस वृद्ध बादशाह का देहान्त हुआ, और उसके साथ-साथ दिल्ली के प्रतापी मुग़ल-साम्राज्य का टिमटिमाता दीपक सदा के लिये बुझ गया !!

---

(१३)

तख़्ते-लखनऊ

दिल्ली इस्लाम की परम प्रतापी राजधानी अवश्य रही—परन्तु इस-लामी नज़ाकत, जो ऐयाशी और मद से उत्पन्न हुई थी—उसका ज़हूर तो लखनऊ ही में नज़र आया। आज भी लखनऊ अपनी फ़साहत और नज़ा-कत के लिये मशहूर है। लखनऊ के नवाबों के एक-से-एक बढ़कर मज़ेदार और आश्चर्यजनक कारनामे सुनने को मिलते हैं। वह बाँकपन, वह अल्ह-ड़पन, वह रईसी बेवकूफ़ी दुनियाँ में सिर्फ़ लखनऊ ही के हिस्से में आई थी। आज भी वहाँ सैकड़ों नवाब जूते चटकाते फिरते हैं। यद्यपि अँग्रेज़ी दौर-दौरे ने लखनऊ को पूरा ईसाई बना दिया है, पर कुछ बुढ़ऊ खूसट अब भी गज़-भर चौड़े पाँयचे का पायजामा और हलकी दुपल्ली टोपी पहनकर उसी पुराने ठाट से निकलते हैं। ताज़ियेदारी के दिन मानों लखनऊ भूल जाता

है कि अब हम प्रबल प्रतापी ब्रिटिश की जायदाद हैं—उस समय उसमें वही शाही छटा देखने को मिलती है। अगर खोज की जाय तो आज भी वहाँ नवाब कनकव्वे और नवाब बटेर देखने को मिल सकते हैं। ख़म्मीरी तम्बाकू की भीनी महक में डूबकर प्रत्येक पुराना मुसलमान अब भी अपने ऊपर इतराता है।

लखनऊ की नवाबी की नींव नवाब सआदतख़ाँ बुर्हानुल्-मुल्क ने डाली थी। इनका असली नाम मिरज़ा मुहम्मद अमीन था। उन दिनों दिल्ली के तख़्त पर मुहम्मदशाह रँगीले मौज कर रहे थे। अवध में तब शेख़ों ने बड़ा ऊधम मचा रक्खा था। उनकी देखा-देखी दूसरे ज़मींदार भी सरकश हो उठे थे। जो कोई अवध का सूबेदार बनकर जाता, उसे ही मार डालते थे। इसलिये बादशाह किसी ज़बरदस्त आदमी की तलाश में थे। मिरज़ा साहब का दिल्ली दरबार में बड़ा भारी दबदबा था। यहाँ तक कि स्वयं बादशाह-सलामत भी इनसे सशंक रहते थे। वे इन्हें दरबार से हटाना चाहते थे, और अन्त में अवध की सुबेदारी देकर उन्होंने इन्हें दूर किया।

बादशाह ने मिर्ज़ा साहब को अवध की सूबेदारी और ख़िलअत तो दे दी थी, पर फ़ौज का कोई भी बन्दोबस्त न था। मिर्ज़ा साहब ने हिम्मत न हारी—आवारा और बेकार मुसलमान-युवकों को बटोरकर संगठित किया और कहा—"क्यों पड़े-पड़े बेकार ज़िन्दगी बरबाद करते हो? ख़ुदा ने चाहा, तो अवध पर दख़ल करके मज़ा करेंगे।"

कुछ ही दिनों में हजारों आदमी जमा होगये। कुछ तोपें और हथियार शाही शस्त्रागार से मिल गये। इस फ़ौज को अवध तक ले जाने और सामान के लिये बैल खरीदने को मिरज़ा ने अपनी बेगम के ज़ेवर बेच डाले।

जब मिरज़ा इस ठाठ से चले, तो रास्ते में आगरे के सूबेदार ने इन की ख़ातिरदारी करनी चाही। आपने कहा—"जो रुपया मेरी ख़ातिर-तवाज़े में ख़र्च करना चाहते हो, मुझे नक़द दे दो; क्योंकि रुपये की मुझे बड़ी ज़रूरत है।" आगरे के सूबेदार ने यही किया। वहाँ से बरेली पहुँचे

तो वहाँ के सूबेदार से भी दावत के बदले रुपया लेकर फ़र्रुख़ाबाद आये। वहाँ के नवाब ने कहा—"लखनऊ के शेख़ बड़े लड़ाके और अवध के आदमी भारी सरकश हैं। आप एकाएक गंगा-पार न कर, पहले आस-पास ज़मींदारों को और रईसों को मिला लें, तब सब की मदद लेकर लखनऊ पर चढ़ाई करें।" मिरज़ा ने यही किया—और जब वे धूम-धाम से लखनऊ पहुँचे और शेख़ों को अपने आने की सूचना दी, तो वे इनकी सेना से डर गये, और कहा—"आप गोमती के उस-पार मच्छी-भवन में डेरा डालिये।" मच्छी-भवन अनायास ही दख़ल हुआ देखकर मिरज़ा बहुत ख़ुश हुए; क्योंकि उन्हें आशा न थी कि बिना रक्त-पात हुए सफलता मिल जायगी।

नवाब ने अपने सुप्रबन्ध और चतुराई से थोड़े ही दिनों में सूबे की आमदनी सात लाख रुपया करली। और अट्ठाईस वर्षों तक बड़ी सफलता से शासन किया। मृत्यु के समय ख़ज़ाने में नौ करोड़ रुपये जमा थे। यह सन् ११५० हिजरी की बात है।

इनकी मृत्यु पर इनके भान्जे और दामाद मिरज़ामुहम्मद मुक़ीम अबुल मन्सूरख़ाँ सफ़दरजंग के नाम से वज़ीरे-नवाब नियुक्त हुए। यह अपनी राजधानी लखनऊ से उठाकर फ़ैज़ाबाद ले गये। वहाँ नवाब की सेना की छावनी थी। यह बुद्धिमान न थे, इसलिये इनका जीवन युद्ध और झगड़ों में गया। इनके समय में शेख़ फिर सिर उठाने लगे। अन्य सरदार भी बाग़ी होगये।

इनमें एक गुण था—एक-नारी-व्रती थे। इनकी पत्नी नवाब सदरजहाँ बेगम युद्ध-स्थल में भी छाया की भाँति साथ रहती थीं। ये सोलह वर्ष नवाबी भोगकर मरे।

इनके बाद मिरज़ा जलालुद्दीन हैदर नवाब शुजाउद्दौला के नाम से मसनद पर बैठे। ये २४ वर्ष की आयु के वीर युवक थे, पर चरित्र ठीक न था। गद्दी पर बैठते ही किसी हिन्दू स्त्री के अपमान करने के कारण हिन्दू बिगड़ गये। परन्तु इनकी माता ने बहुत-कुछ समझा-बुझाकर हिन्दू-रईसों को शान्त किया। इन्होंने बाईस वर्ष तक नवाबी की। इनके ज़माने में दिल्ली की गद्दी पर बादशाह शाहआलम थे, और बंगाल की सूबेदारी के

लिये मीरक़ासिम जी-जान से परिश्रम कर रहा था। शुजाउद्दौला, बादशाह के वज़ीर और रक्षक थे। मीरक़ासिम ने उनसे सहायता माँगी थी। उस समय अँगरेज़ी कम्पनी के अधिकारियों ने मीरजाफ़र को नवाब बनाया था। शुजाउद्दौला ने एक पत्र अँगरेज कौन्सल को लिखकर बादशाह के अधिकार और उनके कर्तव्यों की चेतावनी दी थी। पर उसका कोई फल न देख, युद्ध की तैयारी कर दी। युद्ध हुआ भी, परन्तु अँगरेज़ों की भेद-नीति से शुजाउद्दौला की हार हुई, उसमें नवाब को हर्जाने के पचास लाख रुपये और इलाहाबाद तथा कड़े के ज़िले अँगरेज़ों को देने पड़े। अँगरेज़ों का एक एजेण्ट भी उन के यहाँ रक्खा गया, और दोनों ने परस्पर के शत्रु-मित्रों को अपना निज शत्रु-मित्र समझने का क़ौल-क़रार भी कर लिया।

नवाब को इमारतों का भी बड़ा शौक़ था। १० लाख रुपये के लग-भग आप इमारतों पर भी ख़र्च किया करते थे। इनकी बनाई इमारतें आज भी लखनऊ की रोशनी हैं। दौलतगंज या दौलतख़ाना जहाँ नवाब स्वयं रहते थे—इन्द्र-भवन के समान शोभा रखता था।

यह वह समय था, जब ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी की कौंसिल में वारेन हेस्टिंग्स का दौर-दौरा था, और मुग़ल-तख़्त शाह आलम के पैरों के नीचे डगमगा रहा था। हम कह आये हैं, कि लखनऊ में भी कम्पनी का एक रेज़ीडेण्ट रहता था। उस समय तक रेज़ीडेण्टों को नवाब के सामने आने पर दरबार के नियमों का पालन करना पड़ता था, और अन्य दरबारियों की भाँति उन्हें भी अदब के साथ नवाब से मिलना पड़ता था।

नवाब ने रेज़ीडेण्ट के रहने के लिये एक विशाल इमारत बनवाई थी, जो ग़दर की घटनाओं के कारण अब बहुत प्रसिद्ध होगई है।

एक बार नवाब घोड़े पर सवार सैर को निकले, तो एक चूहा आप के घोड़े की टाप के नीचे दब गया। इस पर आपने वहीं उस की क़ब्र बनवा दी, और एक बाग़ लगवाया, जो 'मूसा बाग़' के नाम प्रसिद्ध है। यह बाग़ नवाब को बहुत प्रिय था। इसी में बादशाह जानवरों की लड़ाई देखा करते थे।

इनके बाद इन के तीसरे पुत्र मिरज़ा अनजीअलीख़ाँ आसफ़उद्दौला के नाम से गद्दी पर बैठे। ये प्रारम्भ में ७ वर्ष तक फैज़ाबाद में रहे। परन्तु बाद में लखनऊ चले आये, और उसे ही राजधानी बनाया।

इनके लखनऊ आने से लखनऊ की तक़दीर चेती। उस समय तक लखनऊ एक साधारण क़स्बा था। आसफ़उद्दौला ने उसे अच्छा ख़ासा शहर बना दिया। उन्होंने कई मुहल्ले और बाजार बनवाये। ये बड़े शाह-खर्च, स्वाधीन प्रकृति के, और हिम्मतवाले शासक थे। इन्होंने सब पुराने दरबारियों को निकालकर नयों को नियुक्त किया। इनके ज़माने में दरबार की शानो-शौक़त देखने योग्य थी। दाता तो अनोखे थे। इन की शाह ख़र्ची से इनकी माँ ने अँगरेज़ों से कह-सुनकर ख़ज़ाना अपने अधिकार में कर लिया था। परन्तु नवाब ने लड़-भिड़कर ६२ लाख रुपये ले लिये। होली, दिवाली, ईद, मुहर्रम के अवसरों पर लाखों रुपये स्वाहा हो जाते थे। ब्याह-शादी की दावतों मे ५-५, ६-६, लाख रुपया पानी हो जाता था। नवाब का निजू रोज़ाना ख़र्च भी कम न था। आपके यहाँ १२०० हाथी, ३००० घोड़े, १००० कुत्ते, अगणित मुर्ग़ियाँ, कबूतर, बटेर, हिरन बन्दर, साँप, बिच्छू और भाँति-भाँति के जानवर थे। इनके लिए लाखों की इमारतें बनी थीं, और लाखों रुपये ख़र्च होते थे। इनके निजू नौकरों मे २००० फ़राश, १०० चोबदार और ख़िदमतगार तथा सैकड़ों लौंडियाँ थीं। ४ हज़ार तो माली थे। रसोई का ख़र्च ही २-३ हजार रुपये रोज़ाना का था। सैंकड़ों बावर्ची थे। शाहज़ादे वज़ीर-अली की शादी में ३० लाख रुपये ख़र्च किये थे। ये सिर्फ़ दाता और उदार ही नहीं, एक योग्य शासक और गुण-ग्राही भी थे। मीर, सौदा और हसरत-आदि उर्दू के नामी कवि थे, जो साल में सिर्फ़ एक बार दरबार में हाज़िर होकर हज़ारों रुपये पाते थे। संगीत और काव्य के ऐसे रसिक थे, कि एक-एक पद पर हज़ारों रुपये बरसाये जाते थे।

अँगरेज़-कम्पनी ने नवाब से कई बड़ी रक़में बार-बार तलब की थीं। इधर वारेन हेस्टिंग्स को रुपये की बड़ी ज़रूरत थी। वह जहाँ तक बनता,

रईसों से रुपये तलब करता था। विवश हो, नवाब ने चुनार के क़िले में गवर्नर से मुलाक़ात की, और बताया कि केवल सेना की मद में ही मुझे एक बड़ी रक़म देनी पड़ती है।

अन्त में गवर्नर ने नवाब से मिलकर यह तै किया, कि चूँकि स्वर्गीय नवाब शुजाउद्दौला मृत्यु के समय में अपनी माँ और विधवा बेगम को बड़े-बड़े ख़ज़ाने दे गया है, और फ़ैज़ाबाद के महल भी उन्हीं के नाम कर गया है, तथा ये बेगमें अपने असंख्य सम्बन्धियों, बाँदियों और गुलामों के साथ वहीं रहती थीं—अतः उनसे यह रुपया ले लिया जाय। आसफ़ुद्दौला यह शर्त सुनकर बहुत लज्जित हुआ, पर लाचार इसे सहमत होना पड़ा, और इसका प्रबन्ध अँगरेज-अधिकारी स्वयं कर लेंगे, यह निश्चय होगया।

पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि मृत नवाब इन बेगमों को अँगरेज़ों की संरक्षता में छोड़ गये थे। अब इन पर काशी के राजा चेतसिंह के साथ विद्रोह में सम्मिलित होने का अभियोग लगाया गया, और सर इलाइज़ा कहारों की डाक बैठाकर इस काम के लिये कलकत्ते से तेज़ी के साथ रवाना हुआ। लखनऊ पहुँचकर उसने गवाहों के हलफ़नामे लिये, और बेगमों को विद्रोह में सम्मिलित होने का फ़ैसला करके कलकत्ते लौट गया।

फ़ैज़ाबाद के महलों को अँगरेज़ी फ़ौजों ने घेर लिया—और बेगमात को हुक्म दिया कि आप क़ैदी हैं, और आप तमाम ज़ेवरात, सोना, चाँदी, जवाहरात दे दीजिये। जब उन्होंने इनकार किया, तो बाहर की रसद बन्द कर दी गयी, और वे भूखों मरने लगीं। अन्त में बेगमों ने पिटारों-पर-पिटारे और ख़ज़ानों-पर-ख़ज़ाने देना शुरू कर दिया। इस रक़म का अन्दाज़ा एक करोड़ रुपये के अनुमानतः होगा।

इस घटना से अवध-भर में तहलका मच गया, और आसफ़ुद्दौला का दिल टुकड़े-टुकड़े होगया।

इसके बाद हेस्टिंग्स ने कर्नल हैनरी को नवाब के यहाँ भेजा और उसे बहराइच तथा गोरखपुर ज़िलों का कलक्टर बनवा दिया। इसने उन ज़िलों

पर भयानक अत्याचार किया, और तीन वर्ष के अन्दर ही उसने पैंतालीस लाख रुपया कमा लिया। नवाब ने तंग होकर उसे बर्खास्त कर दिया। पर हेस्टिंग्स ने फिर उसे नवाब के सिर मढ़ना चाहा। तब नवाब ने लिखा—"मैं हज़रत मुहम्मद की क़सम खाकर कहता हूँ कि यदि आपने मेरे यहाँ किसी काम पर कर्नल हैनरी को भेजा—तो मैं सल्तनत छोड़कर निकल जाऊँगा।"

सर जॉन केमार तीसरे अँगरेज़-गवर्नर थे। उन्होंने नवाब की पुरानी सन्धि को तोड़ डाला, और नवाब पर ज़ोर दिया कि आप साढ़े पाँच लाख रु० सालाना ख़र्च पर एक अँगरेज़ी पल्टन अपने यहाँ और रक्खें। नवाब 'सबसीडियरी सेना' के लिये पचास लाख रुपया सालाना प्रथम ही देता था। उसने इससे इन्कार कर दिया। तब अँगरेज़ों ने ज़बर्दस्ती वज़ीर झाऊलाल को पकड़कर क़ैद कर लिया। पीछे जब सर जान शोर लखनऊ पहुँचे, तो नई फ़ौज का ख़र्चा नवाब के सिर मढ़ दिया।

इस धींगा-मुश्ती से नवाब के दिल को सदमा पहुँचा। वह बीमार होगया, और दवा खाने से भी इन्कार कर दिया। इसी रोग में उसकी मृत्यु होगई।

इन्होंने २३ वर्ष राज्य करके शरीर त्यागा। इनके बाद इनकी वसीयत पर मिरज़ा वज़ीरअली गद्दी पर बैठे। पर इन्होंने एक ही वर्ष में सब को नाराज़ कर दिया। अन्त में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने बनारस में उन्हें नज़रबन्द कर दिया। वहाँ उन्होंने विद्रोह की तैयारियाँ कीं, तो अँगरेज़ों ने उन्हें कलकत्ता बुलाया। जब रेज़ीडेण्ट मि० चोरी उन्हें यह सन्देश देने गये, तो बात बढ़ चली और नवाब ने अपनी तलवार निकालकर साहब को क़त्ल कर दिया। मेम साहब भागकर बच गईं। आप नैपाल के जंगलों में भेष बदले मुद्दत तक फिरते रहे। अन्त में जब नगर के राजा के विश्वासघात से गिरफ़्तार किये गये, और लखनऊ में उन पर क़त्ल का मुक़द्दमा चला। पर गवाह कोई न मिलने से फाँसी से बच गये। तब वे कलकत्ते में क़ैद कर लिये गये। वहाँ वे २६ वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुए।

इनके बाद नवाब आसफ़उद्दौला के भाई सआदतअलीख़ाँ गद्दीनशीन हुए। इस समय इनकी उम्र ४० वर्ष की थी। ये बड़े बुद्धिमान, दूरदर्शी, ईमानदार और योग्य शासक थे। पर, लोग इन्हें कंजूस कहा करते थे; क्योंकि वे आसफ़उद्दौला की भाँति शाह-ख़र्च न थे। परन्तु ख़र्च की जगह पीछे न हटते थे। ये अँग्रेज़-सरकार के बड़े भक्त थे; क्योंकि इन्हें अँग्रेज़-सरकार ने ही गद्दीनशीन किया था, और उस वक़्त कम्पनी के साथ इनकी ये शर्तें हो गई थीं:—

१—कम्पनी की बक़ाया रक़म दे दें।

२—इलाहाबाद का क़िला कम्पनी का है। उसकी मरम्मत के लिये आठ लाख रुपया दे दें।

३—फ़तहगढ़ के क़िले की मरम्मत के लिये तीन लाख रुपये दे दें।

४—फ़ौजों के इधर उधर जाने आने का ख़र्चा दें। कितने लाख?—यह पीछे देखा जायगा।

५—उन्हें नवाब बनाने की चेष्टा में जो ख़र्च हुआ, उसके लिये १२ लाख रुपये दें।

६—पदच्युत नवाब वज़ीरख़ाँ को डेढ़ लाख की पेन्शन दे।

७—'सब सीडियरी सेना' के ख़र्च के लिये ५६ लाख के स्थान पर ७६ लाख रुपया सालाना दें।

मेजर बर्ड का अनुमान है कि इस प्रकार कुल मिलाकर एक करोड़ रुपये से ऊपर तथा इलाहाबाद का किला एक वर्ष ही के अन्दर कम्पनी को मिल गया। एक शर्त यह भी कि सिवा कम्पनी के आदमियों के अन्य कोई भी यूरोपियन अवध-राज्य में न रहने पावे।

इस सन्धि के सम्बन्ध में 'कलकत्ता रिव्यू' में सर हेनरी लॉरेन्स ने लिखा था·········"शायद सर जॉन शोर की सन्धि से अँग्रेज़-पाठकों को सब से अधिक यह बात खटके, कि अवध के शासन-प्रबन्ध का इसमें कहीं ज़रा भी ज़िक्र नहीं है। मालूम होता है कि अवध की प्रजा सब से बढ़कर बोली बोलनेवाले के हाथ नीलाम कर दी गई।·········सर जॉन शोर ने

अवध की मसनद को केवल एक अँग्रेज़-गवर्नर के हाथों की एक बिक्री की चीज़ बना दी थी।"

इसके बाद जब गवर्नर होकर लॉर्ड वेलेज़ली आये, तो उन्होंने दो वर्ष बाद ही यह संधि तोड़ दी। उसने नवाब को अपनी सेना में कुछ संशोधन करने की भी अनुमति दी। उस संशोधन का अभिप्राय यह था, कि मालगुज़ारी की वसूली-आदि के लिए जितनी सेना दरकार हो, उसे छोड़कर शेष सब सेना तोड़ दी जाय, और उसके स्थान पर कम्पनी के प्रबन्ध और नवाब के नाम से कुछ ऐसी सेनाएँ रक्खी जाएँ—जिनका ख़र्चा ७५ लाख रुपये सालाना हो।

नवाब ने इसके उत्तर में एक तर्क-पूर्ण और कड़ा उत्तर लिखा, और अँग्रेज-सरकार को इस प्रकार हस्तक्षेप करने के लिए मीठी फटकार दी।

इस पत्र को लॉर्ड वेलज़ली ने तिरस्कारपूर्वक वापिस कर दिया, और नवाब को लिख दिया, कि कुछ पेन्शन सालाना लेकर सल्तनत से हट जाओ, या जो दो पल्टनें नई आ रही हैं, उनके खर्चे के लिये आधा राज्य कम्पनी के हवाले करो।

ये पल्टनें भेज दी गईं, और रेज़ीडेण्ट को लिख दिया गया, कि यदि नवाब चीं-चपड़ करे, तो सेना-द्वारा राज्य पर कब्ज़ा करलो। वेलेज़ली ने यह भी स्पष्ट लिख दिया कि नवाब की सैनिक-शक्ति ख़त्म करदी जाय, और अवध की सारी सल्तनत के दीवानी और फौजदारी अधिकार कम्पनी के हो जाएँ।

नवाब ने बहुत चिल्ल-पों मचाई, पर नतीजा कुछ न हुआ, और नवाब को अपनी सल्तनत का आधा भाग, जिसकी आय एक करोड़ पैंतीस लाख रुपये सालाना थी, और जिससे वर्तमान युक्त-प्रान्त की बुनियाद पड़ी, सदा के लिये कम्पनी को सौंप देने पड़े।

इसके कुछ दिन बाद ही फ़र्रुख़ाबाद के नवाब को, जो अवध का सूबा था, एक लाख आठ हज़ार रुपया सालाना पेन्शन देकर गद्दी से उतार दिया गया।

इनमें एक दुर्गुण भी था। ये शराबी और विलासी थे। पर पीछे से तोबा करली थी। इन्होंने लखनऊ में बहुत-सी सुन्दर इमारतें बनवाईं। ये लखनऊ को एक खूबसूरत शहर की शक्ल में देखना चाहते थे। इन्होंने बहुत-से मुहल्ले और बाज़ार भी बनवाये।

इनकी मृत्यु पर इनके बड़े बेटे नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे। इन्होंने अपना ख़िताब नवाब वज़ीर की बजाय बादशाह रखा। बादशाही पदवी प्राप्त करके इन्होंने अपना नाम 'अबुल मुज़फ़्फ़र मुइज़उद्दीन शाह ज़िमनग़ाज़ीउद्दीन हैदर बादशाह' रक्खा। इन्होंने अपने नाम का सिक्का भी चलाया।

ये भी उदार, साहित्यिक और गुणग्राही बादशाह थे। मिरज़ा मुहम्मद-ख़ाँनवी किरमानी इनके दरबारी थे। उर्दू के प्रसिद्ध कवि आतिश और नासिख़ इन्हीं के ज़माने में थे। ईद के अवसर पर कवियों को बहुत इनाम मिलता था। उस समय के प्रसिद्ध गवैये रज़कअली और फ़ज़ल-अली का भी दरबार में पूरा मान था। यह दोनों 'ख़्याल' गाने में अपना सानी नहीं रखते थे। एक दक्षिणी वेश्या का भी इनके यहाँ बहुत मान था।

इनके प्रधान मन्त्री नवाब मोतमिदउद्दौला आग़ा मीर थे जो बड़े बुद्धिमान् थे। इन्होंने राज्य की बड़ी उन्नति की। ख़ज़ाना रुपयों से भरपूर रहा। करोड़ों रुपया ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी को कर्ज़ा देते रहे।

बादशाह की प्रधान बेगम बादशाह-बेगम कहाती थीं, और बड़े ठाठ से अलग महल में रहती थीं। इनसे किसी बात पर बादशाह की खटक गई थी। इन्होंने भी कई अच्छी इमारतें बनवाईं। प्रसिद्ध शाह नजफ़ इन्हीं ने बनवाया था। लोहे का पुल, जो गोमती नदी पर है, इन्होंने विलायत से बनवाकर मँगवाया था, पर उसे तैयार न कर सकीं, और आप-की मृत्यु होगई।

इस ज़माने में कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत ही नाज़ुक थी। उसकी हुण्डियों की दर बाज़ार में बारह फ़ीसदी बट्टे पर निकलती थी। इन दिनों मेजर बेली रेज़ीडेण्ट थे, जिनके बुरे व्यवहार से नवाब तंग आगये थे।

नवाब ने गवर्नर से इसकी शिकायतें कीं। गवर्नर लखनऊ आये, पर नतीजा उल्टा हुआ। इस सम्बन्ध में स्वयं तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड हेस्टिंग्स ने लिखा है:-

"नवाब मेजर बेली के उद्धत प्रभुत्व के नीचे हर-घण्टे आहें भरता था। उसे आशा थी कि मैं उसे इस अन्याय से छुटकारा दिला दूँगा। किन्तु मैंने मेजर बेली का प्रभुत्व और भी पक्का कर दिया। मेजर बेली छोटी-से-छोटी बातों पर नवाब पर हुकूमत चलाता था। जब कभी मेजर बेली को नवाब से कुछ कहना होता था, वह चाहे-जब बिना सूचना दिये महल में आ-धमकता था। उसने अपने आदमियों को बड़ी-बड़ी तनख़्वाहों पर नवाब के यहाँ लगा रक्खा था, जो जासूसी का काम करते थे। मेजर बेली जिस हाकिमाना शान के साथ हमेशा नवाब से बात करता था, उसके कारण उसने नवाब को उसके कुटुम्बियों और प्रजा तक की नजरों में गिरा दिया था।"

इस यात्रा में गवर्नर ने नवाब से ढाई करोड़ रुपये नक़द नैपाल-युद्ध के ख़र्च के लिये वसूल किये थे। इसके बदले नैपाल से मिली भूमि का टुकड़ा नवाब को दिया गया था, जो वास्तव में लगभग बंजर था। इसके बाद नवाब ने एक दर्बार करके 'स्वतन्त्र-बादशाह' का पद दिया गया। इसमें भी एक राजनैतिक छल था। क्योंकि इस चाल से दिल्ली के साम्राज्य को भंग किया गया था। बादशाह बन कर न नवाब के अधिकार बढ़े थे, न स्वतन्त्रता—यह केवल एक हास्यास्पद प्रहसन था।

आपके बाद आपके ज्येष्ठ पुत्र ग़ाज़ीनसीरुद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे, और इन्होंने अपना नाम 'अबुलबसर कुतुबुद्दीन सुलेमान जाह नसीरुद्दीन हैदर-बादशाह' रक्खा। ये पचीस वर्ष के युवक थे। इन्होंने गद्दी पर बैठते ही पिता के वज़ीर को बर्ख़ास्त करके एक पीलवान को वज़ीर बनाया, और उसे एतमुद्दौला का ख़िताब दिया। पर ये शीघ्र-ही मर गये। तब नवाब मुन्तज़िमुद्दौला हकीम मेंहदीअली ख़ाँ वज़ीर हुए। इन्होंने एक अस्पताल और एक ख़ैरातख़ाना तथा एक लीथो छापाख़ाना भी खुलवाया। एक अँगरेज़ी स्कूल भी खुला।

नसीरुद्दीन बड़े ऐयाश थे। इनके महल में कई यूरोपियन लेडियाँ भी थीं। छतरमंजिल आप ही ने बनवाई थी। और भी बहुत-सी कोठियाँ आपने बनवाईं। इन्होंने कर्नल विलकाक्स की आधीनता में एक वेधशाला भी बनवा दी थी, जो ग़दर में नष्ट होगई थी। इन्होंने दस वर्ष राज्य किया।

इनके ज़माने में गवर्नर लॉर्ड वैंटिंग थे। उन्होंने अवध के दौरे में नवाब बादशाह को ख़ूब डरा-धमकाकर राज्य में बहुत-से उलट-फेर किये, और यह अफ़वाह फैल गई थी कि अँगरेज़ अब नवाबी का अन्त किया चाहते हैं। नवाब ने घबराकर इँगलिस्तान की पार्लियामेण्ट में अपील करने के इरादे से कर्नल यूनाक-नामक फ़ान्सीसी को इँगलैण्ड भेजा। पर वैंटिंग ने नवाब को डरा-धमकाकर बीच ही में उसकी बर्ख़ास्तगी का परवाना भिजवा दिया।

इनके बाद बादशाह की वेश्या का पुत्र मुन्नाजान गद्दी पर बैठा। पर नसीरुद्दीन की माता ने उसका भारी विरोध कर, उसे गद्दी से उतरवाया। कुछ ख़ून-ख़राबी भी हुई। अन्त में वे चुनार में क़ैद कर लिये गये। इसके बाद नवाब सआदतअली ख़ाँ के द्वितीय पुत्र मिरज़ा मुहम्मदअली गद्दी पर बैठे। ये विद्या-व्यसनी और शान्त पुरुष थे। हुसेनाबाद का इमामबाड़ा इन्होंने बनवाया था। इन्होंने सिर्फ़ ५ वर्ष राज्य किया।

इनके बाद मिरज़ा मुहम्मद अमजदअली ख़ाँ गद्दी पर बैठे। ये शाह मुहम्मदअली के बेटे थे। ये भी ५ ही वर्ष राज्य कर, मृत्यु को प्राप्त हुए।

इनके बाद प्रसिद्ध और अन्तिम बादशाह वाजिदअली शाह २५ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे। ये बड़े शौक़ीन, नाज़ुक-मिज़ाज और विनोद-प्रिय थे। इन्होंने नये फ़ैशन के अँगरखे, कुरते, टोपी ईजाद किये। ठुमरी भी इन्हीं की ईजाद है। इनके जीवन में २४ घण्टे नाच-गाने का रँग रहता। स्वयं भी नाच-गाने में उस्ताद थे। सिकन्दर-बाग़, क़ैसरबाग़-आदि इमारतें इन्हीं की बनवाई हुई हैं।

यह नवाब जवान, सुन्दर, उत्साही और समझदार था। उसने अवध

का राज-रोग समझ लिया था। उसने मुस्तैदी से सेना को सुधारना शुरू किया, और रोजाना अपने सामने फ़ौज से क़वायद करानी शुरू की। बादशाह दोपहर तक क़वायदें देखता था। कम्पनी सरकार ने इस काम से नवाब को बलपूर्वक रोका।

लॉर्ड डलहौज़ी ने गवर्नर होते ही घोषणा कर दी कि नवाब शासन के योग्य नहीं, अतः अवध की सल्तनत कम्पनी के राज्य में मिला ली जायगी। गवर्नर के हुक्म से रेज़ीडेण्ट नुइरम महल में वह परवाना लेकर गया, और उस पर नवाब को दस्तख़त करने को कहा। नवाब ने इससे बिलकुल इनकार कर दिया। धमकी और प्रलोभन भी दिये गये। तीन दिन गुज़र गये। पर, नवाब ने दस्तख़त करना स्वीकार न किया। इस पर कम्पनी की 'सबसीडियरी'-सेना ज़बर्दस्ती महल में घुस पड़ी। महल लूट लिया गया, और वाजिदअली को पकड़कर क़ैद करके कलकत्ते भेज दिया गया। समस्त अवध पर कम्पनी का अधिकार होगया। क़ैद में बादशाह को १ लाख रुपया महीना ख़र्चे के लिये मिलता था। यह घटना सन् १८५६ में हुई।

इसके बाद अवध के ताल्लुक़ेदारों की रियासतें छीनी गईं, और अवध का तख़्त सदा के लिये धूल में मिल गया।

---

(५४)

रुहेलों का अन्त

अवध के उत्तर और गंगा के पूर्व हिमालय की तराई में जो हरा-भरा सुहावना प्रदेश है, वही रुहेलखण्ड है। दिल्ली के बादशाह मुहम्मद-शाह रँगीले के ज़माने में यहाँ के सूबेदार नवाब अली मुहम्मद था। सन् १७४८ में जब वह मरा, तो उसके आधीन एक लाख सेना अफ़ग़ानों और पठानों की थी। ख़ज़ाने में तीन करोड़ चालीस लाख रुपये और एक करोड़ सोलह लाख सोने की मोहरें थीं।

अवध के नवाब बहुत दिनों से रुहेलखण्ड को हथियाना चाहते थे, मगर जब कभी सब रुहेले-सर्दार मिलकर युद्ध का डङ्का बजाते थे, तब उनकी संख्या अस्सी हज़ार पहुँचती थी। इसके सिवा वे वीर भी थे, अतः नवाब को उन्हें छेड़ने का साहस न होता था। जब उसने अँग्रेज़ों की धन-लिप्सा को देखा, तो उसने गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स को लिखकर इस काम में मदद माँगी। दोनों ने सलाह करली, और चालीस लाख रुपये और सेना का कुल ख़र्चा लेना स्वीकार करके अँग्रेज़ों ने भाड़े पर अपनी सेना देना स्वीकार कर लिया।

रुहेलों से अँग्रेज़ों का कोई मतलब न था, न कुछ टण्टा था, इसके सिवा वे अन्य सूबेदारों की तरह बादशाह के अधिकार प्राप्त सूबेदारों थे। ऐसी दशा में केवल रुपये के लालच से भाड़े पर सेना भेजना सर्वथा अनुचित काम था।

इस विषय पर मेकॉले ने लिखा भी थाः—

"धन लेकर और भड़ैतू बनकर किसी पामर अथवा हानिकारक काम

में प्रवृत्त होना अवश्य ही अकीर्ति का काम है, और बिना छेड़-छाड़ के किसी पर चढ़-दौड़ना अवश्य ही नीचता का काम है।"

हेस्टिंग्स ने कर्नल चैम्पियन की आधीनता में तीन ब्रिगेड अँगरेज़ी सेना और ४००० कड़ाबी रवाने किये। रुहेलों ने प्रथम तो बहुत-कुछ लिखा-पढ़ी की, पर अन्त में हार-कर युद्ध की तैयारियाँ कीं, और हाफ़िज़ रहमतख़ाँ ४० हज़ार सेना लेकर अवध के नवाब और अँगरेज़ों की सम्मिलित सेना की गति रोकने को अग्रसर हुए। बाबुल-नाले पर घोर युद्ध हुआ, और रुहेलों की वीरता से इन संयुक्त सेना के छक्के छूट गये। पर भारत से मुसलमानों का भाग्य-चक्र तेज़ी से फिर रहा था २३ अप्रैल १७७४ में स्मरणीय दिन हाफ़िज़ख़ाँ युद्ध में मारा गया, और पूर्वी सेनाओं के दस्तूर के अनुसार उसके मरते ही सेना का उत्साह भंग होगया, और वह भाग चली। रुहेलों का अस्तित्व मिट गया!

नवाब की फ़ौज ने भागते रुहेलों को मारने और लूटने में बड़ी फुर्ती दिखाई। एक लाख से अधिक रुहेले अपने सुख-निवासों को छोड़-छोड़कर विकट जंगलों में भाग गये।

नवाब ने फ़सल उजाड़ दी; कुछ घोड़ों से कुचलवा दी। नगर-गाँवों में आग लगवादी। क्या मनुष्य, क्या स्त्री, क्या बालक, या तो क़त्ल कर दिये गये, या अंग-भंग करके तड़पते छोड़ दिये गये।—अथवा ग़ुलाम बनाकर बेच दिये गये। रुहेले-सरदारों की कुल-महिलाओं और कुमारी कन्याओं का अत्यन्त पाशविक ढँग से सतीत्व नष्ट किया गया। यह सब काम जब नर-पशु नवाब के सिपाही कर रहे थे, तब अँग्रेज़-सेना तटस्थ खड़ी थी!

हेस्टिंग्स के इस कृत्य का विरोध करते हुए कलकत्ते के कुछ अँग्रेज-मेम्बरों ने विलायत को लिखा था—

"रुहेलखण्ड की बर्बादी की असली बात अब छिपाने पर भी देर तक नहीं छिपी रहेगी। अब वह समय दूर नहीं है, जब कारण बताने के पूर्व ही परिणाम प्रकट हो जायेगा। ऐसा होने पर यह निश्चय कर लेना कठिन न होगा कि किस व्यक्ति की दुर्व्यवस्था से सम्पत्तिशाली एवं भरे-पूरे

एक राज्य का अकारण नाश हुआ, और उसमें बसनेवाले मनुष्य भिखमंगों की दशा को प्राप्त हुए।"

खुद कर्नल चैम्पियन, जो इस काम के लिये भेजे गये थे, लिखते हैं—

"हम ब्रिटिश-जाति को आधुनिक रोमन्स की उपाधि से इसलिये विभूषित कर सकते हैं कि उनकी राजनैतिक सभा के सदस्य अपनी जातीय प्रतिष्ठा को कलंकित करने के लिये भाड़े पर एक अँग्रेज-जनरल को काफ़िर हाकिम के आधीन कर देने की बात कभी न भूल सकेंगे।"

हेस्टिंग्स ने इस विषय में अपने बचाव में कहा था कि रुहेले मरहठों के साथ लगाव रखते थे, यदि वे उनसे मिलकर एक हो जाते, तो कम्पनी और उसके मित्र नवाब वज़ीर की सरहद में शान्ति बनाये रखना असम्भव हो जाता। पर यह सब झूठ था। मरहठे तो रुहेलों पर आक्रमण ही करते थे, वे उनके मित्र नहीं थे। एक बार उन्होंने मुरादाबाद तक आक्रमण किया था, और भारी लूट पाट मचाई थी। तब राम घाट के पास नवाब वज़ीर ने ही मरहठों की गति को रोका था। इसके सिवा मरहठों का अन्त दो वर्ष प्रथम पानीपत के मैदान में अहमदशाह अब्दाली के भीषण युद्ध में हो चुका था, जिसमें दो लाख मरहठे उस खेत में कट मरे थे। यह कैसे सम्भव था, कि दो ही वर्ष में मरहठे फिर वैसे ही सशक्त बन जाते, जो उस समय की विजयिनी और सुशिक्षित कम्पनी की प्रबल सेना को, जो रुहेलों एवं नवाब-वज़ीर तथा क़ासिम की संयुक्त सेनाओं को बुरी तरह पराजित कर चुकी थी, शान्ति स्थापित रखना असम्भव कर देते?—और एक हँसी के योग्य बात है कि जो नवाब-वज़ीर कल मीरक़ासिम का पक्ष लेकर कम्पनी से इलाहाबाद तक का प्रदेश छिनवा बैठा था, वह आज ४० लाख रुपये देते ही कम्पनी का मित्र बन गया।

इस युद्ध के बाद ही नये शासन सुधारों की योजना हुई, और गवर्नर को एक कौन्सिल दी गयी। तब तक हेस्टिंग्स ही सर्वेसर्वा थे, अब कौंसिल ने उनसे रुहेला-युद्ध के सम्बन्ध के काग़ज़-पत्र माँगे। हेस्टिंग्स साहेब ने उन्हें दिखाने में आना-कानी की। कौन्सिल में झगड़ा मच गया। कौंसिल

के मेम्बरों ने हेस्टिंग्स के पिट्ठू मिडिलटन साहब को लखनऊ की रेज़ीडेन्सी से च्युत कर दिया, और कम्पनी की पल्टनें लौटा लीं। नवाब-वज़ीर को सब रुपये भेज देने की ताकीद कर दी।

कर्नल चैम्पियन, जिनके आधीन अँग्रेजी सेना रुहेलों के विरुद्ध भेजी गई थी, नवाब से न-जाने-क्यों बहुत बिगड़ गये थे, उनके ऊपरवाले नोट से ही पता चलता है कि उन्होंने नवाब को काफ़िर कहा था। अब उन्होंने ही इस युद्ध का भण्डा-फोड़ किया। हेस्टिंग्स के संकेत से मिडिलटन ने इन पर कई दोष लगाये। हेस्टिंग्स ने कर्नल चैम्पियन पर नवाब की आज्ञा-भंग करने के अपराध में मुकद्दमा चलाने की धमकी दी थी। इस पर कर्नल ने इस्तीफ़ा दे दिया। पर कौन्सिल के नवीन सभ्यों ने रुहेला युद्ध की जाँच करना आरम्भ किया। कर्नल लैसली, मेजर हन्नो, कर्नल चेम्पियन-आदि से जिरह हुई। सभी मेम्बर जिरह के समय प्रश्न करते थे। अनेक नई बातें प्रकट हुईं।

इसी जिरह में मरहठों के आक्रमण की बात झूठ सिद्ध हुई। इसी जिरह में मुन्नी बेगम के अँगूठी-छल्ले तक उतरवाये जाने की बात खुली। इसी जिरह में महबूबख़ाँ की लड़की पर नवाब के पाशविक अत्याचार से विष खाकर आत्म-घात करने की पाप-कथा खुली। इसी जाँच में यह मालूम हुआ कि रुहेलों का डेढ़ करोड़ रुपये का माल लूटा गया है। इसी जाँच में यह बात भी खुली कि जिन रुहेले सर्दारों की बेगमों ने घरों की ड्योढ़ियों के बाहर पैर नहीं धरा था—वे दाने-दाने के लिये दर-दर की भिखारिणी बनायी गयीं। इसी जाँच में विदित हुआ कि इस जीत से नवाब-वजीर को ७०-८० लाख सालाना की रियासत मिल गई। इसी जाँच में यह पता लगा कि लखनऊ के नवाब ने क़ैदी रुहेलों को अभय-दान देकर उनके साथ विश्वासघात किया था। इसी जाँच से विदित हुआ कि कर्नल चैम्पियन की नज़र बचाने के अभिप्राय से कठोर अत्याचार और यन्त्र-णायें भुगतने के लिये रुहेले-सरदार महबूबुल्लाख़ाँ और फ़िदाउल्लाख़ाँ के परिवारवाले फ़ैज़ाबाद भेज दिये गये।

(१५)

बंगाल के मुस्लिम-राज्य।

१२ वीं शताब्दी में शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज चौहान को बन्दी करके दिल्ली की गद्दी ग़ुलाम कुतुबुद्दीन को दी। उसके १० वर्ष बाद उसने अपने सेनापति बख़्तियार ख़िलजी को बंगाल-विजय के लिये भेजा। उस समय बंगाल में राजा लक्ष्मणसेन राज्य करता था। उसे हटाकर बख़्तियार ने बंगाल पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद शमशुद्दीन अलतमश ने बंगाल के विद्रोह को दमन कर, उस पर अपना अधिकार जमाया। फिर जब अलाउद्दीन मसऊद दिल्ली के तख़्त पर था, तब मुग़लों ने तिब्बत के रास्ते से बंगाल पर आक्रमण किया था, पर पराजित होकर भाग गये।

इसके बाद ख़िलजी-वंश का वहाँ कुछ दिन अधिकार रहा। तुग़रा ख़ाँ वहाँ का सूबेदार था।

मुग़ल-काल में कभी हिन्दू और कभी मुसलमान शाहज़ादे और अमीर बंगाल के सूबेदार रहे। शाहजहाँ के ज़माने में शाहज़ादा शुजा और औरंगज़ेब के ज़माने में प्रथम मीर जुमला और बाद में शाइस्ताख़ाँ वहाँ के सूबेदार रहे।

इसके बाद नवाब अलीवर्दीख़ाँ बंगाल, बिहार तथा बंगाल और उड़ीसा के सूबेदार रहे। जब उन पर मराठों की मार पड़ी और कमज़ोर दिल्ली के बादशाह ने उनकी मदद न की, तो नवाब ने दिल्ली के बादशाह को सालाना मालगुज़ारी देना बन्द कर दिया। परन्तु वह बराबर अपने को बादशाह के आधीन ही समझता रहा।

अलीवर्दीख़ाँ एक सुयोग्य शासक था, और उसके राज्य में प्रजा बहुत

प्रसन्न थे। ऐस० सी० हिल ने लिखा है—"......बंगाल के किसानों की हालत उस समय के फ्रान्स अथवा जर्मनी के किसानों से कहीं अधिक अच्छी थी।" बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद के सम्बन्ध में क्लाइव ने लिखा था —

"मुर्शिदाबाद शहर उतना ही लम्बा-चौड़ा, आबाद और धनवान है, जितना लन्दन शहर। अन्तर सिर्फ़ इतना है कि लन्दन के धनाढ्य से धनाढ्य मनुष्य के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है, उससे बहुत ज़्यादा मुर्शिदाबाद-निवासियों के पास है।" कर्नल मिल ने इस भारी सम्पत्ति को देखकर एक योजना योरोप भेजी थी। उसमें लिखा था:—

"मुग़ल-साम्राज्य सोने-चाँदी से लबालब भरा हुआ है। यह साम्राज्य सदा से निर्बल और अरक्षित रहा है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आज तक योरोप के किसी भी बादशाह ने, जिसके पास जल-सेना हो, बंगाल को फ़तह करने की कोशिश नहीं की। एक ही बार में अनन्त धन प्राप्त किया जा सकता है, जो कि ब्रेज़ील और पेरू की सोने की खानों के मुक़ाबिले होगा। मुग़लों की राजनीति ख़राब है। उनकी सेना और भी अधिक ख़राब है। जल-सेना उनके पास नहीं है। राज्य-भर में विद्रोह होते रहते हैं। नदियाँ और बन्दरगाह दोनों विदेशियों के लिये खुले हैं। यह देश इतनी ही आसानी से फ़तह हो सकता है, जितनी आसानी से कि स्पेनवालों ने अमेरिका के नंगे बाशिन्दों को अपने आधीन कर लिया था।

"अलीवर्दीख़ाँ के पास ३० करोड़ रुपया नक़द है, और उसकी सालाना आमदनी भी सवा दो करोड़ से कम नहीं। उसके प्रान्त समुद्र की ओर से खुले हुये हैं। ३ जहाज़ों में डेढ़ या दो हज़ार सैनिक इस काम के लिये काफ़ी हैं।"

जब अँग्रेज बंगाल में आये और इन्होंने यहाँ के व्यापार से लाभ उठाना चाहा, तो वहाँ के हिन्दुओं से मिलकर उन्होंने मुस्लिम-राज्य को पतित करने की चेष्टा की। एक पंजाबी धनी व्यापारी अमीचन्द को इसमें मिलाया गया, और उसके द्वारा चुनके-चुनके बड़े-बड़े हिन्दू-राजाओं को वश

में किया गया। अमीचन्द को बड़े-बड़े सब्ज़ बाग़ दिखाये गये। अमीचन्द के धन और अँग्रेज़ों के वादों ने मिलकर, नवाब के दरबार को बेईमान बना डाला।

इसके बाद अँग्रेज़ों ने अपनी सैनिक-शक्ति बढ़ानी और क़िलेबन्दी शुरू करदी। दीवानी के अधिकार वे प्रथम-ही ले चुके थे। अलीवर्दीख़ाँ अँग्रेज़ों के इस संगठन को ध्यान से देख रहा था, पर वह कुछ कर न सका और उसका देहान्त होगया।

---

(१६)

सिराजुद्दौला

यह भाग्यहीन युवक नवाब २४ वर्ष की आयु में अपने नाना की गद्दी पर सन् १७२६ में बैठा। इस समय मुग़ल-साम्राज्य की नींव हिल चुकी थी, और अँग्रेज़ों के हौसले बढ़ रहे थे। उन्हें दिल्ली के बादशाह ने बंगाल में बिना चुँगी महसूल दिये व्यापार करने के पास दे दिये थे। इन पासों का खुल्लमखुल्ला दुरुपयोग किया जाता था, और वे किसी भी हिन्दुस्तानी व्यापारी को बेच दिये जाते थे; जिससे राज्य की बड़ी भारी हानि होती थी।

मरते वक़्त अलीवर्दीख़ाँ ने पुत्र को यह हिदायत की थी "... योरोपियन क़ौमों की ताक़त पर नज़र रखना। यदि खुदा मेरी उम्र बढ़ा देता, तो मैं तुम्हें इस डर से बचा देता। अब, मेरे बेटे! यह काम तुम्हें ख़ुद करना होगा। तिलंगों के साथ उनकी लड़ाइयाँ और राजनीति पर नज़र रक्खो — और सावधान रहो। अपने-अपने बादशाहों के घरेलू झगड़ों के बहाने इन लोगों ने मुग़ल बादशाह का मुल्क और उनकी प्रजा का धन छीनकर आपस में बाँट लिया है। इन तीनों क़ौमों को एक-साथ ज़ेर करने

का ख़याल न करना; अँग्रेज़ों को ही पहले ज़ेर करना। जब तुम ऐसा कर लोगे, तो बाक़ी क़ौमें तुम्हें ज़्यादा तकलीफ़ न देंगी। ······ उन्हें क़िले बनाने या फ़ौज रखने की इजाज़त न देना। यदि तुमने यह ग़लती की, तो मुल्क तुम्हारे हाथ से निकल जायगा।"

सिराजुद्दौला पर, मालूम होता है, इस नसीहत का भरपूर प्रभाव पड़ा था, और वह अँग्रेज़ी शक्ति की ओर से चौकन्ना था। उसके तख़्त-नशीन होने पर नियमानुसार अँग्रेज़ों ने उसे भेंट नहीं दी थी; इसका अर्थ यह था कि वे उसे नवाब न स्वीकार करते थे। वे प्रायः सिराजुद्दौला से सीधा सम्बन्ध भी नहीं रखते थे; आवश्यकता पड़ने पर अपना काम ऊपर-ही-ऊपर निकाल लेते थे।

धीरे-धीरे नवाब और अँग्रेज़ों का मन-मुटाव बढ़ता गया। अँग्रेज़ों ने जो क़ासिम बाज़ार में क़िलेबन्दी करली थी, नवाब उसका अत्यन्त विरोधी था। उसने वहाँ के मुखिया को बुलाकर समझाया—"यदि अँग्रेज़ शान्त व्यापारियों की भाँति देश में रहा चाहते हैं, तो ख़ुशी से रहें। किन्तु सूबे के हाकिम की हैसियत से मेरा यह हुक्म है कि वे उन सब क़िलों को फ़ौरन् तुड़वाकर बराबर करदें, जो उन्होंने हाल ही में बिना मेरी आज्ञा के बना लिये हैं।"

परन्तु इसका कुछ भी फल न हुआ। अन्त में नवाब ने क़ासिम बाज़ार में सेना भेजने की आज्ञा देदी। अचानक क़ासिम बाज़ार में नवाबी सिपाही दीख पड़ने लगे। होते-होते और भी सैकड़ों सवार और बरक़न्दाज़ आ-आकर शामिल होने लगे। सन्ध्या के प्रथम ही दो जङ्गी हाथी झूमते-झामते क़ासिम बाज़ार में आ पहुँचे। यह कैफ़ियत देखकर, अँग्रेज़ों के प्राण काँपने लगे। राजदूत का अपमान करने की बात सभी को मालूम थी। एक एक करके अँग्रेज़ कोठीवाले भागने लगे। महामति हेस्टिंग्स भागकर अपने दीवान कान्ता बाबू के घर में छिप गये। सब ने समझ लिया, रात्रि के अन्धकार के बढ़ने की देर है, बस, नवाब की सेना बलपूर्वक क़िले में घुसकर अँग्रेज़ों के माल-असबाब का सफ़ाया कर, लूट-पाट मचा देगी।

क़िले में जो नौकर तथा गोरे-काले सिपाही थे, वे तैयार होकर दरवाज़े पर आ डटे। परन्तु, बुद्धिमान नवाब ने आक्रमण नहीं किया। उसका मतलब खून बहाने का न था। वह केवल उनकी राजनीति के विरुद्ध, क़िले बनाने की कार्य्यवाही का विरोध करने और अपनी आज्ञा के निरादर का दण्ड देने आया था।

सोमवार, मंगल, बुध, बृहस्पतिवार भी बीत गया। नवाब की अगणित सेना क़िला घेरे खड़ी रही। पर आक्रमण नहीं किया। उस क्षुद्र क़िले को राख का ढेर बनाना क्षण-भर का काम था। इस चुप्पी से अँग्रेज़ बड़े चकित हुए; घबराये भी। न-मालूम नवाब का इरादा क्या है? अन्त में साहस करके डा॰ फ़ोर्थ साहब को दूत बनाकर नवाब की सेवा में भेजा।

उमरबेग ने डॉक्टर को समझा दिया—"घबराओ मत, नवाब का इरादा खून-ख़राबी का नहीं है। आपके सरदार वाट्स साहब को नवाब के दरबार में सिर्फ़ एक मुचलका लिख देना होगा। और उसे वे यदि राज़ी से न लिखेंगे, तो ज़बर्दस्ती लिखाया जायगा। सिर्फ़ इतनी सेना इसीलिये यहाँ आई है।"

पर वाट्स साहब को आत्म-समर्पण करने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने अत्यन्त नम्रतापूर्वक लिख भेजा—

"नवाब साहब का अभिप्राय ज्ञात होजाने-भर की देर है। पश्चात् जो उनकी आज्ञा होगी—अँगरेज़ों को वही स्वीकार होगा।" इस पत्र का नवाब के दरबार से यही उत्तर मिला—"क़िले की चहारदीवारी गिरादो—बस, यही नवाब का एक-मात्र अभिप्राय है।"

अँगरेज़ों ने बड़े शिष्टाचार और नम्रता से कहला भेजा कि—नवाब का जो हुक्म होगा, वही किया जायगा। परन्तु वे अपनी अभ्यस्त रिश्वत और खुशामद के ज़ोर से मतलब निकालने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने अमीर उमरावों को इसी बल पर अपने वश में कर लिया। पर, वास्तव में अँगरेज़ सिराजउद्दौला के स्वभाव और उद्देश्य को नहीं जानते थे। उन्होंने इस खटपट का यही मतलब समझा था कि रिश्वत और भेंट लेने के लिये यह

बया जाल फैलाया गया है। काले लोगों को हीन समझने वाले इन बनियों के दिमाग में यह बात न आई कि सिराजुद्दौला युवक और ऐयाश है—तो क्या है, वह देश का राजा है। विद्वान् सिराजउद्दौला, इन प्रलोभनों से ज़रा भी विचलित न हुआ।

अन्त में वाट्स साहब हाथ में रूमाल बाँधकर दरबार में हाज़िर हुए। नवाब ने उनको अँगरेजों के उद्दण्ड-व्यवहार के लिये बहुत लानत-मलामत की। वाट्स बेचारे हवा में बेत की तरह काँपते-थरथराते खड़े रहे। लोगों को भय था कि नवाब इन्हें कहीं कुत्तों से न नुचवा दे। परन्तु, उसने क्रोधित होने पर भी कर्त्तव्य का ख़याल किया। उसने साहब को अपने डेरे में जाकर मुचलका लिख देने की आज्ञा दी। वाट्स साहब ने जल्दी-जल्दी मुचलका लिख दिया। उसका अभिप्राय यह था—

"कलकत्ते का क़िला गिरा देंगे। कुछ अपराधी, जो भागकर कलकत्ते में छिप गये, उन्हें बाँधकर ला देंगे। बिना महसूल व्यापार करने की जो सनद बादशाह से कम्पनी ने पाई है, और उसके बहाने बहुतेरे अँगरेजों ने बिना महसूल व्यापार करके जो हानि पहुँचाई है, उसको भर-पाई कर देंगे। कलकत्ते के अंग्रेज़ कर्मचारी हॉलवेलके अत्याचारों से—देशी प्रजा जो कठिन क्लेश भोग रही है, उसे, उनसे मुक्त करेंगे।"

मुचलका लिखवाकर वाट्स और चेम्बर्स को उसकी शर्तों के पालन होने तक मुर्शिदाबाद में नज़रबन्द करके नवाब शान्त हुए। परन्तु पन्द्रह दिन बीतने पर भी मुचलके की शर्तों का कलकत्तेवालों ने पालन नहीं किया। वाट्स की स्त्री और नवाब की माता में मेल-जोल था। वह अन्तःपुर में जाकर बेगम-मण्डली में 'हाय-दैया' मचाने—रोने-पीटने लगीं। उसके करुण-विलापों से पिघलकर नवाब की माता ने पुत्रसे दोनों को छोड़ देने का अनुरोध किया। माता की आज्ञा शिरोधार्य कर, नवाब को बिलकुल अनिच्छा से दोनों बन्दियों को छोड़ना पड़ा।

शीघ्र ही नवाब को मालूम हुआ, कि अँगरेज़-लोग मुचलके की शर्तों का पालन नहीं करेंगे। अतएव उसने व्यर्थ आलस्य में समय न खो,

कलकत्ते को एक दूत भेजा और स्वयं सेना ले, चलने की तैयारी करने लगा।

अँगरेज़ों ने यह समाचार पाकर झटपट ढाका, बालेश्वर, जगदिया आदि स्थानों की कोठियों को सूचना दे दी कि, बहीखाता-आदि समेट-समाट-कर सुरक्षित स्थानों में चले जाओ। कलकत्ते में गवर्नर ड्रेक नगर-रक्षा के लिये सैन्य-संग्रह और बन्दोबस्त करने लगे। वास्तव में वे मिजाज को अस्थाई नवाब समझते थे। उनका ख़्याल था, अनेक घरू शत्रुओं से घिरा रहकर वह हमारे इस तुच्छ काम पर क्या दृष्टि डालेगा? इसके सिवा, अभी तक अपनी घूँस और रिश्वत पर उन्हें बहुत भरोसा था।

पर सिराजउद्दौला वास्तव में नीतिज्ञ पुरुष था। वह जानता था, कि मेरे सभी सरदार मेरे विरोधी हैं। वे बार-बार उसे कलकत्ते न-जाने की सलाह देते थे; क्योंकि प्रायः सभी नमकहराम और घूँस खाये बैठे थे। पर नवाब ने किसी की न सुनी। वरन्, जिस-जिस पर उसे षड्यन्त्र का संदेह हुआ, उस-उस को उसने अपने साथ ले लिया; जिससे पीछे का खटका भी मिट गया। राजवल्लभ, मीरजाफ़र, जगतसेठ, मानिकचन्द, सभी को अनिच्छा होने पर भी नवाब के साथ चलना पड़ा। अँगरेज़ों ने स्वप्न में भी न सोचा था कि वह ऐसी बुद्धिमत्ता से राजधानी के सब झगड़े मिटा-कर, बिलकुल बे-खटके होकर, इतनी सैन्य ले; कलकत्ते पर आक्रमण करेगा।

७ जून को ख़बर कलकत्ते पहुँची। नगर में हलचल मच गई। अँग-रेज़ लोग प्राणपण से तैयारी करने लगे। उसी क़िले में ढेरों तोपें लगायी गईं। जल-मार्ग सुरक्षित करने को, बाग़बाज़ार वाली खाई में लड़ाई के जहाज़ लगा दिये गये। १५०० सिपाही खाई के बराबर खड़े किये गये। चहारदीवारी की मरम्मत करवाकर उसमें अन्नादि भर दिया गया। मद्रास से मदद माँगने को हरकारा भेजा गया, और जिन फ्रांसीसी शत्रुओं के डर से क़िला बनाने का बहाना किया गया था, उनसे तथा डचों से भी सहायता माँगी गई।

डच लोग तो सीधे-सादे सौदागर थे। उन्होंने लड़ाई-झगड़े में फँसने

से साफ़ इनकार कर दिया। परन्तु फ्रेंचों ने जवाब दिया—"यदि अँगरेज़ी शेर प्राणों से बहुत ही भयभीत हो रहे हैं, तो वे फ़ौरन् ही बिना किसी रोक-टोक के चन्द्रनगर में हमारा आश्रय लें। आश्रितों की प्राण-रक्षा के लिये फ्रान्सीसी वीर सिपाही अपने प्राण देने में तनिक भी कातर न होंगे।"

इस उत्तर से अँगरेज़ लज्जित हुए, और खीझे। कलकत्ता से ढाई कोस पर गंगा के किनारे नवाब का एक पुराना क़िला था। ५० सिपाही उसमें रहते थे। वह कभी किसी काम न आता था। अँगरेज़ों ने दौड़कर उस पर हमला कर दिया। बेचारे सिपाही भाग गये। उसकी तोपें तोड़-फोड़कर अँगरेज़ों ने गंगा में बहाईं, और बड़े गौरव से अपनी विजय-पताका उस पर फहरा दी। लोगों ने समझ लिया, बस, अब अँगरेज़ों की ख़ैर नहीं है। नवाब यह उद्दण्डता न सहन करेगा। दूसरे दिन २००० नवाबी सिपाही क़िले के सामने पहुँचे ही थे, कि अँगरेज़-अफ़सर लज्जा को वहीं छोड़, खसकने लगे। परन्तु सिपाहियों ने भागतों पर भी तरस न किया। भागते-जहाज़ों पर तड़ातड़ गोले बरसने लगे। अँगरेज़ अपना गोला-बारूद नष्ट कर, और अपनी झण्डी उखाड़, कलकत्ते लौट आये।

यहाँ आकर, उन्होंने दो-एक और भी बढ़िया काम किये। कृष्णवल्लभ, जो राजा राजवल्लभ का पुत्र था, और भागकर विद्रोह के अपराध में अँग-रेज़ों की शरण आ-रहा था, उसे इस डर से क़ैद कर लिया कि, कहीं यह क्षमा-आदि माँगकर नवाब से मिल न जाय।

अमीचन्द कलकत्ते का एक प्रमुख व्यापारी था। सेठों में जैसी प्रतिष्ठा जगतसेठ की थी, व्यापारियों में वही दर्जा अमीचन्द का था। यह व्यक्ति भारतवर्ष के पश्चिमी प्रदेश का बनिया था। अँगरेज़ों ने उसी की सहायता से बंगाल में वाणिज्य-विस्तार का सुभीता पाया था। उसी की मार्फ़त अँगरेज़ गाँव-गाँव रुपया बाँटकर कपास तथा रेशमी वस्त्र की ख़रीद में ख़ूब रुपया पैदा कर सके थे। उसकी सहायता न होती, तो अँगरेज़ लोगों को अपरिचित देश में अपनी शक्ति बढ़ाने और प्रतिष्ठा प्राप्त करने का मौक़ा

क्यापि न मिलता। इस व्यक्ति के परिचय में इतिहासकार अक्षयकुमार लिखते हैं:—

"केवल व्यापारी कहने ही से अमीचन्द का परिचय नहीं मिल सकता। सैकड़ों विशाल-महलों से सजी हुई उसकी राजधानी, तरह-तरह की पुष्प-बेलियों से परिपूरित उसका वृहत् राज-भण्डार, मशस्त्र सैनिकों से सुसज्जित उसके महल का विशाल फाटक, देखकर औरों की तो बात क्या है स्वयं अङ्गरेज़ उसे राजा मानते थे। विपत्ति पड़ने पर अङ्गरेज़ लोग सदा अमीचन्द की ही शरण लेते थे। अनेक बार अमीचन्द ही के अनुग्रह से अङ्गरेज़ों की इज़्ज़त बची थी।"

अँग्रेज़ इतिहासकार 'अर्मी साहब' ने लिखा है—

"अमीचन्द का महल बहुत ही आलीशान था। उसके भिन्न-भिन्न विभागों में सैंकड़ों कर्मचारी हर वक़ काम किया करते थे। फाटक पर पर्याप्त सेना उसकी रक्षा के लिये तैयार रहती थी। वह कोई मामूली सौदागर न था, बल्कि राजाओं की भाँति बड़ी शान-शौक़त से रहता था। नवाब के दरबार में उसका बहुत आदर था, और नवाब उसे इतना मानते थे कि कोई आफ़त-मुसीबत आने पर नवाब सरकार से किसी तरह की सहायता लेने के लिए लोग प्रायः अमीचन्द की ही शरण लेते थे।"

जिस समय नवाब की सेना कलकत्ते की तरफ़ आरही थी, तो अमीचन्द के मित्र राजा रामसिंह ने गुप्त रूप से एक पत्र लिखकर अमीचन्द को चिता दिया था कि 'तुम सुरक्षित स्थान में चले जाओ तो अच्छा है।' दैवयोग से यह पत्र अँग्रेज़ों के हाथ लग गया। बस, इसी अपराध पर धीर-वीर अँग्रेज़ों ने उसको पकड़कर क़ैदख़ाने में ठूँस देने का हुक्म फ़ौज को दे दिया। अमीचन्द को इस विपत्ति की कुछ ख़बर न थी। एकाएक फ़ौज ने उसे गिरफ़्तार कर लिया, और अभियुक्तों की तरह बाँधकर ले चली। कलकत्ते के देशी लोगों में इस घटना से हाहाकार मच गया।

अमीचन्द का एक सम्बन्धी, जो सारे कार बार का प्रबन्धक था, इस अत्याचार से डरकर स्त्रियों को कहीं सुरक्षित स्थान में पहुँचाने का बन्दोबस्त करने लगा। पर अँग्रेज़ों ने जब यह सुना, तो अमीचन्द के घर पर धावा

बोल दिया। अमीचन्द के यहाँ जगन्नाथ नामक एक बूढ़ा विश्वासी-जमादार था। वह जाति का क्षत्रिय था। वह तत्काल अमीचन्द के नौकर बरक़न्दाज़ों को इकट्ठा करके महल के फाटक पर रक्षा करने को कमर-कसकर तैयार होगया। अँगरेज़ों ने आकर फाटक पर लड़ाई-दङ्गा शुरू कर दिया। दोनों पक्षों की मार-काट से ख़ून की नदी बह निकली। अन्त में एक-एक करके अमीचन्द के सिपाही धराशायी हुए। मानुषिक-शक्ति से जो सम्भव था, हुआ। अँगरेज़ बड़े ज़ोरों से अन्तःपुर की ओर बढ़ने लगे। बूढ़े जगन्नाथ का पुराना क्षत्रिय-रक्त गर्म होगया। जिन आर्य-महिलाओं को भगवान भुवन-भास्कर भी नहीं देख सकते थे, वे क्या विदेशियों-द्वारा दलित होंगी? स्वामी के परिवार की लज्जावती कुल-कामिनियाँ भी क्या बाँधकर विधर्मियों की बन्दी की जावेंगी?

बस, पल-भर में बिजली की तरह तड़पकर उसने इधर-उधर से टूटे-फूटे काठ किवाड़ और लकड़ी एकत्र कर आग लगादी और नङ्गी-तलवार ले, अन्तःपुर में घुस गया, तथा एक-एक कर १३ महिलाओं का सिर काट-काट-कर आग में डाल दिया। अन्त में पतिव्रताओं के ख़ून से लाल—वही पवित्र-तलवार अपनी छाती में खोंस ली, और उसी रक्त की कीचड़ में गिर पड़ा!

देखते-ही-देखते आग और धुएँ का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। बड़ी कठिनता से जगन्नाथ को सिपाहियों ने उठाकर क़ैद किया—उसके प्राण नहीं निकले थे। पर अँगरेज़ों को भीतर घुसने का समय न मिला,—धाँय-धाँय करके वह विशाल महल जलने लगा।

नवाब हुगली तक आ पहुँचा। गङ्गा की धारा को चीरती हुई सैंकड़ों सुसज्जित-नावें हुगली में जमा होने लगीं। डच और फ्रांसीसी सौदागरों ने नवाब से निवेदन किया कि 'यूरोप में अँगरेज़ों से सन्धि होने के कारण वे इस लड़ाई में शरीक़ नहीं हो सकते हैं।' नवाब ने उनकी इस नीति-युक्त बात को स्वीकार कर, उनसे गोला-बारूद की सहायता ले, उन्हें विदा किया।

नवाब के कलकत्ते पहुँचने की ख़बर बिजली की तरह से फैल गई। अँगरेज़-लोग क़िले में घुसकर फाटक बन्द कर, बैठ रहे। जिसको जिधर राह

सूखी, भाग निकला। रास्तों, घाटों, जंगलों और नदियों के किनारों में झुण्ड-के-झुण्ड स्त्री-पुरुष कुहराम मचाते भागने लगे। पर सब से अधिक दुर्दशा उन अभागों की हुई थी, जिन्होंने काले चमड़े पर टोपा पहनकर अपने धर्म को तिलांजलि दी थी; इनसे देशवासी भी घृणा करते थे, और अँगरेज़ भी। निदान, इन्हें कहीं आसरा न था। ये सब स्त्री, बच्चे, बूढ़े इकट्ठे होकर क़िले के द्वार पर सिर पीटने लगे। अन्त में इनके आर्तनाद से निरुपाय होकर अँगरेज़ों ने इन्हें भी क़िले में आश्रय दिया।

नवाब की बृहदाकार तोपें भीषण गर्जन द्वारा जब अपना परिचय देने लगीं, तो अँगरेज़ों के छक्के छूट गये। उन्होंने अब भी मायाजाल फैलाने, घूँस देने, और नज़र-भेंट देने की बहुत चेष्टा की, पर नवाब ने इरादा नहीं बदला। उसका यही हुक्म था, कि क़िला अवश्य गिरा दिया जावेगा।

यह क़िला पूर्व की ओर २१० गज़, दक्षिण की ओर १३० गज़, और उत्तर की ओर सिर्फ़ १०० गज़ था। मज़बूत चहारदीवारी के चारों कोनों पर चार बुर्ज़ थे। प्रत्येक पर १० तोपें लगी थीं। पूर्व की ओर विशाल फाटक पर ४ बृहदाकार तोपें मुँह फैला रही थीं। इसके पश्चिम की ओर गंगा की प्रबल धारा समुद्र की ओर बह रही थी। पूरब की ओर फाटक के पास से गुज़रती हुई लालबाज़ार की सीधी और सुन्दर सड़क बलियाघाट तक चली गई थी। इस क़िले पर पूर्व, उत्तर और दक्षिण की ओर तोपों के तीन मोर्चे और भी थे। कलकत्ते के तीन ओर मराठा-खाई थी। दक्खिन की ओर खाई न थी — घना जंगल था। पीछे गंगा में युद्ध-सज्जा से सजे जहाज़ तैयार थे। १८ जून को नवाब की तोप दग़ी। अँग्रेज़ों ने तत्काल क़िले और जहाज़ों से आग बरसानी शुरू की।

अङ्गरेज़ों का ख़्याल था कि बाग़बाज़ार की ओर से ही नवाब आक्रमण करेगा। उस मोर्चे पर उन्होंने बड़ी-बड़ी तोपें लगा रक्खी थीं। पर, अमीचन्द के उस ज़ख़्मी जमादार जगन्नाथ की सहायता से नवाब को यह भेद मालूम होगया कि नगर के दक्षिण में मराठा-खाई नहीं है। अतएव नवाब ने उसी ओर से आक्रमण किया।

लालबाज़ार के रास्ते के ऊपर पूर्व की ओर जो तोपों का मंच बनाया गया था, उसके सामने ही कुछ दूर पर जेलख़ाना था। अँगरेज़ों ने उसकी एक दीवार को फोड़कर कुछ तोपें जुटा रक्खी थीं। उनका ख़्याल था कि लालबाज़ार के रास्ते नवाबी सेना के अग्रसर होते ही जेलख़ाने और पूर्व वाले मोर्चों से आग बरसाकर सेना को तहस-नहस कर देंगे। परन्तु नवाब का सेना अनजानों की तरह तोपों के सामने सीधी नहीं आई। उसने साव-धानी से सड़कवाला रास्ता ही छोड़ दिया। केवल पहरेदारों को मारकर वह उत्तर और दक्षिण को हटने लगी।

देखते-ही-देखते अँगरेज़ी तोपों के तीनों मोर्चे घिर गये। अब तो नगर-रक्षा असम्भव होगई। कलकत्ते के स्वामी हॉलवेल साहब और मोर्चे के अफ़सर कप्तान क्लेटन क़िले में भाग गये। मोर्चे नवाबी सेना के क़ब्ज़े में आगये। अब उन्हीं तोपों से क़िले पर गोला बरसने लगा। क़िले में कुहराम मच गया।

क़िले के नीचे गंगा में कुछ नाव और जहाज़ तैयार थे। उनके द्वारा स्त्रियों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देने की व्यवस्था शाम को हुई, स्त्रियों को जहाज़ तक पहुँचाने को दो अफ़सर मेनिंहम और फ्रॉकलेण्ड रात्रि के अन्धकार में चुपके-चुपके निकले। परन्तु जहाज़ पर पहुँचकर उन्होंने फिर क़िले में आने से साफ़ इन्कार कर दिया। उनकी इस कायरता का वर्णन् थरंटन साहब ने इन शब्दों में किया है—"...........उनका पारस्परिक अनैक्य और मतभेद तथा कम्पनी के कुछ प्रधान-कर्मचारियों को बिना ही कुछ हानि उठाये भाग जाने की इच्छा,—यह ऐसे नीच काम थे, जो पराजय के अन्तिम समय में किये गये, और जो शायद अँग्रेजों में कभी नहीं हुए"

क़िले की भीतरी दशा अजीब थी। सब कोई दूसरों को सिखाने में लगे थे। पर स्वयं किसी की बात को कोई नहीं मानना चाहता था। बाहर तो नवाबी सेना उन्मत्तों की भाँति कूद-फाँद और शोर मचा रही थी, भीतर फ़िरंगियों का आर्त्तनाद, सिपाहियों की परस्पर की कलह और

सेनापतियों के मति-भ्रम-इत्यादि से क़िले में शासन-शक्ति का सर्वथा लोप होगया था।

बड़ी कठिनता से रात को दो बजे सामरिक सभा जुड़ी। इसमें छोटे-बड़े सभी थे। बहीखाता समेटकर भाग जाना ही निश्चय हुआ। प्रातःकाल जो भागने को एक गुप्त दर्वाज़ा खोला गया, तो बहुत-से आदमियों ने उतावली से भागकर, किनारे पर आकर कोलाहल मचा दिया, और नावों पर बैठने में छीना-झपटी करने लगे। परिणाम बुरा हुआ—नवाबी सेना ने सावधान होकर तीर बरसाने शुरू किये। कितनी ही नावें उलट गईं। किसी तरह कुछ लोग जहाज़ तक पहुँचे। उस पर गोले बरसाये गये। फिर भी गवर्नर ड्रेक, सेनापति मनचन, कप्तान ग्राण्ट आदि बड़े-बड़े आदमी इस तरह से भाग गये।

अब कलकत्ते के ज़मींदार हॉलवेल साहब ही मुखिया रह गये। वे क्या करते? अँग्रेज़ समझते थे कि, महामति ड्रेक घबराकर मति-भ्रम होने के कारण भाग गये हैं। शायद, वे विचार कर, सहकारियों को सज्जित करके अपने साथियों की रक्षा के लिये फिर आवें। पर आशा व्यर्थ हुई। ड्रेक साहब न आये। क़िलेवालों ने लौटने के बहुत संकेत किये—बराबर निवेदन किये। गवर्नर साहब न आये। एक अँग्रेज़ ने लिखा है—"केवल एक नवाब और पन्द्रह वीर पुरुषों की संरक्षता ही से दुर्गवासियों की दुर्दशा का अन्त हो सकता था। परन्तु शोक! भागे हुए अँग्रेज़ों में ऐसे पन्द्रह वीर न थे।"

अब हारकर हॉलवेल साहब अपने पुराने सहायक अमीचन्द की शरण में गये, जो उन्हीं के क़ैदख़ाने में बन्दी पड़ा था। अमीचन्द ने उस समय उनकी कुछ भी लानत-मलामत न कर, उनके कातर-क्रन्दन से द्रवीभूत हो नवाब के सेनानायक मानिकचन्द को एक पत्र इस आशय का लिख दिया—"अब नहीं। काफ़ी शिक्षा मिल गई है। नवाब की जो आज्ञा होगी—अँग्रेज़ वही करेंगे।"

यह पत्र हॉलवेल साहब ने चहारदीवारी पर खड़े होकर बाहर फेंक

दिया। पर इसका कोई जवाब नहीं आया। पता नहीं, वह पत्र ठिकाने पहुँचा भी या नहीं। एकाएक क़िले का पश्चिम दरवाजा टूट गया, और धुआँधार नवाबी सेना क़िले में घुस आई। सब अँगरेज़ क़ैद कर लिये गये। क़िले के फाटक पर नवाबी पताका खड़ी करदी गई।

तीसरे पहर नवाब ने क़िले में पधारकर दर्बार किया। अमीचन्द और कृष्णवल्लभ को खोजा गया। अँगरेज़ों के ही इतिहास में लिखा है कि—"वे दोनों आकर जब नवाब के सामने नम्रतापूर्वक खड़े हुए, तो नवाब ने उनका तिरस्कार तो दूर रहा, उनका आदर करके आसन दिया। यही कृष्णवल्लभ था—जिसकी बदौलत इतने झगड़े हुए थे।"

इसके बाद अँगरेज़ क़ैदियों की तरह बाँधकर नवाब के सामने लाये गये। सामने आते ही हॉलवेल साहब के बन्धन खुलवा दिये गये, और उन्हें अभय-दान देते हुए कहा—"तुम लोगों के उद्दण्ड-व्यवहार के कारण ही तुम्हारी यह दशा हुई है।" इसके बाद सेनापति मानिकचन्द को क़िले का भार सौंपकर दर्बार बर्ख़ास्त किया। थकी-माँदी सेना आराम का स्थान इधर-उधर खोजने लगी।

यह बात बहुत प्रसिद्ध हो गई है, कि नवाब ने १४६ अँगरेज़ उस दिन (२० जून को) रात को—एक १८ फ़ुट आयतन की कोठरी में बन्द करवा दिये, जिसमें सिर्फ़ एक खिड़की थी, और जिसमें लोहे के छड़ लगे हुए थे। प्रातःकाल जब दरवाज़ा खोला गया, तो सिर्फ़ २३ आदमी ज़िन्दा बचे।

काल-कोठरी की यह बात इतनी प्रसिद्ध होगई है कि समस्त भारत और इँग्लैण्ड में बच्चा-बच्चा इस बात को जानता है। पर यह बात प्रमाणित की जा चुकी है यह सिर्फ़ नवाब को बदनाम करने को हॉलवेल साहब ने कहानी गढ़ी थी, जिनके अत्याचार का ज़िक्र मुचलक़े में है, और जो बड़ा मिथ्यावादी आदमी था।

अत्यन्त साधारण बुद्धिवाला व्यक्ति भी समझ सकता है कि; १८ फ़ुट की व्यासवाली कोठरी में १४६ आदमी, यदि वे बोरों की तरह भी लादे

जाएँ तो नहीं आ सकते। इसका ज़िक्र न तो किसी मुसलमान-लेखक ने किया है, न कम्पनी के काग़ज़ों में ही कहीं इसका ज़िक्र है। उस समय मद्रासी अँगरेज़ों और नवाब में जा पीछे हर्जाने की बात चली, उसमें भी काल-कोठरी का ज़िक्र नहीं है। क्लाइव ने जिस तेज़ो तुर्शी के साथ नवाब से पत्र-व्यवहार किया था, उसमें भी काल-कोठरी के अत्याचार का ज़िक्र नहीं है। यहाँ तक कि सिराजउद्दौला और अँगरेज़ोंकी जो पीछे सन्धि स्थापना हुई थी, उस में भी इसका कुछ ज़िक्र नहीं है। क्लाइव ने नवाब को पद च्युत करने पर कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स को, नवाब के अत्याचारों से परिपूर्ण जो चिट्ठी लिखी थी, उसमें भी काल-कोठरी का ज़िक्र नहीं है। अँगरेज़ों ने मीरजाफ़र को अपने हरजाने का पैसा पैसा भरपाई का हिसाब लिखा था, पर उसमें भी कालकोठरी का ज़िक्र नहीं है।

अँगरेज़ों ने लिखा है कि क़िले पर आक्रमण करने से प्रथम क़िले में १७० आदमी थे, जिनमें ६० यूरोपियन थे। इनमें से बहुतेरे ड्रेक के साथ भाग गये थे, २५ मर गये थे, ७० घायल पड़े थे। तिस पर भी १४६ आदमी कहाँ से बन्द किये गये?

यह कहानी वास्तव में २८ फ़र्वरी को हॉलवेल ने अपने एक दोस्त को गढ़कर सुनाई थी। इंग्लैण्ड में भारतीय अँगरेज़ों के अत्याचार और नवाब की हत्याका समाचार पाकर शोर मचा, तब यह सर्व साधारण पर प्रकट की गई और बड़ी सफलता से इसका प्रभाव पड़ा। हॉलवेल साहब इसका एक स्मृति-स्तम्भ भी बनवा गये थे, पर पीछे वह अँगरेज़ों ने ही गिरा दिया। आज उसी कल्पित काल-कोठरी की यातना प्रत्येक जेल में प्रत्येक क़ैदी को भुगतनी पड़ती है।

ये हॉलवेल साहब वास्तव में पहले डॉक्टर थे, और अँगरेज़ों की कम्पनी से इन्हें ४००) रुपये तनख़्वाह मिलती थी। नज़र-भेंट में भी ख़ासी आमदनी होती थी। पर ये काले लोगों के प्रति बड़े ही निर्दयी थे। इसी से नवाब ने मुचलका लिखाया था। जब कलकत्ता फ़तह हुआ, तो हॉल-वेल साहब का सर्वनाश हुआ। साथ-ही वे बन्दी करके मुर्शिदाबाद लाये

गये । पर पलासी-युद्ध में मीरजाफ़र से घूँस में १ लाख रुपया इन्हें मिला। तब उन्होंने कलकत्ते के पास थोड़ी-सी ज़मींदारी ख़रीद की। कुछ दिन कलकत्ते के गवर्नर भी रहे। पर शीघ्र-ही विलायत के अधिकारियों से लड़ने-भिड़ने के कारण अलग कर दिये गए, और जिस मीरजाफ़र ने इतना रुपया दिया था, उसे-ही झूँठा कलङ्क लगाकर राज्य-च्युत किया। अन्त में इङ्गलैंड जाकर मर गये।

अस्तु—कलकत्ते का शासन-भार राजा मानिकचन्द को दे, नवाब ने कलकत्ते से चलकर हुगली में पड़ाव डाला। डच और फ़्रांसीसी सौदागर गले में दुपट्टा डाले आधीनता स्वीकार करने के लिये सम्मानपूर्वक नज़र भेंट लाये। डचों ने ४॥ लाख और फ़्रेञ्चों ने ४॥ लाख रुपया नवाब को भेंट किया। नवाब ने दो अँग्रेज़ वाट्स और क्लेट को बुलाकर यह समझा दिया कि—" मै तुम लोगों को देश से बाहर निकालना नहीं चाहता। तुम ख़ुशी से कलकत्ते में रहकर व्यापार करो।" नवाब तो राजधानी को गये, और अँग्रेज़ कलकत्ते में वापिस आये, और अमीचन्द की उदारता की बदौलत उन्होंने अन्न-जल पाया।

इस यात्रा से लौटकर ११ जुलाई को नवाब ने राजधानी में गाजे-बाजे से प्रवेश किया। तोपों की सलामी दगी। नाच-रंग होने लगे। नवाब रत्न-जटित पालकी पर अमीर-उमराओं के साथ नगर में होकर जब गाजे-बाजे से मोती-झील को आ रहा था, उस समय रास्ते में, कारागार में स्थित हॉलवेल साहब पर नज़र पड़ी। उसने तत्काल सब बाजे बन्द करवा दिये, और पालकी से उतर, पैदल कारागार के द्वार पर जाकर चोबदार को हॉलवेल की हथकड़ी-बेड़ी खुलवाने का हुक्म दिया—हॉलवेल साहब और उनके तीन साथियों को यथेच्छ स्थान में जाने को मुक्त कर दिया। हॉलवेल साहब ने स्वयं यह बात लिखी है।

धीरे धीरे अँग्रेज़ फिर कलकत्ते में आकर वाणिज्य करने लगे। पर शीघ्र ही एक और दुर्घटना हो गई। एक अँगरेज़-सार्जन ने एक निरपराध मुसलमान की हत्या कर डाली। बस, राजा मानिकचन्द की आज्ञा से सब

अँगरेज़ कलकत्ते से निकाल बाहर किये गये। अँगरेज़-लोग निरुपाय होकर पलता-बन्दर पर इकट्ठे होने लगे। इस अस्वस्थकर स्थान में अँगरेज़ों की बड़ी दुर्दशा हुई। प्रचण्ड गर्मी, तिस पर निराश्रय, और खाद्य-पदार्थों का अभाव! जहाज़ का भण्डार ख़ाली, पास में रुपया नहीं। न कोई बाज़ार! केवल कुछ डच, फ्रांसीसी और काले बंगालियों की कृपा से कुछ खाद्य-पदार्थ मिल जाया करता था।

दुर्दशा के साथ दुर्गति भी उनमें बढ़ गई। किसके दोष से हमारी यह दुर्दशा हुई?—इसी बात को लेकर परस्पर विवाद चला। सब लोग कलकत्ते की कौंसिल को सारा दोष देने लगे। कौंसिल के सब लोग परस्पर एक दूसरे को दोष देने लगे। घोर वैमनस्य बढ़ा। अन्त में सब यही कहने लगे कि लोभ में आकर कृष्णवल्लभ को जिन्होंने आश्रय दिया, और कम्पनी के नाम से परवाने औरों को बेचकर जिन्होंने बदमाशी की, वे ही इस विपत्ति के मूल कारण हैं।

पाँचवीं अगस्त को मद्रास में भागे हुए अँगरेज़ों ने पहुँचकर कलकत्ते की दुर्दशा का हाल सुनाया। सुन कर सबके सिर पर वज्र गिरा। सब हत-बुद्धि होगये। सब ने अन्त में एक कमेटी की। ख़ूब गर्जन तर्जन हुआ। उन दिनों फ्रांस से युद्ध छिड़ने के कारण अँग्रेज़ों का बल क्षीण हो रहा था। वे इसलिये कुछ निश्चय न कर सके।

उधर पालता बन्दर में अँगरेज़ चुपचाप नहीं बैठे थे। यदि नवाब पलता-बन्दर तक बढ़ा चला आता, तो अँगरेज़ों को चोरों की तरह भी भागने का अवसर न मिलता। पर उसका उद्देश्य केवल उनके दुष्ट व्यवहार का दण्ड देना ही था। अनेक बंगाली इन दुर्दिनों में भी लुक-छिप कर इनकी सहायता कर रहे थे। औरों की तो बात अलग रही—स्वयं अमीचन्द, जिसका कि अँग्रेज़ों ने सर्वनाश किया था, और जो इन्हीं की कृपा से शोक-ग्रस्त और मर्म-पीड़ित हो, पथ का भिखारी बन चुका था, वह भी नवाब के दर्बार में उनके उत्थान के लिये बहुत कुछ अनुनय-विनय कर रहा था। उसने एक गुप्त चिट्ठी अँगरेज़ों को लिखी थी—जिसका आशय था—

"सदा की भाँति मैं आज भी उसी भाव से आप लोगों का भला चाहता हूँ। यदि आप ख़्वाजा वाजिद, जगतसेठ, या राजा मानिकचन्द से गुप्त पत्र व्यवहार करना चाहें, तो मैं तुम्हारे पत्र उनके पास पहुँचाकर जवाब मँगा दूँगा।"

इस पत्र से अँगरेज़ों को साहस हुआ। शीघ्र ही मानिकचन्द की कृपा-दृष्टि उन पर हुई। उनके लिये बाज़ार खोल दिया गया, और तरह-तरह की नम्र-विनतियों से नवाब के दर्बार में व्यापार करने के आज्ञा-पत्र के साथ प्रार्थना-पत्र जाने लगे, और उनके सफल होने की भी कुछ-कुछ आशय होने लगी। परन्तु इसी बीच में क़ासिम-बाज़ार से हेस्टिंग्स ने लिखा,—'मुर्शिदाबाद में बड़ा गड़बड़ मचा है। दिल्ली से शौक़तजंग ने बंगाल, बिहार, और उड़ीसा की नवाबी की सनद प्राप्त करली है, और प्रायः सभी ज़मींदार उसके पक्ष में तलवार उठावेंगे। अब सिराजुद्दौला का गर्व चूर्ण हुआ चाहता है।"

इस ख़बर के मिलते ही अँगरेज़ों के इरादे ही बदल गये। अब वे शौक़तजंग से मेल बढ़ाने की व्यवस्था करने लगे। पर नवाब को इसकी कुछ ख़बर न थी। उसके पास बराबर अनुनय-विनय के पत्र जा रहे थे, जो उसे इस राज विद्रोह की कुछ भी ख़बर लग जाय, तो शायद फलता-बन्दर ही अँगरेज़ों का समाधि क्षेत्र बन जाय!

इधर मद्रासवाले अँगरेज़ों ने कोई दो महीने पीछे कलकत्ते की रक्षा का निश्चय बड़े वाद-विवाद के बाद किया, और कर्नल क्लाइव तथा एडमिरल वाट्सन के साथ जल और स्थल की सेनायें भेज दी गईं। ये लोग ५ सैनिक जहाज़ों के साथ १३ वीं अक्तूबर को चले। ५ जहाजों पर असबाब था। ९०० गोरे और १५०० काले सिपाही थे।

दिल्ली का सिंहासन धीरे-धीरे काल के काले हाथों से रँग रहा था। पर अब भी उसके नाम के साथ चमत्कार था। नवाब ने सुना कि शाहज़ादा शौक़तजंग की सहायतार्थ आ रहा है तो उसने उसके आने से पूर्व ही शौकतजंग को परास्त करने का निश्चय किया। उसे यह मालूम था

कि शौक़तजंग बिल्कुल मूर्ख, घमण्डी और दुराचारी आदमी है, और उसके साथी—स्वार्थी और खुशामदी ! उसे हराना सरल है । परन्तु वह भी अलीवर्दीख़ाँ के ख़ान्दान का था । अतएव उसने शौक़तजंग को एक चिट्ठी लिखकर समझाया । उसका जवाब जो मिला—वह, यह था—

"हम बादशाह की सनद पाकर बंगाल, बिहार और उड़ीसा के नवाब हुए हैं । तुम हमारे परम आत्मीय हो । इसलिये हम तुम्हारे प्राण लेना नहीं चाहते । तुम पूर्वी बंगाल के किसी निर्जन स्थान में भागकर अपने प्राण बचाना चाहो, तो हम उसमें बाधा नहीं देंगे । बल्कि तुम्हारे लिये सुव्यवस्था कर देंगे, जिससे तुम्हें अन्न-वस्त्र को कष्ट न हो । बस, देर मत करना, पत्र को पढ़ते ही राजधानी छोड़कर भाग आओ । परन्तु—ख़बरदार! ख़ज़ाने के एक पैसे में भी हाथ न लगाना । जितनी जल्दी हो सके, पत्र का जवाब लिखो ! अब समय नहीं है । घोड़े पर ज़ीन कसा हुआ है, पाँव रक़ाब में डाल चुका हूँ । केवल तुम्हारे जवाब की देर है ।"

इस पत्र से ही प्रमाणित होता है कि शौक़त किस योग्यता का आदमी था । नवाब ने यह पत्र उमरावों को पढ़ सुनाया । उसे आशा थी, सब कूच की सलाह देंगे और बाग़ी, गुस्ताख़ शौक़त को सब बुरा कहेंगे । परन्तु ऐसा नहीं हुआ । मंत्री से लेकर दरबारियों तक ने विषय छिड़ते ही वाद-विवाद उठाया । जगतसेठ ने प्रतिनिधि बनकर साफ़ कह दिया—"जब आपके पास बादशाह की सनद नहीं है—शौक़तजंग ने उसे प्राप्त कर लिया है, ऐसी दशा में कौन नवाब है—इसका कुछ निर्णय नहीं हो सकता ।'

नवाब ने देखा, विद्रोह ने टेढ़े मार्ग का अवलम्ब न किया है । उसने ग़ुस्से में आकर जगतसेठ को क़ैद कर लिया, और दरबार बर्ख़ास्त कर दिया । फिर फ़ौरन् आक्रमण करने को पुर्निया की ओर कूच कर दिया ।

शौक़तजङ्ग मूर्ख, घमण्डी, और निकम्मा नौजवान था । वह किसी की राय न मान, स्वयं ही सिपहसालार बन गया । इससे प्रथम उसने युद्ध-क्षेत्र की कभी सूरत भी नहीं देखी थी । अनुभवी सेनापतियों ने सलाह

देनी चाही, तो उसने अकड़कर जवाब दिया—"अभी मैंने इस उमर में ऐसी-ऐसी सौ फ़ौजों की फ़ौजकशी की है। सेनानायक बेचारे अभिवादन कर-करके लौटने लगे। परिणाम यह हुआ कि इस युद्ध में शौक़तजङ्ग मारा गया। नवाब की विजय हुई। पुर्निया का शासन-भार महाराज मोहनलाल को देकर और शौक़त की माँ को आदर के साथ संग लाकर नवाब राजधानी में लौट आया, तथा शौक़त की माँ सिराज की माँ के साथ अन्तःपुर में रहने लगीं।

इस बीच में उसे अँगरेज़ों पर दृष्टि देने का अवकाश न मिला था। अतः उन्होंने घूस-रिश्वत दे-दिलाकर बहुत-से सहायक बना लिये थे। जगतसेठ को मेजर किलप्याट्रिक ने लिखा—"अँगरेजों को अब आपका-ही भरोसा है। वे क़तई आप पर-ही निर्भर हैं। जो अँगरेज़ एक वर्ष पहले कलकत्ते में टकसाल खोलकर जगतसेठ को चौपट करने के लिये बादशाह के दर्बार में घूस के रुपयों की बौछार कर रहे थे, वे ही अब, जगतसेठ के तलुए चाटने लगे। मानिकचन्द को घूस देकर पहले ही मिला लिया गया था। सब ने मिलकर अँगरेज़ों को पुनः अधिकार देने के लिये नवाब से प्रार्थना की। नवाब राज़ी भी हुआ।

परन्तु अँगरेज़ इधर लल्लो-पत्तो कर रहे थे, और उधर मद्रास से फ़ौज मँगाने का प्रबन्ध कर रहे थे। नमकहराम मानिकचन्द ने नदी की ओर बहुत-सी तोपें सजा रक्खी थीं। पर सब दिखावा था—वे सब टूटी-फूटी थीं। क़िले में सिर्फ़ २०० सिपाही थे, और हुगली के क़िले में सिर्फ़ ५०। ये सब ख़बरें अँगरेज़ों को मिल रही थीं।

क्लाइव और वाट्सन धीरे-धीरे कलकत्ते की ओर बढ़े चले आ रहे थे। दोनों 'चोर-चोर मौसेरे भाई' थे। कुछ दिन पहले मालाबार के किनारे पर युद्ध-व्यापार में दोनों ने ख़ूब लाभ उठाया। मराठों ने इन दोनों की सहायता से स्वर्ण-दुर्ग को चट कर डाला था, और इसके बदले इन्हें १५ लाख रुपये मिले थे। उड़ीसा के किनारे पहुँचकर एक दिन जहाज़ पर ही दोनों में इस बात का परामर्श हुआ कि यदि बंगाल को हमने लूट पाया, तो लूट

में से किसे कितना हिस्सा मिलेगा। दोनों में बहुत वाद-विवाद के पीछे अद्धम-अद्धा तय हुआ।

जिन्होंने इन दोनों को बंगाल भेजा था—उन्होंने सिर्फ़ बंगाल में वाणिज्य-स्थापना करने की हिदायत कर दी थी, और बिना रक्त-पात के यह काम हो, इसीलिये निज़ाम और सरकार के नवाब से सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ भी सिराजुद्दौला के नाम लिखाई थीं। पर ये लोग तो रास्ते ही में लूट के माल का हिसाब लगा रहे थे।

इधर पलता-बन्दर के अँगरेज़ों की विनीत प्रार्थना से नवाब उन्हें फिर से अधिकार देने को राज़ी होगया था। सब बखेड़ों का अन्त होने-वाला था, कि एकाएक नवाब को ख़बर लगी, कि मद्रास से अँगरेज़ों के जहाज़ फ़ौज और गोला-बारूद लेकर पलता-बन्दर आगये हैं। इस ख़बर के साथ ही वाट्सन साहब का एक पत्र भी आया, जिसमें बड़ी हेकड़ी से नवाब को अँगरेज़ों के प्रति निर्दय-व्यवहार की गई मलामत की थी, और उन्हें फिर बसने देने और हर्जाना देने के सम्बन्ध में वैसी-ही हेकड़ी के शब्दों में बातें लिखी थीं।

इनके साथ-ही क्लाइव ने भी एक बड़ा अभिमानपूर्ण पत्र नवाब को लिखा, जिसमें लिखा था—"मेरी दक्षिण की विजयों की ख़बर आपने सुनी ही होगी—मैं अँगरेज़ों के प्रति किये गये आपके व्यवहार का दण्ड देने आया हूँ।"

कलकत्ते के व्यापारी लड़ाई को भी दबाना चाहते थे; क्योंकि नवाब ने उन्हें अधिकार-देना स्वीकार भी कर लिया था। परन्तु क्लाइव और वाट्सन के तो इरादे ही और थे।

वे शीघ्र-ही सज्जित होकर कलकत्ते की ओर बढ़ने लगे। गंगा-किनारे बजबज-नामक एक छोटा क़िला था। अँगरेज़ों ने उस पर धावा कर दिया। मानिकचन्द ढोंग बनाने को कुछ देर झूठ-मूठ लड़ा, पर शीघ्र-ही भागकर मुर्शिदाबाद जा पहुँचा। यही हाल कलकत्ते के क़िलेवालों का भी हुआ। सूने क़िले में क्लाइव ने धूमधाम से प्रवेश किया।

इस बढ़िया विजय पर क्लाइव और वाट्सन में इस बात पर ख़ूब ही झगड़ा हुआ कि क़िले पर कौन अधिकार जमावे? अन्त में क्लाइव ही उसका विजेता माना गया। अब ड्रेक साहब पुनः बड़े गौरव से कलकत्ते आकर बिना किसी लज्जा के गवर्नर बन गये।

क़िले के भीतर की सब वस्तुएँ ज्यों-की-त्यों थी। नवाब ने उसे लूटा न था; न किसी ने चुराया। क़िला फ़तह होगया, मगर लूट तो हुई ही नहीं। क्लाइव को बड़ी आतुरता हुई। अन्त में हुगली लूटने का निश्चय हुआ। वह पुरानी व्यापार की जगह थी। वाणिज्य भी वहाँ ख़ूब था। मेजर किलप्याट्रिक बहुत दिन से बेकार बैठे थे। उन्हें ही यह कीर्ति-सम्पादन का काम सौंपा गया। पैदल, वॉलंटियर, गोलन्दाज़, सभी अँगरेज़ हुगली पर टूट पड़े। नगर को लूट-पाटकर आग लगा दी गई।

हुगली को लूटकर जब अँगरेज़ क़िले में लौट आये, नवाब का पत्र मिला—

"मैं कह चुका हूँ कि कम्पनी के प्रधान कर्मचारी ड्रेक ने मेरी आज्ञा के विपरीत आचरण करके मेरी शासन-शक्ति का उल्लंघन किया,तथा दरबार को निकासी का पावना अदा न कर, मेरी भागी प्रजा को आश्रय दिया। मेरे बार-बार रोकने पर भी उन्होंने इसकी परवा नहीं की। इसी का मैंने उन्हें दण्ड दिया......अतएव राज्य और राज्य के निवासियों के कल्याण के लिये मैं तुम्हें सूचित करता हूँ कि किसी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त करो, तो पूर्व-प्रचलित नियम के अनुसार ही तुमको वाणिज्य के अधिकार प्राप्त होंगे। यदि अँगरेज़ों का व्यवहार व्यापारियों-जैसा रहेगा, तो इस सम्बन्ध में वे निश्चिन्त रहें कि मैं उनकी रक्षा करूँगा, और वे मेरे कृपा-पात्र रहेंगे।"

नवाब के इस पत्र का अँगरेज़ों ने इस प्रकार जवाब भेजा—

"आपने इस झगड़े की जड़ जो ड्रेक साहब का उद्दण्ड व्यवहार लिखा है—सो आपको जानना चाहिये कि शासक और राजकुमार लोग न आँख से देखते है, न कानों से सुनते हैं। प्रायः असत्य ख़बर पाकर-ही काम कर बैठते हैं।......क्या एक आदमी के अपराध में सब अँगरेज़ों को

निकालना उचित था !......वे लोग शाही फ़रमान पर भरोसा रखकर उस रक्त-पात और उन अत्याचारों के बजाय — जो दुर्भाग्य से उन्हें सहने पड़े—सदैव अपने जान-माल को सुरक्षित रखने की आशा रखते थे। क्या यह काम एक शाहज़ादे की प्रतिष्ठा के योग्य था ?............ इसलिये आप यदि बड़े शाहज़ादे की तरह न्यायी और यशस्वी बना चाहते हैं, तो कम्पनी के साथ जो आपने बुरा व्यवहार किया है, उसके लिये उन बुरे सलाहकारों को, जिन्होंने आप को बहकाया था—दण्ड देकर कम्पनी को सन्तुष्ट कीजिये, और उन लोगों को, जिनका माल छीना गया है—राज़ी कीजिये, जिससे हमारी तलवारों की वह धार म्यान में रहे, जो शीघ्र-ही आपकी प्रजा के सिरों पर गिरने के लिये तैयार है। यदि आपको मि० ड्रेक के विरुद्ध कोई शिकायत है, तो आपको उचित है कि आप उसे कम्पनी को लिख भेजिये, क्योंकि नौकर को दण्ड देने का अधिकार स्वामी को होता है। यद्यपि मैं भी आपकी तरह सिपाही हूँ, तथापि यह पसन्द करता हूँ कि यह आप स्वयं अपनी इच्छा से सब काम करदें। यह कुछ अच्छा नहीं होगा कि मैं आपकी निरपराध प्रजा को पीड़ित करके आपको यह काम करने पर बाध्य करूँ..........।"

यह पत्र वाट्सन साहब ने लिखा था। जिस समय नवाब को यह पत्र मिला, उस समय के कुछ पूर्व ही हुगली की लूट का भी वृत्तान्त मिल चुका था। नवाब अँगरेज़ों के मतलब को समझ गया, और अब उसने एक चिट्ठी अँगरेज़ों को लिखी—

"तुमने हुगली को लूट लिया, और प्रजा पर अत्याचार किया। मैं हुगली आता हूँ। मेरी फ़ौज तुम्हारी छावनी की तरफ़ धावा कर रही है। फिर भी यदि कम्पनी के वाणिज्य को प्रचलित नियमों के अनुकूल चलाने की तुम्हारी इच्छा हो, तो एक विश्वास-पात्र आदमी भेजो, जो तुम्हारे सब दावों को समझाकर मेरे साथ सन्धि-स्थापित कर सके। यदि अँगरेज़ व्यापारी-ही बनकर पूर्व नियमों के अनुसार रह सकें—तो मैं अवश्य ही उनकी हानि के मामले पर भी विचार करके उन्हें सन्तुष्ट करूँगा।"

"तुम ईसाई हो, तुम यह अवश्य जानते होगे कि शान्ति-स्थापन के लिये सारे विवादों का फ़ैसला कर डालना—और विद्वेष को मन से दूर रखना कितना उत्तम है, पर यदि तुमने वाणिज्य-स्वार्थ का नाश करके लड़ाई लड़ने-ही का निश्चय कर लिया है, तो फिर उसमें मेरा अपराध नहीं है। सर्वनाशी युद्ध के अनिवार्य कुपरिणाम को रोकने के लिये ही मैं यह चिट्ठी लिखता हूँ।"

हुगली को लूट और नवाब को गर्मागर्म पत्र लिख चुकने पर विलायत से कुछ ऐसी खबरें आईं कि फ्रेंचों से भयङ्कर लड़ाई आरम्भ हो रही है। भारतवर्ष में फ्रेंचों का ज़ोर अँगरेज़ों से कम न था। अँगरेज़-लोग अब अपनी करतूतों पर पछताने लगे। शीघ्र-ही उन्हें यह समाचार मिला—कि नवाब सेना लेकर चढ़ा आ रहा है। अब क्लाइव बहुत घबराया। वह दौड़कर—जगतसेठ और अमीचन्द की शरण गया। परन्तु उन्होंने साफ़ कह दिया कि नवाब अब कभी सन्धि की बात न करेगा—हुगली लूटकर तुमने बुरा किया है। परन्तु जब नवाब का उक्त पत्र पहुँचा, तो मानो अँगरेज़ों ने चाँद पाया—उनको कुछ तसल्ली हुई।

कलकत्ते में वणिकराज अमीचन्द के ही महल में नवाब का दरबार लगा। आँगन का बग़ीचा तरह-तरह के बाग़-बहारी और प्रदीपों से सजाया गया। चारों ओर नंगी तलवार लेकर सेनापति तनकर खड़े हुए। भारी-भारी बहुमूल्य रत्नजटित वस्त्र पहनकर लोग दुज़ानूँ होकर, सिर नवाकर बैठे। बीच में सिंहासन, उसके ऊपर विशाल मसनद, ऊपर सोने के दण्डों पर चन्दोवा—जिस पर मोती और रत्नों का काम हो रहा था, लगाया गया। उसी रत्न-जटित चम्पे के फूल-जैसी खिली मुख-कान्ति से दीप्तमान—बंगाल, बिहार और उड़ीसा का युवक नवाब आसीन हुआ।

वाट्स और स्क्राफ़्टन अँगरेज़ों के प्रतिनिधि बनकर आये। नवाब के ऐश्वर्य को देखकर क्षण-भर वे स्तम्भित रहे। पीछे हिम्मत बाँध, धीरे-धीरे सिंहासन की ओर बढ़े, और सम्मानपूर्वक अभिवादन करके नवाब के सामने खड़े हुए।

नवाब ने मधुर स्वर और सम्यक् भाषा में उनका कुशल-प्रश्न पूछा, और समझाकर कहा—"मैं तुम्हारे वाणिज्य की रक्षा करना चाहता हूँ, और अपने तथा तुम्हारे बीच में सन्धि-स्थापना करना ही मेरे इतना कष्ट उठाने का कारण है।"

अँगरेज़ों ने झुककर कहा—"हम लोग भी सन्धि को उत्कण्ठित हैं, और झगड़े-लड़ाई से हममें बड़ी बाधाएँ पड़ती हैं।" इसके बाद नवाब ने सन्धि की शर्तें तै करने को, उन दोनों के लिये दोपहर के डेरे में आने की आज्ञा दे, दर्बार बर्ख़ास्त कर दिया।

षड्यन्त्रकारियों ने देखा—काम तो बड़ी ख़ूबी से समाप्त होगया है। उन्होंने इस अवसर पर एक गहरी चाल खेली। ये अँगरेज़ दोनों सिविलयन थे। लड़ाई-झगड़े के नाम बेचारों का पेशाब निकलता था। बस, अमीचन्द ने बड़े शुभचिन्तक की तरह उनके कान में कहा—"देखते क्या हो, जान बचाना हो, तो भाग जाओ। वहाँ डेरों में तुम्हारी गिरफ़्तारी की पूरी-पूरी तैयारियाँ हैं। यह सब नवाब का जाल है। नवाब की तोपें पीछे रह गई हैं। इसीलिये यह धोखा दिया जा रहा है। भागो, मशाल गुल करदो।" इतना कह, अमीचन्द झपटकर घर में घुस गया, और दोनों अँगरेज़ हतबुद्धि होकर भागे।

उस दिन रात-भर अँगरेज़ों ने विश्राम न लिया। क्लाइव जलते-अङ्गारे की तरह लाल-लाल होकर सैन्य-सज्जित करने लगा। वाट्सन से ६०० जहाज़ी गोरे माँगकर अपनी पैदल सेना में मिलाये, और रात के तीन बजे नवाब के पड़ाव पर आक्रमण कर दिया। नवाब के पड़ाव में उस समय साठ हज़ार सिपाही, दस हज़ार सवार और चालीस तोपें थीं। सब मज़े में सो रहे थे। क्लाइव ने यह न सोचा, इस विशाल सैन्य के जागने पर क्या अनर्थ होगा? उसने एकदम तोपें दाग़ दीं।

एकाएक 'गुडम्-गुडम्' सुनकर नवाब की छावनी में हल-चल मच गई। जल्दी-जल्दी लोग सजने लगे। सिपाही, मशाल जला, हथियार ले, तोपों के पास आने लगे। फिर तो नवाबकी तोपें भी प्रचण्ड अग्नि-वर्षा करने लगीं।

सवेरा होजाने पर चारों तरफ़ धुआँ था। कुछ न दीखता था—तोपों का गर्जन चल रहा था। जब अच्छी तरह सूरज निकल आया, तब लोगों ने आश्चर्य से देखा—क्लाइव की समर-पिपासा बुझ गई है, और उसकी गर्वोन्मत्त पल्टन क़िले की ओर भाग रही है। नवाबी-सेना उनका पीछा कर रही थी। अँग्रेज़ों के कटे सिपाही जहाँ-तहाँ धूल में पड़े लोट रहे थे। उनकी तोपें भी छिन गई थीं।

क्लाइव की हठधर्मी से अँग्रेज़ों का सर्वनाश होगया। इस तुच्छ सेना में १२० अँगरेज़ों के प्राण गये।

नवाब ने जब इस एकाएक युद्ध का कारण मालूम किया, तो—उसे अपने मंत्रियों का क्रूर-कौशल मालूम हुआ। उसे पता लगा, मीरजाफ़र भी इस नीच काम में लिप्त है, जिसे वह अपना आदरणीय सेनापति समझता था। उसने आक्रमण रोकने की आज्ञा दी, सुरक्षित स्थान में डेरे डलवाये और अँगरेज़ों को फिर सन्धि के लिए शीघ्र बुला भेजा।

क्लाइव बहुत भयभीत होगया था, और सन्धि के लिये घबरा रहा था। परन्तु वाट्सन उसकी बात को न माना। नवाब ने अँग्रेज़ों की इच्छानुसार ही सन्धि करली। अँगरेज़ों ने जो माँगा—नवाब ने उन्हें वही दिया। उन्हें व्यापार के पुराने अधिकार भी मिले, क़िला भी बना रहने देना स्वीकार कर लिया, टकसाल क़ायम करके शाही सिक्के ढलाने की भी आज्ञा मिल गई, और नवाब ने अँगरेज़ों की पिछली शर्त की पूर्ति भी स्वीकार की।

इस उदार सन्धि में अँगरेज़ों को कोई बात शिकायत की न रह गई थी। परन्तु नवाब को यह न मालूम था, कि फ़्रान्स के साथ जो जाति ६०० वर्ष से लड़कर भी रक्त-पिपासा को शान्त न कर सकी, वह किस प्रकार प्रतिज्ञा-पालन करेगी? नवाब ने समझा था, बनिये हैं, चलो, टुकड़े दे दिलाकर ठण्डा करें—ताकि रोज़ का झगड़ा मिटे।

परन्तु सन्धि को एक सप्ताह भी न हुआ था, कि अँगरेज़ फ़्रांसीसियों को सदा के लिये निकाल देने की तैयारी करने लगे। उन्होंने इस पर नवाब का भी मन लिया। सुनकर नवाब को बड़ा क्रोध आया, और उसने

साफ़ जवाब दे दिया कि अँगरेज़ों की तरह फ्रांसीसी भी मेरी प्रजा हैं,—मैं कदापि अपने आश्रितों पर तुम्हारा कोई अत्याचार न होने दूँगा। क्या यही तुम्हारी शान्ति प्रियता है? अँगरेज़ चुप होगये। नवाब ने कलकत्ते से प्रस्थान किया। पर मार्ग में ही उसे समाचार मिला कि अँगरेज़ चन्दननगर लूटने की तैयारियाँ कर रहे हैं। नवाब ने वाट्सन साहब को लिख भेजा ....

"सारे झगड़ों को शान्त करने ही के लिये मैंने तुम्हें सब अधिकार तुम्हारी इच्छा के अनुसार दिये हैं।...... परन्तु मेरे राज्य में तुम फिर क्यों कलह-सृष्टि कर रहे हो? तैमूरलंग के समय से अब तक कभी यूरोपियन यहाँ परस्पर नहीं लड़े। ...... अभी उस दिन सन्धि हुई—और अब तुम फिर युद्ध ठान देना चाहते हो? मराठे लुटेरे थे, पर उन्होंने भी सन्धि नहीं तोड़ी। शपथपूर्वक की हुई सन्धि की शर्तों को तोड़ना घोर पाप है। तुमने सन्धि की है। इसका पालन तुम्हें करना होगा। ख़बरदार, मेरे राज्य में लड़ाई-झगड़ा न मचे। मैंने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की हैं—उनका पालन करूँगा।"

पत्र लिखकर ही नवाब शान्त न हुआ। उसने प्रजा की रक्षा के लिये महाराज नन्दकुमार की आधीनता में हुगली, अग्रद्वीप और पलासी की सेनाएँ नियुक्त करदीं।

मुर्शिदाबाद पहुँचकर नवाब ने सुना कि अँगरेज़ों ने चन्दननगर पर आक्रमण करना निश्चय हो कर लिया है। उसने फिर एक फटकार का ख़त लिखती बार लिखा कि—"बाइबिल की क़सम और खीष्ट की दुहाई ले-लेकर भी सन्धि का पालन नहीं करना—शर्म की बात है।"

अब की बार अँगरेज़ों ने जो जवाब लिखा, उसका सार इस प्रकार था—"आप फ्रांसीसियों के साथ युद्ध से सहमत नहीं हैं—यह मालूम हुआ। फ्रांसीसी यदि हमसे सन्धि करलें, तो हम न लड़ेंगे, पर आपको सूबेदार की हैसियत से उनका ज़ामिन होना पड़ेगा।"

नवाब ने इस कूट-पत्र का सीधा जवाब दिया—उसका अभिप्राय ऐसा है—"फ्रांसीसी यदि तुमसे लड़ेंगे, तो मैं उनको रोकूँगा। मेरा अभिप्राय

प्रजा में शान्ति रखने का है। सन्धि के लिये मैंने फ्रांसीसियों को लिखा है। ......"

यथा-समय फ्रान्सीसियों का प्रतिनिधि सन्धि के लिये कलकत्ते पहुँचा, परन्तु अँगरेज़ों ने सन्धि-पत्र पर दस्तख़त करती बार अनेक विलण्डा खड़े किये। वाट्सन साहब इसमें मुख्य थे। निदान, सन्धि नहीं हुई।

उपरोक्त पत्र में नवाब ने यह भी लिखा था कि दिल्ली की सेना मेरे विरुद्ध आ रही है। यदि तुम मेरी मदद अपनी सेना से करोगे, तो मैं तुम्हें एक लाख रुपया दूँगा।

अब फ्रान्सीसी दूत को खगड़ बताकर वाट्सन साहब ने लिखा—"यदि आप हमें फ्रान्सीसियों को नाश करने की आज्ञा दें, तो हम आपकी सहायता अपनी सेना से कर सकते हैं।"

इस बार सिराजुद्दौला घोर विपत्ति में पड़ गया। बादशाही फ़ौज बड़े ज़ोरों से बढ़ रही थी। उधर अँगरेज़ फ्रांसीसियों के नाश की तैयारियाँ कर रहे थे। नवाब पदाश्रित फ्रान्सीसियों का सर्वनाश करवाकर अँगरेज़ों की सहायता मोल ले—या स्वयं संकट में पड़े।

वाट्सन का ख़याल था कि नवाब के सामने धर्म-अधर्म कोई वस्तु नहीं, अपने मतलब के लिये वह अँगरेज़ों को राज़ी करेहीगा। परन्तु नवाब ने वाट्सन को कुछ जवाब न देकर स्वयं सैन्य-संग्रह करने की तैयारियाँ कीं।

उधर अँगरेज़ों की कुछ नई पलटनें बम्बई और मद्रास से आ-गईं। सब विचारों को ताक़ पर रखकर अँगरेज़ों ने फ्रान्सीसियों से युद्ध की ठान ली, और नवाब को संकटापन्न देख, वाट्सन साहब ने नवाब को लिख भेजा—

"अब साफ़-साफ़ कहने का समय आगया है। शान्ति की रक्षा यदि आपको अभीष्ट है, तो आज के दस दिन के भीतर-भीतर हमारा सब पावना रुपया हर्जाने का चुका दीजिये, वरना अनेक दुर्घटनाएँ उपस्थित होंगी...... हमारी बाक़ी फ़ौज कलकत्ते पहुँचनेवाली है। ज़रूरत पड़ने

पर और भी जहाज़ सेना लेकर आवेंगे, और हम ऐसी युद्ध की आग भड़कावेंगे—जो तुम किसी तरह भी न बुझा सकोगे।......"

नवाब ने इस उद्धत पत्र का भी नर्म जवाब लिखकर भेजा दिया—"सन्धि के नियमानुसार मैं हर्जाना भेजता हूँ। मगर, तुम मेरे राज्य में उत्पात मत मचाना। फ्रान्सीसियों की रक्षा करना मेरा धर्म है। तुम भी ऐसा ही करते, यदि कोई शत्रु भी तुम्हारी शरण आता। हाँ, यदि वे शरारत करें, तो मैं उनका समर्थन न करूँगा।"

अँगरेज़ों ने समझ लिया, नवाब की सहायता या आज्ञा मिलनी सम्भव नहीं है। उन्होंने जल-मार्ग से वाट्सन की कमान में और स्थल-मार्ग से क्लाइव की आधीनता में सेनाएँ चन्दननगर पर रवाना कर दीं।

७ फ़रवरी को सन्धि-पत्र लिखा गया, और ७ ही मार्च को चन्दननगर के सामने अँगरेज़ी डेरे पड़ गये। इस प्रकार बाइबिल और मसीह की क़सम खाकर जो सन्धि अँगरेज़ों ने की थी, उसकी एक ही मास में समाप्ति हो गई!

फ्रान्सीसियों ने क़िले की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया था। पास ही महाराज नन्दकुमार की अध्यक्षता में सेना चाक-चौबन्द उनकी रक्षा के लिये खड़ी थी। क्लाइव, जो बड़े ज़ोरों में आ रहा था—यह सब देखकर भयभीत हुआ। अन्त में अभागे अमीचन्द की मार्फ़त महाराज नन्दकुमार को भरा गया, और तत्काल वे अपनी सेना ले, दूर जा खड़े हुए। फिर मुट्ठी-भर फ्रान्सीसियों ने बड़ी वीरतासे २३तारीख़ तक क़िले की रक्षा की, और सब वीरों के धराशायी होने पर क़िले का पतन हुआ। इस प्रकार इस महायुद्ध में अँगरेज़ विजयी हुए!

इधर नवाब नन्दकुमार को वहाँ भेजकर इधर की तैयारी कर रहा था। अहमदशाह दुर्रानी की चढ़ाई की ख़बर गर्म थी, और अँगरेज़ों से घूँस खाकर मीरजाफ़र, जगतसेठ, रायदुर्लभ-आदि नमकहरामों ने नवाब के मन में दुर्रानी के विषय में तरह-तरह की शंकायें, भय तथा विभीषिकाएँ भर रखी थीं। खेद की बात है, नन्दकुमार ने भी नमकहरामी की। फिर

भी नवाब ने अपना कर्तव्य-पालन किया। जो फ्रान्सीसी भागकर किसी तरह प्राण बचा, मुर्शिदाबाद पहुँच गये, उन्हें, अन्न, वस्त्र, धन की सहायता दे, क़ासिमबाज़ार में स्थान दिया गया।

इस घृणित विजय से गर्वित अँगरेज़ों ने जब सुना, कि नवाब ने भागे हुए फ्रान्सीसियों को सहायता दी है, तो वे बड़े बिगड़े। वे इस बात को भूल गये कि नवाब देश का राजा है। शरणागतों और ख़ासकर प्रजा की रक्षा करना उसका धर्म है। पहले उन्होंने लल्लो चप्पो का पत्र लिखकर नवाब से फ्रान्सीसियों को अँगरेज़ों के समर्पण करने को लिखा। पीछे जब नवाब ने दृढ़ता न छोड़ी, तो गर्जन-तर्जन से युद्ध की धमकी दी।

नवाब ने कुछ जवाब नहीं दिया। अब वह चुपचाप, सावधान हो, कर अँगरेज़ों के इरादों का पता लगाने लगा। इधर अँगरेज़ बाहर से तो फ्रान्सीसियों के नाश के लिये नवाब से कभी लल्लो-पत्तो और कभी घुड़क-फुड़क से काम ले रहे थे, और उधर नवाब को सिंहासन से उतारने की तैयारी कर रहे थे।

विलायत में, हाउस ऑफ़ कॉमन्स में गवाही देते हुए क्लाइव ने साफ़-साफ़ यह कहा था—

"चन्दननगर पर अधिकार होते ही मैंने सब को समझा दिया था कि बस, इतना करके बैठ रहने से काम न चलेगा —कुछ दूर और आगे बढ़कर नवाब को गद्दी से उतारना पड़ेगा। इस मेरे मन्तव्य से सब सहमत भी होगये थे।"

अब अंग्रेज़ों ने गहरी चाल चली। घूस की मदद से नवाब के उमरावों-द्वारा यह बात नवाब से कहलाई कि फ्रांसीसियों के क़ासिमबाज़ार में रहने से शान्ति-भङ्ग होने की आशा है,—आप इन्हें पटने भेज दें—वहाँ यह सुरक्षित रहेंगे। नवाब को इस बात में कुछ चाल न सूझी। उसने फ्रेंच सेनापति लॉस को पटने जाने का हुक्म देदिया। लॉस एक बुद्धिमान अफ़सर था। उसने कुछ दिन दरबार में रहकर सब व्यवस्था भली भाँति जाँच ली थी। उसने नवाब से कहा—

"आपके वज़ीर और फ़ौजी सरदार सब अँगरेज़ों से मिले हैं, और आपको गद्दी से उतारने की कोशिश कर रहे हैं; केवल फ्रान्सीसियों के भय से खुलने का साहस नहीं करते। हमारे हटते-ही युद्धानल प्रज्वलित होगी।" नवाब ने सब बात समझकर भी लाचार कहा—"आप लोग भागलपुर के पास रहें, मैं बग़ावत की सूचना पाते ही आपको ख़बर दूँगा। सेनापति लॉस ने आँखों में आँसू भरकर सिर्फ़ इतना ही कहा—"यही अन्तिम भेंट है—अब हमारा-आपका साक्षात् न होगा।"

इतना करके नवाब के नमकहरामों को दण्ड देने पर कमर कसी। मानिकचन्द पर अपराध प्रमाणित हुआ, और वह क़ैद में रखा गया। पर, पीछे बहुत अनुनय-विनय कर, १० लाख रुपये दे, छूट गया। उसके छूटने से ही भयंकर षड्यन्त्र की जड़ जमी।

इस उदाहरण से जगतसेठ, अमीचन्द, रायदुर्लभ-आदि सभी भयभीत हुए—और जगतसेठ का भवन गुप्त-मन्त्रणा का भवन बना। जैन जगतसेठ, मुसलमान मीरगंज मीरजाफ़र, वैद्य राजवल्लभ, कायस्थ रायदुर्लभ, सूदख़ोर अमीचन्द, और प्रतिहिंसा परायण मानिकचन्द इनमें से न किसी का मत मिलता था, न धर्म; न स्वभाव, न काम! ये केवल स्वार्थान्ध होकर एक हुए। इनके साथ ही कृष्णनगर के राजा महाराजेन्द्र कृष्णचन्द्र भूप बहादुर भी मिले। जब आधे बंगाल की अधीश्वरी रानी भवानी को राजा साहब की इस कालिमा का पता चला, तो उसने इशारे से उपदेश देने को उनके पास चूड़ी और सिन्दूर का उपहार भेजा, किन्तु स्वार्थ के रँग में राजा बहादुर को उस अपमान का कुछ ख़्याल न हुआ।

नवाब का ख़्याल था कि फ्रांसीसियों से अब ये सब और अँगरेज़ चिढ़ रहे हैं, तो उन्हें हटा देने से सब सन्तुष्ट हो जावेंगे, परन्तु जब नवाब ने सुना कि फ्रान्सीसियों को ध्वंस करने को अँगरेज़ी पल्टन आ रही हैं, तो नवाब ने क्रोध में आकर वाट्सन साहब से कहला भेजा—"या तो इसी समय फ्रान्सीसियों को पीछा न करने का मुचलका लिख दो, वरना इसी समय राजधानी त्यागकर चले जाओ।"

यह ख़बर तत्काल साहब को लगी। उसने फ़ौरन् व्यापारी-नौकाएँ सजवाईं। उनमें भीतर गोला-बारूद था, और ऊपर चावल के बोरे। उनके ऊपर भी ४० सुशिक्षित सैनिक थे। इस प्रकार ७ नावों को लेकर क्लाइव कलकत्ते रवाना हुआ। साथ ही क़ासिमबाज़ार के ख़ज़ाने को कलकत्ते भेजने का गुप्त आदेश भी कर दिया गया।

इसके बाद वाट्सन ने नवाब को अन्तिम पत्र लिखा—

"एक भी फ्रांसीसी के ज़िन्दा रहते अँगरेज़ शान्त न होंगे। हम क़ासिम-बाज़ार को फ़ौज भेजते हैं, और शीघ्र ही फ़्रांसीसियों को बाँध लाने को पटने फ़ौज भेजी जायगी। इन सब कामों में आपको अँगरेज़ों की सहायता करनी पड़ेगी।"

यारलतीफ़ख़ाँ, पहले जगतसेठ के यहाँ रोटियों पर नौकर था। समय पाकर वह सिराजुद्दौला की सेना में २००० सवारों को अधिपति होगया। मीरजाफ़र की नमकहरामी का सन्देश सर्व-प्रथम उसी के द्वारा अँगरेज़ों के पास पहुँचा। दूसरे दिन एक अरमानी सौदागर ख़्वाजा विद्रू ने, जो पहले पल्ला-बन्दर पर भी अँगरेज़ों की जासूसी करता था—ख़बर दी कि मीर-जाफ़र इस शर्त पर आपकी मदद को तैयार है कि आप उसे नवाब बनाइये, और पीछे वह आपकी इच्छानुसार कार्य करने को तैयार है। जगतसेठ-आदि सब सरदार आपके पक्ष में होंगे। यह भी सलाह हुई कि इस समय क्लाइव को लौट जाना चाहिये। नवाब शीघ्र ही पटना की तरफ़ दुर्रानी की फ़ौज से लड़ने को कूच करेगा। तब पीछे राजधानी पर हमला करना उत्तम होगा।

क्लाइव तत्काल लौट गया, और नवाब को अँगरेज़ों ने लिखा—"हम तो सेना लौटा लाये। अब आपने पलासी में क्यों छावनी डाल रक्खी है?" जो दूत इस पत्र को लेकर गया, वह वाट्सन साहब के लिये यह चिट्ठी भी लेगया—"मीरजाफ़र से कहना, घबराओ नहीं, मैं ऐसे ५ हज़ार सिपाहियों को लेकर उसके पक्ष में आ मिलूँगा, जिन्होंने युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाई।"

परन्तु अहमदशाह दुर्रानी भारत से लौट गया, इसलिये नवाब को पटने जाना ही नहीं पड़ा। इसके सिवा उसने अँगरेज़ों की जाली नौकाएँ रोकलीं, और पलासी में ज्यों-की-त्यो छावनी डाले रहा। अँगरेज़ों के पीछे गुप्तचर छोड़ दिये गये। फ्रान्सीसियों को भागलपुर ठहरने को कहला भेजा, और मीरजाफ़र को १५ हज़ार सेना लेकर पलासी में रहने का हुक्म दिया।

इधर मीरजाफ़र से एक गुप्तसन्धि-पत्र लिखाकर १७ मई को कलकत्ते में उस पर विचार हुआ। इस सन्धि-पत्र में एक करोड़ रुपया कम्पनी को, दस लाख कलकत्ते के अँग्रेज़ों, अरमानी और बंगालियों को, तीस लाख अमीचन्द को देने का मीरजाफ़र ने वादा किया था। इसके सिवा बग़ावत के प्रधान सहायकों और पथ-प्रदर्शकों की रक़में अलग एक चिट्ठे में दर्ज की गई थीं। राज-कोष में इतना रुपया नहीं था। परन्तु रुपया है या नहीं?— इस पर कौन विचार करता? चारों ओर ग़दर ही तो था!

मसौदा भेजते समय वाट्सन साहब ने लिखा—"अमीचन्द जो माँगता है, उसे वही मंजूर करना। वरना, सब भण्डाफोड़ हो जायगा।" पहले तो अमीचन्द को मार डालने की ही बात सोची गयी, पीछे क्लाइव ने युक्ति निकाली। उसने दो दस्तावेज़ लिखाये—एक असली, दूसरा जाली लाल कागज़ पर! इसी जाली पर अमीचन्द की रक़म चढ़ाई गई थी। असली पर उसका कुछ ज़िक्र न था। वाट्सन ने इस जाली दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। पर, चतुर क्लाइव ने उसके भी जाली दस्तख़त बना दिये।

इसी दस्तावेज़ की जालसाज़ी के सम्बन्ध में हाउस ऑफ़ कॉमन्स में गवाही देते समय क्लाइव ने कहा था—

"मैंने कभी इस बात को छिपाने की चेष्टा नहीं की। मेरे मत से ऐसे अवसरों पर जाल-झूठ से काम निकाला जा सकता है। मैं ज़रूरत पड़ने पर और सौ-बार ऐसा काम करने के लिये तैयार हूँ।"

इन महापुरुष की तारीफ़ में मैकॉले ने लिखा है—

"क़ाइव के घरवालों को उसके स्वभाव से कुछ आशा न थी। अतएव यह कोई आश्चर्य की बात न थी कि उन्होंने उसे दस वर्ष की आयु में कम्पनी की मुहर्रिरी से कुछ रुपया पैदा करने या मदरास में बुखार से मर जाने के लिये भारतवर्ष में भेज दिया।"

मिल ने लिखा है—"धोखे से काम निकालने में क़ाइव को ज़रा भी सङ्कोच न होता था, और न वह इसमें ज़रा-से भी कष्ट का अनुभव करता।"

यही दुर्दान्त अँगरेज़ युवक था, जिसने अँगरेज़ी साम्राज्य की नींव भारत में जमाई, और अन्त में आत्मघात करके मरा। तथा इँगलैण्ड में जिसकी मूर्ति वीर जेनरल वेलिंगटन के बराबर न लग सकी!

अमीचन्द को धोखा देकर ही ये लोग शान्त न रहे। बल्कि वे उसे कलकत्ते में लाकर अपनी मुट्ठी में लाने की जुगत करने लगे। यह काम स्क्राफ्टन के सुपुर्द हुआ। उसने अमीचन्द से कहा—

"बातचीत तो समाप्त होगई। अब दो-ही-चार दिन में लड़ाई छिड़ जायगी। हम तो घोड़े पर चढ़कर उड़न्तु होंगे, तुम बूढ़े हो—क्या करोगे? क्या घोड़े पर भाग सकोगे?" दवा कारगर हुई। मूर्ख बनिया घबराकर—नवाब से आज्ञा ले, मुर्शिदाबाद भागा।

अब मीरजाफ़र से सन्धि पर हस्ताक्षर होने बाकी थे। पर गुप्तचर चारों ओर छुटे थे, वाट्सन साहेब बहादुर पर्देदार पालकी में घूँघटवाली स्त्रियों का वेश धर—प्रतिष्ठित मुसलमान घराने की स्त्रियों की तरह सीधे मीरजाफ़र के ज़नानखाने में पहुँचे, और मीरजाफर ने कुरान सिर पर रख, तथा पुत्र मीरन पर हाथ धर, सन्धि-पत्र पर दस्तख़त कर दिये। इस पर भी अँगरेज़ों को विश्वास न हुआ, तो उन्होने जगतसेठ और अमीचन्द को ज़ामिन बनाया।

पाठक, एक बात ध्यान में रखिये कि अन्तिम समय मीरजाफ़र के हाथ कोढ़ से गल गये थे, और उसके पुत्र मीरन पर अकस्मात् बिजली गिरी थी।

इधर सिराज को इस सन्धि का पता चला। वाट्सन साहब सावधान हो, घोड़े पर चढ़ हवाख़ोरी के बहाने भाग गये। नवाब ने अँगरेज़ों को अन्तिम पत्र लिख कर अन्त में लिखा—'ईश्वर को धन्यवाद है—मेरे द्वारा सन्धि-भंग नहीं हुई।.........'

१२ जून को अँगरेज़ों की फ़ौज चली। जिसमें ६५० गोरे, १५० पैदल गोलन्दाज़, २१ नाविक, २१०० देशी सिपाही थे। थोड़े पुर्तगीज़ भी थे। सब मिलाकर कुल ३००० आदमी थे। गोला-बारूद-आदि लेकर २०० नावों पर गोरे चले। काले सिपाही पैदल ही गंगा के किनारे-किनारे चले। रास्ते में हुगली, काटोवा, अग्रद्वीप, पलासी की छावनियों में नवाब की काफ़ी फ़ौज पड़ी थी। पर हाय! बनिये-अँगरेज़ों ने सब को ख़रीद लिया था। किसी ने रोक-टोक न की। उधर नवाब ने सब हाल जानकर भी मीरजाफ़र को उसके अपराधों को क्षमा करके महल में बुला भेजा। लोगों ने उसे गिरफ़्तार करने की भी सलाह दी थी। परन्तु नवाब ने समझा—अलीवर्दी के नाम और इस्लाम-धर्म को ख़्याल कराकर समझाने-बुझाने से वह सीधे मार्ग पर आजायगा। पर मीरजाफ़र डरकर राजमहल में नहीं गया। अन्त में आत्माभिमान को छोड़कर नवाब स्वयं पालकी में बैठकर मीरजाफ़र के घर पहुँचा। मीरजाफ़र को अब बाहर निकलना पड़ा। उसकी आँखों में शर्म आई। उसने अपने प्यारे मित्र सरदार के मुख से करुणाजनक धिक्कार सुनी। मीरजाफ़र ने नवाब के पैर छूकर सब स्वीकार किया। क़ुरान उठायी और उसे सिर से लगाकर ईश्वर और पैग़म्बर की क़सम खाकर, उसने अँगरेज़ों से सम्बन्ध छोड़कर—नवाब की सेवा धर्म-पूर्वक करने की प्रतिज्ञा की।

घर की इस फूट को प्रेमपूर्वक मिटाकर नवाब को सन्तोष हुआ। अब उसने सेना का आह्वान किया। पर बाग़ियों के बहकाने से सेना ने पहले बिना वेतन पाये, युद्ध-यात्रा से इनकार कर दिया। नवाब ने वह भी चुकाया। मीरजाफ़र प्रधान सेनापति बना। यारलतीफ़ख़ाँ—दुर्लभराव—मीर मदनमोहनलाल—और फ्रेन्च सिनफ़े एक-एक विभाग के सेनाध्यक्ष बने।

अँगरेज़ इतिहासकारों ने मीरजाफ़र को क्लाइव का गधा लिखा है—इस क्लाइव के गधे ने क्लाइव को, नवाब के साथ जो क़सम-धर्म हुआ था—सब लिख भेजा। साथ-ही यह भी लिख दिया—"बढ़े चले आओ; मैं अपने वचनों का वैसा-ही पक्का हूँ।"

पर क्लाइव को आगे बढ़ने का साहस न हुआ। वह पाटुली में छावनी डालकर पड़ गया। सामने कोठाया का क़िला था। यह निश्चय हो चुका था—कि सेनाध्यक्ष कुछ देर बनावटी युद्ध करके पराजय स्वीकार कर लेगा। क्लाइव ने पहले इसी की सचाई जाननी चाही। मेजर कूट २०० गोरे और ३०० काले सिपाही लेकर क़िले पर चढ़े। मराठों के समय में गहरी-गहरी लड़ाइयों के कारण भागीरथी और अजम के संगम का यह क़िला वीरों की लीला-भूमि प्रसिद्ध हो चुका था। परन्तु इस बार फाटक पर युद्ध नहीं हुआ। कुछ देर नवाबी सेना नाटक-सा खेलकर जगह-जगह अपने ही हाथों से आग लगाकर भाग गई। क्लाइव ने विजय-गर्वित की तरह क़िले पर अधिकार किया। नगर-निवासी प्राण लेकर भागे—अँगरेज़ों ने उनका सर्वस्व लूट लिया। केवल चावल ही इतना मिल गया था—जो १० हज़ार सिपाहियों को १ वर्ष तक के लिये काफ़ी था। फिर भी क्लाइव विश्वास और अविश्वास के बीच में झकझोरे ले रहा था। हाउस ऑफ़ कॉमन्स में इस समय की बात का ज़िक्र करती बार उसने कहा था—

"मैं बड़ा ही भयभीत था। यदि कहीं हार जाता तो हार का समाचार ले जाने के लिये भी एक आदमी को ज़िन्दा वापस जाने का मौक़ा नहीं मिलता।" निदान, उसने नवाब के विरोधी वर्तमान महाराज को लिख भेजा—"आपके सवार चाहे १ हज़ार से अधिक न हों, तो भी आप फ़ौरन् आ-मिलिये।" २२ जून को गंगा-पार करके मीरजाफ़र के बताए संकेतों पर वह आगे बढ़ा, और रात्रि के दो बजे पलासी के लक्खीबाग़ में मोर्चे जमाये।

नवाब का पड़ाव उसके नज़दीक ही तेजनगरवाले विस्तृत मैदान में था। परन्तु उसकी सेना का प्रत्येक सिपाही, मानों उसका सिपाही न था। वह रात-भर अपने ख़ीमे में चिन्तित बैठा रहा।

रात बीती। प्रसिद्ध प्रभात आया। अँगरेज़ों ने बाग़ के उत्तर की ओर एक खुली जगह में व्यूह-रचना की। नवाब की सेना मीरजाफ़र, दुर्लभ-राय, यारलतीफ़ख़ाँ--इन तीन नमकहरामों की अध्यक्षता में अर्द्ध-चन्द्राकार व्यूह-रचना करके बाग़ को घेरने के लिये बढ़ी।

अँगरेज़ क्षण-भर को घबराये। क्लाइव ने सोचा कि यदि यह चन्द्र-व्यूह तोपों में आग लगादे, तो सर्वनाश है! पर जब उसने उस सेना के नायकों को देखा, तो धैर्य्य हुआ। क्लाइव की गोरी पल्टन चार दलों में विभक्त हुई, जिसके नायक किलपात्रिक, ग्राण्टकट और कप्तान गाप थे। बीच में गोरे, दाएँ-बाएँ काले सिपाही थे। नवाब की सेना के एक पार्श्व में फ्रेन्च-सेनापति सिनफ्रे, एक में मोहनलाल और उनके बीच में मीरमदन। फ़ौजकशी का भार मीरमदन ने लिया। अँगरेज़ों ने देखा--नवाब का व्यूह दुर्भेद्य है।

८ बजे मीरमदन ने तोपों में आग लगाई। शीघ्र ही तोपों का दोनों ओर से घटाटोप होगया। आधे घण्टे में १० गोरे और २० काले-आदमी मर गये। क्लाइव की युद्ध-पिपासा इतने ही में मिट गई। उसने समझ लिया, इस प्रकार प्रत्येक मिनट में एक आदमी के मरने और अनेकों के ज़ख़्मी होने से यह ३०० सिपाही कितनी देर ठहरेंगे? क्लाइव को पीछे हटना पड़ा। उसकी फ़ौज ने बाग़ के पेड़ों का आश्रम लिया। वे छिपकर गोले दाग़ने लगे। पर उनकी दो तोपें बाहर रह गईं। चार तोपें बाग़ में थीं। नवाब की तोपों का मोर्चा चार हाथ ऊँचा था। अतएव मीरमदन की तोपों से तड़ातड़ गोले दग रहे थे।

यह देखकर क्लाइव घबरा गया। उस समय वह अमीचन्द पर बिगड़ा। उसका मज़ेदार हाल 'मुताख़रीन' में इस तरह लिखा है—

"क्लाइव ने अमीचन्द से बदगुमान होकर ग़ुस्सा फ़र्माया और कहा—'ऐसा ही वायदा था कि ख़फ़ीफ़ लड़ाई में मुद्आए-दिल हासिल हो जायगा;—और शाही फ़ौज भी नवाब की मुख़ालिफ़ है। ये सब तेरी बातें ख़िलाफ़ पाई जाती हैं।'

"अमीचन्द ने कहा—'सिर्फ़ मीरमदन और मोहनलाल ही लड़ रहे हैं। यह नवाब के सच्चे सहायक हैं। किसी तरह इन्हीं को हराइये। दूसरा कोई सेनापति हथियार न चलायेगा।' "

मीरमदन वीरतापूर्वक गोले चला रहा था। उस समय मीरजाफ़र की सेना यदि आगे बढ़कर तोपों में आग लगा देती, तो अँगरेज़ों की समाप्ति थी। मगर वे तीनों पाजी खड़े तमाशा देखते रहे। क्लाइव ने १२ बजे पसीने से लथ-पथ सामरिक मीटिंग की। उसमें निश्चय किया कि दिन-भर बाग़ में छिपे रहकर किसी तरह रक्षा करनी चाहिये।

इतने ही में एकाएक मेंह बरसने लगा। मीरमदन की बहुत-सी बारूद भीग गई। फिर भी वह वीरतापूर्वक भागी हुई सेना का पीछा कर रहा था। इतने ही में एक गोले ने उसकी जाँघ तोड़ डाली। मोहनलाल युद्ध करने लगा। मीरमदन को लोग हाथों-हाथ उठाकर नवाब के पास ले गये। उसने ज़्यादा कहने का अवसर न पाया। सिर्फ़ इतना कहा—"शत्रु बाग़ में भाग गये। फिर भी आपका कोई सरदार नहीं लड़ता। सब खड़े तमाशा देखते हैं।"—इतना कहते-कहते ही उसने दम तोड़ दिया।

नवाब को इस वीर पर बहुत भरोसा था। इसकी मृत्यु से नवाब मर्माहित हुआ। उसने मीरजाफ़र को बुलाया। वह दल बाँधकर सावधानी से नवाब के डेरे में घुसा। उसके सामने आते ही नवाब ने अपना मुकुट उसके सामने रखकर कहा—"मीरजाफ़र! जो होगया, सो होगया। अली-वर्दी के इस मुकुट को तुम सच्चे मुसलमान की तरह बचाओ।" इसने यथोचित रीति से सम्मानपूर्वक मुकुट को अभिवादन करते हुए, छाती पर हाथ रखकर बड़े विश्वास के साथ कहा—"अवश्य ही शत्रु पर विजय प्राप्त करूँगा। पर अब शाम होगई है, और फौजें थक गई हैं—सबेरे मैं क़यामत वर्षा कर दूँगा।"—नवाब ने कहा—"अँगरेज़ी फ़ौज रात को आक्रमण करके क्या सर्वनाश न कर देगी?" उसने गर्व से कहा—"फिर हम किस लिये हैं?"

नवाब का भाग्य फूट गया। उसे मति-भ्रम हुआ। उसने फ़ौजों को

पड़ाव से लौटने की आज्ञा दे दी। तब, महाराज मोहनलाल वीरतापूर्वक धावा कर रहे थे। उन्होंने सम्मानपूर्वक कहला भेजा—"बस, अब दो-ही-चार घड़ी में लड़ाई का ख़ातमा होता है। यह समय लौटने का नहीं है। एक क़दम पीछे हटते ही सेना का छत्र-भंग हो जायगा। मैं लौटूँगा नहीं—लड़ूँगा।"

मोहनलाल का यह जवाब सुन, क्लाइव का गधा थर्रा गया। उसने नवाब को पट्टी पढ़ाकर फिर आज्ञा भिजवाई। बेचारा मोहनलाल, साधारण सरदार था—क्या करता? क्रोध से लाल होकर क़तारें बाँध, वह पड़ाव को लौट आया। गधे की इच्छा पूरी हुई। उसने क्लाइव को लिखा—"मीरमदन मर गया। अब छिपने का कोई काम नहीं। इच्छा हो, तो इसी समय, वरना रात को तीन बजे आक्रमण करो—सारा काम बन जायगा।"

बस, मोहनलाल को पीछे फिरता देख, और गधे का इशारा पा, क्लाइव ने स्वयं फ़ौज की कमान ली, और बाग़ से बाहर निकल, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। यह रंग-ढंग देख,बहुत-से नवाबी सिपाही भागने लगे—पर मोहनलाल और सिनफ़्रे फिर घूमकर खड़े होगये।

इधर बेईमान दुर्लभराय ने नवाब को ख़बर दी, कि आपकी फ़ौज भाग रही है। आप भागकर प्राण बचाइये। नवाब का प्रारब्ध फूट चुका था। सभी हरामी, शत्रु और दग़ाबाज़ थे। उसने देखा—मेरे पक्ष के आदमी बहुत ही कम हैं। राजवल्लभ ने उसे राजधानी की रक्षा करने की सलाह दी। अतः नवाब ने २००० सवारों के साथ हाथी पर सवार हो, रण-क्षेत्र त्यागा। तीसरे पहर तक वीर मोहनलाल और फ्रेञ्च सिनफ़्रे लड़े। परन्तु विश्वासघातियों से खीझकर अन्त में उन्होंने भी रण-भूमि छोड़ी। नवाब के सूने ख़ेमों पर महावीर विजयी क्लाइव और उसके गधे ने अधिकार कर लिया।

जिस सेना ने इस महायुद्ध में ऐसी वीर-विजय पाई थी—उसके झण्डे पर सम्मानार्थ 'पलासी' लिख दिया गया है, और उस बाग़ के आम की लकड़ी का एक सन्दूक़ बनवाकर किसी साहब बहादुर ने महारानी विक्टो-

रिया को भेंट किया था। आज भी उस स्थान पर एक जय-स्तम्भ खड़ा, अँगरेज़ों की वीरता की कहानी कह रहा है!

राजधानी में नवाब के पहुँचने से पहले ही नवाब के हारने की ख़बर सर्वत्र फैल गई। चारों ओर भाग-दौड़ मच गई। अँगरेज़ों की लूट के डर से लोग इधर-उधर भागने लगे। नवाब ने सरदारों को बुलाकर दर्बार करना चाहा। मगर औरतें तथा स्वयं उसके स्वसुर मुहम्मद रहीमखाँ ही उधर ध्यान न दे, भाग खड़े हुए। देखा-देखी सभी भाग गये।

अब सिराज ने स्वयं सैन्य-संग्रह के लिये गुप्त ख़ज़ाना खोला। सुबह से शाम तक और शाम से रात-भर सिपाहियों को प्रसन्न करने को खूब इनाम बाँटा गया। शरीर-रक्षक सिपाहियों ने खुला ख़ज़ाना पाकर खूब गहरा हाथ मारा, और यह धर्म-प्रतिज्ञा करके कि प्राण-पण से सिंहासन की रक्षा करेंगे—एक-एक ने भागना शुरू किया। धीरे-धीरे ख़ास महल के सिपाही भी भागने लगे। एकाएक रात्रि के सन्नाटे में मीरजाफ़र की विकराल तोपों का गर्जन सुन पड़ा। अभागा सज्जन और ऐयाश नवाब अन्त में गौरवान्वित सिंहासन को छोड़कर अकेला चला। पीछे-पीछे पुराना द्वारपाल और प्यारी बेगम लुत्फ़ुन्निसा छाया की तरह हो लिये।

प्रातः मीरजाफ़र ने शीघ्र-ही सूने राजमन्दिर में अधिकार जमाकर नवाब की खोज में सिपाही दौड़ाये। नवाब की सब हितू-बन्धु-स्त्रियाँ क़ैद करली गईं। वीरवर मोहनलाल भी ज़ख़्मी ही कैद किया गया, और नीच दुर्लभराय ने उसे मार डाला। फिर भी गधे को सिंहासन पर बैठने का साहस न हुआ। वह क्लाइव का इन्तज़ार करने लगा। पर, क्लाइव का कई दिनों तक नगर में आने का साहस न हुआ। २९ जून को २०० गोरे और ५०० काले सिपाहियों के साथ क्लाइव ने राजधानी में प्रवेश किया। क्लाइव लिखता है:—

"शाही सड़क पर उस दिन इतने आदमी जमा थे कि यदि वे अँगरेज़ों के विरोध का संकल्प करते—तो, केवल लाठी, सोटों, पत्थरों ही से सब काम होजाता।"

अन्त में राजमहल में आकर क्लाइव ने मीरजाफ़र को नवाब बनाकर सब से पहले कम्पनी के प्रतिनिधि-स्वरूप नज़र पेश करके बंगाल, बिहार और उड़ीसे का नवाब कहकर अभिवादन किया।

इसके बाद बाँट-चूँट, जो होना था—कर लिया गया। शाहपुर के पास सिराजुद्दौला को मार्ग में मीरक़ासिम ने पकड़ लिया। उसकी असहाय बेगम लुत्फ़ुन्निसा के गहने लूट लिये, और बाँधकर राजधानी को लाया गया। मुर्शिदाबाद में हलचल मच गई। बग़ावत के डर से नये नवाब ने अपने पुत्र मीरन के हाथ से उसी रात को सिराज को मरवा डाला। उस समय का भीषण वर्णन् एक इतिहासकार ने इस प्रकार किया है—

"यह काम मुहम्मद के सुपुर्द हुआ। यह नमकहराम भी जाफ़र और मीरन की तरह सिराज के टुकड़ों से पला था। मुहम्मदख़ाँ हाथ में एक बहुत तेज़ तलवार ले, सिराज की कोठरी में जा दाख़िल हुआ। उसे इस तरह सामने देख, सिराज ने घबड़ाकर कहा--"क्या तुम मुझे मारने आये हो?"

उत्तर मिला--"हाँ!"

अन्तिम समय निकट आया समझ, सिराज ने ईश्वर-प्रार्थना के लिये, हाथ-पैरों की ज़ंजीर खोलने की प्रार्थना की। पर वह नामंजूर हुई। डर के मारे उसका गला चिपक गया था। उसने पानी माँगा, पर पानी भी न दिया गया। लाचार हो, ज़मीन पर माथा रगड़कर सिराज बार-बार ईश्वर का नाम लेकर अपने अपराधों की क्षमा माँगने लगा। इसके बाद लपटती ज़बान और टूटे स्वर से उसने नमकहराम, टुकड़ख़ोर लालख़ाँ से कहा—"तब, वे लोग मुझे तिल-भर जगह भी न देंगे। टुकड़ा खाने को भी न देंगे। इस पर भी वे राज़ी नहीं हैं?" यह कहकर सिराज कुछ देर के लिये चुप होगया।

फिर, कुछ देर में बोला—"नहीं, इस पर भी वे राज़ी नहीं हैं। मुझे मरना ही पड़ेगा।"

आगे बोलने का उसे अवसर न मिला। देखते-ही-देखते नरपिशाच

की तेज़ तलवार उसकी गर्दन पर पड़ी। ख़ून का फ़व्वारा बह निकला, और देखते-ही-देखते, बंगाल, बिहार, और उड़ीसे का युवक नवाब ठण्डा होगया। हत्यारे जल्लादों ने उसके जिस्म के टुकड़े-टुकड़े करके, उन्हें एक हाथी पर लदवाकर शहर में घुमाने का हुक्म दिया।

क्लाइव से अगले दिन मीरजाफ़र ने इसका ज़िक्र करके क्षमा माँगी—तो, क्लाइव ने मुस्कराकर कहा—' इसके लिये, यदि माफ़ी न भी माँगी जाती, तो कुछ हर्ज न था।"

---

(१७)

मीरजाफ़र और मीरक़ासिम

मीरजाफ़र नवाब हुए—और धूर्त स्क्रेफ़न उनके एजेण्ट बनकर दरबार में विराजे। पश्चात वारेन हेस्टिंग्स उसका सहायक बनाया गया। थोड़े दिन बाद स्क्रेफ़न कौंसिल में सभ्य नियत हुए—तब, उक्त गौरव का पद वारेन हेस्टिंग्स को मिला। यह बड़ी ज़िम्मेदारी का था। एजेण्ट को दो बातों की कठिन ज़िम्मेवारियाँ थीं—एक तो यह कि कम्पनी की आय और उसके स्वार्थ में विघ्न न पड़े। दूसरे, नवाब कहीं सिर उठाकर सबल न हो जाय। नवाब यदि वेश्याओं और शराब में अधिकाधिक गहराई में लिप्त हो, तो एजेण्ट को कुछ चिन्ता न थी। उनकी चिन्ता का विषय सिर्फ़ यह था कि कहीं नवाब सैन्य को तो पुष्ट नहीं कर रहा है? राज्य-रक्षा की तरफ़ तो उसका ध्यान नहीं है?

इन सब के सिवा जाफ़र ने नक़द रुपया न होने पर सन्धि के अनुसार अँगरेज़ों को कुछ जागीरें दी थीं। उनकी मालगुज़ारी वसूली का भी

उसी पर भार था) साथ ही, फ्रांसीसियों की छूत से नवाब को सर्वदा बचाना भी आवश्यक था । हेस्टिंग्स ने बड़ी मुठमर्दी से उक्त पद के योग्य अपनी योग्यता प्रमाणित की ।

पर मीरजाफ़र देर तक नवाब न रह सका । लोगों से वह घमण्ड-पूर्ण व्यवहार और झगड़े करने लगा । मुसलमान-हिन्दू, सब उससे घृणा करते थे । उधर अँगरेज़ों ने रुपये के लिये दस्तक भेज-भेजकर उसका नाकों-दम कर दिया । मीरजाफ़र को प्रतिक्षण अपनी हत्या का भय बना रहता था । निदान, तीन ही वर्ष के भीतर मीरजाफ़र का जी नवाबी से ऊब गया, और अन्त में अँगरेजों ने उसे अयोग्य कहकर गद्दी से उतार, कलकत्ते में नज़रबन्द कर दिया । उसका दामाद मीरक़ासिम बंगाल का नवाब बना । जाफ़र की पेन्शन नियत की गई ।

एक प्रश्न उठता है कि मीरक़ासिम क्यों गद्दी पर बैठाया गया ? अधिकार तो मीरन का था—जो जाफ़र का पुत्र था । पर वहाँ अधिकार की बात हो न थी । वहाँ तो गद्दी नीलाम की गई थी । अँगरेज़ बनियों की पैसे की प्यास भयंकर थी । क़ासिम ने उसे बुझाया । क़ासिम को जिस भाव नवाबी मिली थी, उसका दिग्दर्शन हंटर साहब ने अपने इतिहास में लिखा है—

"......अँगरेज़ों की अमित धन की माँगों को पूरा पाड़ने के लिये नवाबी ख़ज़ाने में रुपया नहीं था । इसलिये उन्हें अपनी पहले की शर्तों की रक़म में से आधा ही लेकर सन्तोष करना पड़ा । इस रक़म की भी एक-तिहाई रक़म नवाब के सोने-चाँदी के बर्तन बेचकर संग्रह की गई, और इस भुगतान के बाद नवाबी ख़ज़ाने में फूटी कौड़ी भी न बची थी ।

क़ासिम के नवाब होने पर हेस्टिंग्स कौंसिल का मेम्बर होकर कलकत्ते आगया, और उसकी जगह पर एलिस साहब एजेण्ट बने । इनके विषय में कप्तान ट्रॉयर लिखते हैं—"एलिस साहब कलह-प्रिय एवं बहुत ही बुरे आदमी थे, और वे जिस पद पर नियुक्त किये गये थे, उसके योग्य न थे ।"

नवाब और एजेण्ट की न बनी । बात-बात पर दोनों में झंझट

चलने लगा। आखिर तंग आकर नवाब ने कलकत्ते की कौंसिल को लिखा—

अँगरेज़ गुमाश्ते हमारे अधिकार की अवमानना करके प्रत्येक नगर और देहात में पट्टेदारी, फ़ौजदारी, माल और दीवानी अदालतों की ज़रा भी परवा नहीं करते; बल्कि सरकारी अहलकारों के काम में बाधा डालते हैं! ये लोग प्राइवेट व्यापार पर भी महसूल नहीं देते, और जिनके पास कम्पनी का पास है, वे तो अपने को कर्ता-धर्ता ही समझते हैं। सरकारी और अँगरेज़-कर्मचारियों की परस्पर की अनबन का कड़ुआ फल प्रजा को चखना पड़ रहा है, और उस पर असह्य निष्ठुर अत्याचार हो रहे हैं।

मैकॉले साहब उस समय के अँगरेज़ों का चित्र खींचते हुए लिखते हैं—

"उस समय के कम्पनी से कर्मचारियों का केवल यही काम था, कि किसी देसी से सौ-दो-सौ पाउण्ड वसूल करके जितना शीघ्र हो सके, यहाँ की गर्मी से पीड़ित होने के पूर्व ही विलायत लौट जाँय, और वहाँ किसी कुलीन धनी की कन्या के साथ विवाह कर,कॉर्नवालमें छोटे मोटे एक दो गाँव ख़रीदकर और सेण्ट-जेम्स-स्क्वेयर में आनन्द-पूर्वक मुजरा देखा करें।"

हेस्टिंग्स साहब जब एक बार पटने गये, तो क्या देखते हैं—नगर रो रहा है। एक ओर पाश्चात्य सभ्यता का दया-हीन झण्डा फहरा रहा है, दूसरी ओर सैकड़ों वर्ष से विदेशियों के अत्याचारों को सहते-सहते प्रजा उस भेड़ के समान हो गई है, जिसका ऊन मूड़ने के बहाने लोग उसका चमड़ा तक उधेड़ रहे हैं। नगर शून्य था। दूकानें बन्द थीं। प्रत्येक को लूट का भय था। लोग इधर-उधर भाग रहे थे।

मीरक़ासिम अपने श्वसुर की तरह नीच, स्वार्थी तथा द्रोही न था। वह सब रंग-ढंग देख चुका था। उसने नवाबी मोल ली थी, फिर भी वह नवाब ही बनना चाहता था, और अँगरेज़ों से भी प्रजा की तरह व्यवहार करना पसन्द करता था। साथ ही अँगरेज़ों के अत्याचार से प्रजा की रक्षा करने की सदा चेष्टा करता था।

अब उसने देखा कि अँगरेज़ बिना महसूल अन्धाधुन्ध व्यापार करके देश को चौपट कर रहे हैं, किसी तरह नहीं मानते, तो उसने अपनी लाखों की हानि की परवा न करके महसूल का महकमा ही उठा दिया; प्रत्येक को बिना महसूल व्यापार करने का अधिकार दे दिया। अँगरेज़ों ने नवाब के इस न्याय और उदार कार्य का तीव्र विरोध किया। पर क़ासिम ने उसकी कुछ परवा न की।

अब अँगरेज़ क़ासिम को भी गद्दी से उतारने का प्रबन्ध करने लगे, पर मीरजाफ़र की तरह क़ासिम अँगरेज़ों का गधा न था। उसने सन्धि की शर्तों का पालन होते न देखकर अपनी तैयारी शुरू कर दी। पहिले तो वह अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से उठाकर मुँगेर ले गया, और सेना को सज्जित करने लगा;—साथ-ही अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सहायता के लिये पत्र-व्यवहार करने लगा।

इतने ही में अँगरेज़ों ने चुपचाप पटनें पर धावा कर दिया। पहले तो नवाबी सेना एकाएक हमले से घबराकर भाग गई, पीछे उसने आक्रमण कर, नगर को वापिस ले लिया। बहुत-से अँगरेज़ क़ैद होगये। बदमाश एलिस भी क़ैद हुआ। नवाब ने जब पटने पर एकाएक आक्रमण होने के समाचार सुने, तो उसनें अँगरेज़ों की सब कोठियों पर अधिकार करके, वहाँ के अँग-रेजों को क़ैद करके मुँगेर भेजने का हुक्म दे दिया।

अँगरेज़ों ने चिढ़कर कलकत्ते में आप-ही-आप मीरजाफ़र को फिर नवाब बना दिया। इसके पीछे मुर्शिदाबाद सेना भेज दी गई। मुर्शिदाबाद को यद्यपि मीरक़ासिम ने काफ़ी सुरक्षित कर रखा था, फिर भी विश्वास-घाती, नीच और स्वार्थी सेनापतियों के कारण नवाबी सेना की हार हुई। नवाब के दो-चार वीर सेनापति अन्त तक लड़कर धराशायी हुए। अन्त में उदयनाला का मुख्य युद्ध हुआ। पलासी में गधा मीरजाफ़र था। यहाँ विश्वासघाती गुरगन सेनापति था। नवाब की ४० हज़ार सेना यहाँ उसके आधीन थी। पर उन पर अँगरेज़ों के सिर्फ़ ४ हज़ार सैनिकों ने ही विजय प्राप्त करली! धीरे-धीरे नवाब के सभी नगरों पर अँगरेज़ों का अधिकार हो

गया। पटना और मुँगेर का भी पतन हुआ। क़ासिम भागकर अवध के नवाब शुजाउद्दौला की शरण गया। एक बार अवध के नवाब की सहायता से पटना और बक्सर में फिर युद्ध हुआ। परन्तु विश्वासघात और घूँस की घोर ज्वाला ने मुसलमानी तख़्त का विध्वंस किया। इस पर प्रयाग तक मीरक़ासिम खदेड़ा गया। फल यह हुआ कि प्रयाग भी अँग्रेज़ों के हाथ आगया।

मीरक़ासिम का क्या हुआ?—कुछ पक्की ख़बर नहीं। लोग कहते हैं कि दिल्ली की सड़क पर एक दिन एक लाश देखी गई थी—जो एक बहुमूल्य शाल से ढकी थी। उसके एक कोने पर लिखा था—'मीरक़ासिम।'

मीरजाफ़र फिर नवाब बन गया। अङ्गरेज़ों ने क़ासिम की लड़ाई का सब ख़र्चा और हर्जाना मीरजाफ़र से वसूल किया। सब को भेंट भी यथा-योग्य दी गई। बङ्गभूमि के भाग्य फूट गये। उसके माथे का सिन्दूर पोंछ लिया गया।

मराठों ने प्रथम ही बंगाल को छिन्न-भिन्न कर दिया था। अब इस राज-विप्लव के पश्चात् मानो बङ्गाल का कोई कर्ता-धर्ता ही न रहा। मीर-जाफ़र फिर गद्दी से उतार कर कलकत्ते भेज दिया गया। इस बार किसी को नवाब बनाने की ज़रूरत न रही। ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी बाहदुर ही बंगाल की मालिक बन गई।

सन् १७६८ के दिन थे। देश-भर अराजक, अरक्षित और दलित था। किसान घर-बार छोड़, जहाँ-तहाँ भाग गये थे। नगर उजाड़ होरहे थे। वर्षा भी न हुई थी। खेती बहुत कम बोई गई थी। बीज तक लोगों के पास न था। ऐसी दशा में भयङ्कर दुर्भिक्ष बङ्गाल की छाती पर सवार हुआ। परन्तु तिस पर भी कौड़ी-कौड़ी मालगुज़ारी वसूल की गई।

उस समय भी कुछ लोग धनी थे। जगतसेठ, मानिकचन्द नष्ट हो चुके थे—पर कुछ धनी बच रहे थे। पर, क्या किसान, क्या धनी—अन्न बङ्गाल में किसी के पास न था। अशर्फ़ियाँ थीं—मगर कोई अन्न बेचनेवाला न था।

अँगरेज़ों ने बहुत-सा चावल कलकत्ते में सेना के लिये भर रक्खा था। यह सुनकर चारों ओर से पुर्निया, दीनापुर, बाँकुड़ा, वर्द्धमान-आदि से हज़ारों नर-नारी कलकत्ते को चल दिये। गृहस्थों की कुल-कामिनियों ने प्राणाधिक बच्चों को कन्धे पर चढ़ाकर विकट-यात्रा में पैर धरा। जिन कुल-वधुओं को कभी घर की देहली उलाँघने का अवसर नहीं आया था, वे भिखारिन के वेश में कलकत्ते की तरफ़ जा रही थीं। बहुमूल्य आभूषण और अशर्फ़ियाँ उनके अंचल में बँधे थे, और वे उनके बदले एक मुट्ठी अन्न चाहती थीं।

पर इनमें कितनी कलकत्ते पहुँचीं? सैकड़ों स्त्री-पुरुष मार्ग में ही भूखे-प्यासे मर गये, कितनों के बच्चे माता का सूखा स्तन चूसते-चूसते अन्त में माता की छाती पर ही ठण्डे होगये। कितनी कुल-वधुओं ने भूख प्यास से उन्मत्त हो, आत्मघात किया।

बाबू चण्डीचरण सेन ने उस भीषण घटना का इस प्रकार वर्णन् किया है—

"घोर दुर्भिक्ष समुपस्थित है। सूखे नर-कङ्कालों से मार्ग भरे पड़े हैं। ....सहस्रों नर-नारी मर-मरकर मार्ग में गिर रहे हैं। भगवती गङ्गा अपने तीव्र-प्रवाह में भूखे मुर्दों को गङ्गासागर की ओर बहाये लिए जा रही हैं। अपने अधमरे बच्चों को छाती से लगाये, सैकड़ों स्त्रियाँ अधमरी अवस्था में गंगा के किनारे सिसक रही हैं। पापी प्राण नहीं निकले हैं। कभी-कभी डोम अन्य मुर्दों के साथ उन्हें भी टाँग पकड़कर गंगा में फेंक रहे हैं। जहाँ-तहाँ आदमियों का समूह हिताहित शून्य हो, वृक्षों के पत्तों को खा रहा है। गंगा-किनारे के वृक्षों में पत्ते नहीं रहे हैं।".......

"कलकत्ता नगर के भीतर एक रमणी—एक मुट्ठी नाज के लिये अपनी गोद के प्यारे बच्चे को बेचने के लिये इधर-उधर घूम रही है।"

उक्त बाबू साहब एक स्थान पर इन अभागे बंगालियों को सम्बोधन करके लिखते हैं—

"हे बङ्गदेश के नरनारीगण! तुम झूठी आशा के ही सहारे व्यर्थ

कलकत्ते आ रहे हो ! कलकत्ते में जो चावल रक्खे हैं, वे तुम्हारे भाग्य में नहीं बदे। तुम्हारे जीने-मरने में किसी को कुछ लाभ नहीं है। ...... वह अन्न तो उनके सैनिकों के लिये है। उनके निकट तुम्हारी अपेक्षा उनके सैनिक कहीं भूखे मर गये तो मानवीय स्वतन्त्रता के मूल पर कुठाराघात कौन करेगा ?"

इसी समय के कुछ दिन प्रथम क्लाइव को एक-ही गाँव की लूट में इतना चावल मिला था, कि जिससे एक वर्ष तक दस हज़ार सिपाहियों का गुज़ारा चल सकता था। आश्चर्य है, कि देखते-ही-देखते बङ्गाल इस दशा को पहुँच गया !

---

(१८)

दक्षिण के मुस्लिम-राज्य

दक्षिण के प्राचीन राज्य चेरा, चोल, पाण्ड्य नष्ट होगये थे। परन्तु मुहम्मद तुग़लक़ के कुशासन से लाभ उठाकर एक हिन्दू-राज्य विजयनगर पठानों के काल में बन गया था, जो २०० वर्ष तक रहा। इसी काल में बहमनी-राज्य हसन-नामक एक वीर और साहसी मनुष्य ने स्थापित किया था। यह व्यक्ति समय के प्रभाव से गंगू-नामक एक ब्राह्मण की सेवा में कुछ दिन रह चुका था—अतः उसके प्रति कृतज्ञता-प्रकाश करने को, उसने अपना नाम—'सुलतान अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी' रक्खा, और अपने राज्य का नाम 'बहमनी'-राज्य रक्खा। राजा होने पर गंगू आजीवन इसका मंत्री रहा। गोलकुण्डा के पश्चिम में इसकी राजधानी गुलबर्गा थी, और उसका राज्य बरार से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक फैला हुआ था।

विजयनगर की सेना में ७ लाख योद्धा थे, और उसका शौर्य बहुत बढ़ा-बढ़ा था। उसका राज्य खम्भात की खाड़ी से आरम्भ होकर पूर्व-दिशा में जगन्नाथ के निकट बंगाल की खाड़ी तक और दक्षिण में कन्या-कुमारी तक फैला हुआ था।

इस हिन्दू-राजा के पास गुर्जिस्तान के ३ गुलाम थे, जिनको वह हर प्रकार सुखी, प्रसन्न और सन्तुष्ट रखता था। यहाँतक कि उसने उनके ३ बड़े-बड़े प्रान्तों का अधिकारी बना दिया था—एक को बीजापुर, पुरन्दर और सूरत से लेकर नर्मदा तक फैला हुआ प्रान्त दिया गया था। इसकी राजधानी दौलताबाद थी। दूसरे को बीजापुर का प्रान्त दिया गया था, और तीसरे को गोलकुण्डा का। ये तीनों गुलाम बहुत शीघ्र धन-शक्ति-सम्पन्न होगये। और चूँकि वे शिया थे, इसलिये ईरानियों से उन्हें बहुत-कुछ सुभीते मिलते गये।

पीछे इन तीनों ने मिलकर विजयनगर के प्रति विद्रोह किया, और तालीकोट के मैदान में विजयनगर का गौरव सदा के लिये धूल में मिला दिया।

इसके बाद इन तीनों में परस्पर फूट फैल गयी, और १६वीं सदी के अन्त में अहमदनगर के बादशाह ने बराड पर आक्रमण कर अपने राज्य में मिला लिया। पीछे, जब दिल्ली पर अकबर का राज्य जम गया, तो उसने अपने पुत्र मुराद को अहमदनगर पर आक्रमण करने भेजा। उस समय चाँदबीबी अहमदनगर की सुलताना थी। उसने बड़ी वीरता से युद्ध किया अन्त में परस्पर की फूट से वह मारी गई और मुग़लों का अहमदनगर पर अधिकार होगया। कुछ दिन बाद खानदेश भी मुग़लों के हाथ आगया। परन्तु मलिक अम्बर-नामक एक वीर ने किरकी में एक नई राजधानी बना ली थी, और मुग़ल-सेना को ३ बार परास्त किया था। अब जहाँगीर ने उस पर शाहज़ादा ख़ुर्रम को भेजा, जिसने मलिक अम्बर को मार भगाया। इसके बाद शाहजहाँ के काल में दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ ने मलिक अम्बर के बेटों से मिलकर विद्रोह का झण्डा खड़ा

किया। अन्त में ६ वर्ष युद्ध करके फिर शाही अमल में अहमदनगर आ-गया। इस मुहिम में बीजापुर ने अहमदनगर की सहायता की थी। इस-लिये उस पर भी आक्रमण किया गया, पर इस अवसर पर बीजापुर से सन्धि होगई, और बीजापुर राज्य दिल्ली के बादशाह को कर देने लगा।

औरंगज़ेब ने, जब वह दक्षिण का सूबेदार था, तब एक बार मीर जुमला के साथ गोलकुण्डा पर चढ़ाई की थी, पर सन्धि होगई थी। तब से गोलकुण्डा की शक्ति ढीली पड़ी थी—और वह औरंगज़ेब के लगभग बिल-कुल आधीन होगया था।

बीजापुर के विरुद्ध बराबर मुग़ल-सेना, समय-समय पर जाती रहीं। उधर दक्षिण में शिवाजी ने एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करली थी। वह भी बीजापुर को तंग कर रहा था। उसने उसके ज़बरदस्त सरदार अफ़-ज़लख़ाँ को मार डाला था।

अन्त में औरंगज़ेब ने स्वयं ही दक्षिण-विजय की यात्रा की, और वह २२ वर्ष तक वहीं लड़ता रहा। फिर अन्त में वहीं मरा भी। इसने गोल-कुण्डा और बीजापुर दोनों राज्यों को मुग़ल-साम्राज्य में मिला लिया।

---

(१६)

हैदरअली और टीपू

हैदरअली के दादा वलीमुहम्मद एक मामूली फ़क़ीर थे, जो गुलबर्गा में दक्षिण के प्रसिद्ध साधु हज़रत बन्दानेवाज़ गेसूदराज़ की दरगाह में रहा करते थे। इनके ख़र्च के लिये दरगाह से छोटी-सी रक़म बँधी हुई थी। इनका एक पुत्र था, जिसका नाम मोहम्मदअली था। उसे शेख़अली भी कहते थे। उसे भी लोग पहुँचा हुआ फ़क़ीर मानते थे।

वह कुछ दिन बीजापुर में रहा, पीछे कर्नाटक के कोलार-नामक स्थान में आकर ठहरा। कोलार का हाकिम शाहमुहम्मद दक्षिणी शेख़अली का बड़ा भक्त था। शेख़अली के ४ बेटे थे। उन्होंने बाप से नौकरी की इजाज़त माँगी। पर उसने समझाया—हम साधुओं को दुनियाँ के धन्धों में फँसना ठीक नहीं। निदान, वे पिता की मृत्यु तक उसके पास रहे। पिता की मृत्यु पर बड़ा तो पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ, और सब से छोटा अरकार के नवाब के यहाँ फौज़ में जमादार होगया, और तंजोर के फ़क़ीर पीरज़ादा बुरहानुद्दीन की लड़की से शादी कर ली। इससे उसे दो पुत्र हुए—जिनमें, छोटे का नाम हैदरअली था। इस समय उसका पिता सिरा के नवाब के यहाँ बालाँपुर कलाँ का क़िलेदार था। जब हैदरअली ३ वर्ष का था, तब उसका पिता किसी युद्ध में मारा गया। उसका सब सामान ज़ब्त कर लिया गया, और हैदरअली को भाई-सहित नक़्क़ारे में बन्द कराकर नक़्क़ारे पर चोटें लगवानी शुरू करा दी गईं। इस अवसर पर उसके चचा ने धन भेजकर उसका उद्धार किया, और अपने पास रक्खा। वहाँ उसने युद्ध-विद्या सीखी, और समय आने पर दोनों भाई मैसूर की सेना में भर्ती हो गये।

मैसूर रियासत मरहठों को चौथ देती थी। इस समय निज़ाम और मैसूर-राज्य का मिलकर अँगरेज़ों से युद्ध हुआ। इस युद्ध में हैदरअली एक साधारण सवार की भाँति लड़ा।

इस युद्ध में हैदर ने जो कौशल दिखाया, उस पर मैसूर के दीवान की दृष्टि पड़ी, और उसने हैदर को डिण्डीगल का फ़ौजदार नियत कर दिया। यहाँ उसने अपनी सेना को फ़्रान्सीसी रीति से युद्ध करने की शिक्षा दी, और तोपख़ाने में भी फ़्रान्सीसी कारीगर नियुक्त किये।

धीरे-धीरे उसका बल बढ़ता गया, और वह प्रधान सेनापति हो गया। शीघ्र ही वह मैसूर का प्रधान-मन्त्री होगया। उस समय प्रधान-मन्त्री ही राज-काज के कर्ता-धर्ता थे। महाराज तो साल में एकाध बार प्रजा को दर्शन देते थे। हैदरअली ने शीघ्र ही मैसूर की सम्पूर्ण सत्ता अधिकार में कर ली, और प्रधान-मन्त्री की पदवी उसकी ख़ान्दानी पदवी हो गई। दिल्ली के सम्राट् ने भी उसे सीरा-प्रान्त का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

अब हैदरअली ने राज्य की व्यवस्था की ओर ध्यान दिया, और शीघ्र ही सब प्रबन्ध उत्तमता से होने लगा। इसके बाद उसने आस-पास के प्रान्त में विजय प्राप्त कर, रियासत को बढ़ाना प्रारम्भ किया।

यह वह समय था, जब मराठे बढ़ रहे थे। मराठों का मैसूर पर चार बार आक्रमण हुआ, पर अन्त में उन्हें हैदरअली से सन्धि करनी पड़ी।

इस समय अँगरेज़ी कम्पनी की शक्ति भी किसी शक्ति की वृद्धि सहन न कर सकती थी। उन्होंने छेड़-छाड़ की, और हैदरअली के मित्र कर्नाटक के नवाब को भड़काकर फोड़ लिया। हैदर ने यह देख, निज़ाम से सन्धि की, और दोनों ने मिलकर कर्नाटक और अँगरेज़ी इलाक़े पर हमला कर दिया। निज़ाम की ओर से ५० हज़ार सेना सहायतार्थ आई थी। इतनी ही अँगरेज़ी सेना जनरल स्मिथ की आधीनता में मद्रास से बढ़ी। हैदर के पास २ लाख सेना थी। इसमें से ५० हजार सेना लेकर उसने अँगरेज़ी सेना की गति रोकी। परन्तु निज़ाम को भी अँगरेज़ों ने फोड़ने की

चेष्टा की। यह देख, हैदर ने सन्धि की चेष्टा की—पर, अँगरेज़ों ने उसके दूत को अपमानित करके निकाल दिया। यह देख, हैदर युद्ध को सन्नद्ध होगया, और शीघ्र ही समस्त छिना हुआ देश लौटा लिया, तथा अँगरेज़ सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया।

इस समय हैदर के पुत्र टीपू की आयु १८ वर्ष की थी, और वह पिता के साथ युद्ध के मैदान में था। हैदर ने उसे ५००० हज़ार सेना देकर दूसरे रास्ते मद्रास भेज दिया। वह इतना शीघ्र मद्रास पहुँचा, कि उसकी सेना को सिर पर देख, अँगरेज़ गवर्नर घबरा गया, और वे लोग भाग खड़े हुए। टीपू ने सेण्ट टॉमस-नामक पहाड़ी पर क़ब्ज़ा किया, और आस-पास के अँगरेज़ी इलाक़े भी क़ब्ज़े में कर लिये।

उधर त्रिचनापल्ली में हैदर और जनरल स्मिथ का मुक़ाबला हुआ। ऐन मौक़े पर अपनी तमाम सेना को निज़ाम के अफ़सर ने इस बुरी तरह पीछे हटाया, कि हैदर की तमाम फ़ौज में खलबली मच गई। यह विश्वास-घात देख, हैदर ने अपनी सेना कुछ पीछे हटाई।

उधर अँगरेज़ों ने उड़ा दिया कि हैदर हार गया, और टीपू को भी समाचार भेज दिया। टीपू उस समय मद्रास से १ मील दूर था। वह अँगरेज़ों के भर्रे में आ-गया, और मद्रास को छोड़कर पिता से मिलने को चल दिया।

इधर हैदर, वेनियमबाड़ी के क़िले की ओर बढ़ा, और उसे फ़तह करके आम्बूर की ओर गया। वहाँ उसे बहुत-से हथियार और गोला-बारूद हाथ लगा। जनरल स्मिथ हार-पर-हार खाकर पीछे हटता गया। तब उसकी सहायता के लिये कर्नल उड एक नई सेना लेकर बंगाल से चला।

इस बीच में अँगरेज़ों ने पादरियों-द्वारा हैदर के योरोपियन-अफ़सरों को फोड़ने की पूरी-पूरी कोशिश की, और सफलता भी प्राप्त की। पर अन्त में हैदर ने अपना तमाम इलाक़ा अँगरेज़ों से छीन लिया। उधर अँगरेज़ों ने बंगलौर को हथिया लिया था—उसे टीपू ने छीना। इस युद्ध में अनेक अँगरेज़-अफ़सर सेनापति-सहित गिरफ़्तार किये गये। अन्त में

हैदर वीर-पुत्र-सहित सेना को खदेड़ते हुए मद्रास तक आ पहुँचा। अँगरेज़ों ने कप्तान ब्रूक को सुलह की बात-चीत करने भेजा। हैदर ने जवाब दिया—"मैं मद्रास के फाटक पर आ रहा हूँ। गवर्नर और उसकी कौन्सिल को जो-कुछ कहना होगा—वहीं आकर सुनूँगा।" वह साढ़े तीन दिन के अन्दर १३० मील का फ़ासला तै करके अचानक मद्रास आ-धमका, और क़िले से १० मील दूर छावनी डाल दी। अँगरेज़ काँप उठे। हैदर और अँगरेज़ी सेना के बीच में 'सेण्ट टॉमस' की पहाड़ी थी। अँगरेज़ों ने देखा कि यदि हैदर इस पर अधिकार कर लेगा—तो ख़ैर नहीं। वे जल्दी-जल्दी वहाँ तोपें जमा रहे थे। पर हैदर एक चक्कर काटकर मद्रास क़िले के दूसरे फाटक पर आ पहुँचा। अँगरेज़ी सेना क़िले के दूसरी ओर फ़सील से दो-तीन मील के फ़ासले पर थी। अँगरेज़ों के भय का ठिकाना न था। पर हैदर ने पूर्व-वचन के अनुसार गवर्नर को कहला भेजा—"कहो, क्या कहना चाहते हो?"—गवर्नर ने तुरन्त डुप्रे और वैशियर को सुलह की बात-चीत करने को भेजा। डुप्रे भविष्य के लिये गवर्नर नियुक्त हो चुका था। वैशियर उस समय के गवर्नर का सगा भाई था।

अन्त में सन्धि हुई। इसमें कम्पनी का किसी प्रकार का राजनैतिक अधिकार नहीं माना गया। सन्धि-पत्र हैदर ने जैसा चाहा, वैसा-ही इँगलिस्तान के बादशाह के नाम से लिखा गया। इस सन्धि के आधार पर हैदरअली और इँगलैण्ड के राजा में मित्रता क़ायम रही। दोनों ने अपने प्रान्त वापस लिये, और हैदर ने एक मोटी रक़म युद्ध के ख़र्च के लिए ली। दूसरी सन्धि के आधार पर अरकार का नवाब मैसूर का सूबेदार समझा गया, और बतौर ख़िराज़ के ६ लाख रुपया सालाना का देनदार बना। इसके सिवा एक नया युद्ध का जहाज़ जिस पर उम्दा ५० तोपें थीं—हैदरअली को अँगरेज़ों ने भेंट किया।

इस सन्धि का यह असर हुआ कि इँगलैण्ड में इसकी ख़बर पहुँचते ही ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के हिस्सों की दर ७० फ़ी-सदी गिर गई।

कुछ दिन बाद मराठों ने मैसूर पर आक्रमण किया। हैदर ने अँग्रेज़ों

से मदद माँगी। पर उन्होंने इनकार कर दिया। हैदर अँगरेज़ों की चाल समझ गया। उसने टीपू को मराठों पर सेना लेकर भेजा, और ६ वर्ष तक दोनों में सन्धि होगई। अब हैदर को यह निश्चय होगया कि अँगरेज़ सन्धि को तोड़ रहे हैं, तो उसने अँगरेज़ों पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दी, और निज़ाम से मदद माँगी। पर, निज़ाम इस बार भी ऐन मौक़े पर दग़ा कर गया।

इसी बीच में नाना फड़नवीस ने हैदर से सन्धि करली। अँगरेज़ों ने फिर सन्धि की बहुत चेष्टा की, पर हैदर ने स्वीकार न किया। कर्नाटक का नवाब मुहम्मदअली अँगरेज़ों का मित्र था। हैदर ने पहले उसी की ओर रुख़ किया, और सेना के कई भाग कर, तमाम प्रान्त में फैला दिये। अँगरेज़ी और नवाब की सेनाएँ हार-पर-हार खाने लगीं। अन्त में तमाम प्रान्त को हैदर ने अपने क़ब्ज़े में कर लिया। नवाब भागकर मद्रास चला गया। हैदर की सेनाएँ भी मद्रास जा धमकीं। अँगरेज़ों की दो सेनाएँ उनके मुक़ाबले को उठीं। घनघोर युद्ध हुआ, और हैदर ने अँगरेज़ी-सैन्य को बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अरकार के क़िले और नगर पर भी अधिकार होगया। वहाँ उसने एक हाकिम नियत किया, और शासन-प्रबन्ध ठीक किया।

उस समय वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर-जनरल थे। यह समाचार सुन, वह घबरा गए। बंगाल की हालत भयानक होगई थी। भयानक दुर्भिक्ष था! पर, फिर भी ५ लाख रुपया नक़द और एक भारी सेना उसने मद्रास के लिये भेजी। मद्रास पहुँचकर इस सेना के सेनापति ने सात लाख रुपये मुहम्मदअली से और वसूल किये और सैन्य-संग्रह कर, हैदरअली के मुक़ाबले को बढ़ा। कई बार मुठभेड़ हुई, और अँगरेज़ों को भारी हानि उठाकर पीछे हटना पड़ा। अन्त में सेनापति सरकूट बंगाल लौट गये। हैदर ने लगभग समस्त अँगरेज़ी इलाक़ा फ़तह कर लिया था। पर अचानक उसकी मृत्यु अरकार के क़िले में होगई। हैदरअली की पीठ में अदीठ (कालंकल) फोड़ा हो गया था। उसी से उसकी मृत्यु हुई। मृत्यु के समय वह साठ वर्ष का था।

मृत्यु के समय उस तमाम इलाक़े को छोड़कर, जो उसने हाल के युद्ध में अपने शत्रुओं से विजय किया था—शेष का क्षेत्रफल ८० हज़ार वर्ग-मील था, जिसकी सालाना बचत, तमाम ख़र्चा निकालकर, ३ करोड़ रुपयों से अधिक थी। उसकी स्थाई सेना ३ लाख २४ हज़ार थी। ख़ज़ाने में नक़दी और जवाहरात मिलाकर सब ८० करोड़ से ऊपर था। उसकी पशुशाला में—७०० हाथी, ६००० ऊँट, ११००० घोड़े, ४००००० गाय, और बैल,—१००००० भैंसें, ६०००० भेड़ें थीं। शास्त्रागार में ६ लाख बन्दूक़ें, २ लाख तलवारें और १२ हज़ार तोपें थीं।

यह पहला-ही हिन्दुस्तानी राजा था, जिसने अपने समुद्र-तट की रक्षा के लिये एक जहाज़ी बेड़ा—जो तोपों से सज्जित था, रखा हुआ था। यह जल-सेना बहुत ज़बर्दस्त थी, और उसके जल-सेनापति अलीरज़ा ने मल-द्वीप के १२ हज़ार छोटे-छोटे टापुओं को हैदर के राज्य में मिला लिया था।

वह पढ़ा-लिखा न था। बड़ी कठिनता से उसने अपने नाम का पहला अक्षर 'हे' लिखना सीख पाया था। पर, इसे भी वह उल्टा-सीधा लिख पाता था। फिर भी उसने योरोप के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के दाँत खट्टे कर दिये थे। उसकी स्मरण-शक्ति ऐसी अलौकिक थी, कि वह एक-साथ कई-कई काम किया करता था। एक-साथ वह तीस-चालीस मुन्शियों से काम लेता था।

उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र टीपू ने युद्ध उसी भाँति जारी रक्खा। अँगरेज़ों ने लल्लो-पत्तो करके फिर सन्धि की। वह वीर था—पर अनुभव-शून्य था! उसने अँगरेज़ों से मित्रता की सन्धि स्थापित की, और जीता हुआ प्रान्त उन्हें लौटा दिया। कम्पनी ने उसे मैसूर का अधिकारी स्वीकार कर लिया था।

कुछ दिन तो चला। पीछे जब लॉर्ड कॉर्नवालिस गवर्नर होकर आये, तो उन्होंने देखा कि टीपू ने निज़ाम और मराठों से बिगाड़ कर लिया है। कॉर्नवालिस ने झट निज़ाम के साथ टीपू के विरुद्ध एक समझौता किया।

इसके बाद उसने टीपू और मराठों में होती हुई सुलह में विघ्न डालकर मराठों से भी एक समझौता कर लिया। तीन बार उसने इङ्गलैण्ड से कुछ गोरी फ़ौज तथा ५ लाख पौण्ड क़र्ज़ भी मँगवाये।

अब त्रावनकोर के राजा से भी युद्ध छिड़वा दिया गया, और अँगरेज़ उसकी मदद पर रहे। मुठभेड़ होने पर फिर टीपू ने अँगरेज़ी-सेना को हार-पर-हार देनी आरम्भ की। अन्त में स्वयं कॉर्नवालिस ने सेना की बागडोर हाथ मे ली। निज़ाम और मराठे उसकी सहायता को सेनाएँ ले-लेकर उससे मिल गये। ठीक युद्ध के समय तमाम योरोपियन अफ़सर और सिपाही शत्रु से मिल गये। टीपू के कुछ सेनापति और सरदार भी घूँस से फोड़ लिये गये।

यद्यपि टीपू की कठिनाइयाँ असाधारण थी, पर उसने वीरता और दृढ़ता से कई महीने लोहा लिया। अन्त में बँगलौर अँगरेज़ों के हाथ में आगया—टीपू को पीछे हटना पड़ा।

अब कॉर्नवालिस ने मैसूर की राजधानी श्रीरङ्गपट्टन पर चढ़ाई की। टीपू ने युद्ध किया, और सुलह की भी पूरी चेष्टा की। अँगरेज़ों ने लालबाग़ में हैदरअली की सुन्दर समाधि पर अधिकार कर लिया, और उसे लगभग नष्ट भ्रष्ट कर दिया। अन्त में दोनों दलों मे सन्धि हुई, और टीपू का आधा राज्य लेकर कम्पनी, निज़ाम और मरहठों ने बाँट लिया। इसके सिवा टीपू को ३ क़िस्तों में ३ करोड़ ३० हज़ार रुपया दण्ड देने का भी वचन देना पड़ा, और इस दण्ड की अदायगी तक अपने दो बेटों को—जिनमें एक की आयु १० वर्ष और दूसरे की ८ वर्ष की थी—बतौर बन्धक अँगरेज़ों के हवाले करना पड़ा।

इस पराजय से टीपू का दिल टूट गया, और उसने पलँग-बिस्तर छोड़-कर टाट पर सोना शुरू कर दिया, और मृत्यु तक उसने ऐसा-ही किया।

अस्तु—टीपू ने ठीक समय पर दण्ड का रुपया दे दिया, और बड़ी मुस्तैदी से वह अपने राज्य, राज्य-कोष और प्रबन्ध को ठीक करने लगा। युद्ध के कारण जो मुल्क की बर्बादी हुई थी, उसे ठीक करने में उसने अपनी

सारी शक्ति लगादी। सेना में भी नई भर्ती करना और उन्हें शिक्षा देना उसने आरम्भ किया। इस प्रकार शीघ्र-ही उसने अपनी क्षति-पूर्ति करली।

उधर अँगरेज़-सरकार भी बे-ख़बर न थी। उधर भी सैन्य-संग्रह हो रहा था। निज़ाम सबसीडियरी सेना के जाल में फँस गया था, और पेशवा के पीछे सीन्धिया को लगा दिया गया था। पर प्रकट में दोनों ओर से मित्रता और प्रेम के पत्रों का भुगतान होरहा था। अन्त में सन् १७९९ की ९ जनवरी को हठात् टीपू को वेलेज़ली का एक पत्र मिला, उसमें लिखा था—"अपने समुद्र-तट के समस्त नगर अँग्रेज़ों के हवाले करदो, और २४ घण्टे के अन्दर जवाब दो।"

३ फ़रवरी को अँगरेज़ी फ़ौजें टीपू की ओर बढ़ने लगीं। टीपू युद्ध को तैयार न था। उसने सन्धि की बहुत चेष्टा की, पर वेलेज़ली ने कुछ भी ध्यान न दिया। जल और थल दोनों ओर से टीपू को घेर लिया गया था। गुप्त साज़िशों से बहुत-से सर्दार फोड़े जा चुके थे। अँगरेज़ों के पास कुल ३० हज़ार सेना थी।

प्रारम्भ में टीपू ने अपने विश्वस्त सेनापति पुर्णियाँ को मुक़ाबले में भेजा। पर वह विश्वासघाती था। वह अँगरेज़ी फ़ौज के इधर-उधर चक्कर लगाता रहा, और अँगरेज़ी सेना आगे बढ़ती चली आई। यह देख, टीपू ने स्वयम् आगे बढ़ने का इरादा किया। पर विश्वासघातियों ने उसे धोखा दिया, और उसकी सेना को किसी और ही मार्ग पर ले गये। उधर अँगरेज़ी सेना दूसरे ही मार्ग से रंगपट्टन आ रही थी। पता लगते ही टीपू ने पलटकर गुलशनाबाद के पास अँगरेज़ी सेना को रोका। कुछ देर घमासान युद्ध हुआ। सम्भव था, अँगरेज़ी सेना भाग खड़ी होती—पर उसके सेनापति कमरुद्दीनख़ाँ ने दग़ा दी, और उलटकर टीपू की ही सेना पर टूट पड़ा। इस भाँति अँगरेज़ विजयी हुए।

इसी बीच में टीपू ने सुना कि एक भारी सेना बम्बई की तरफ़ से चली आ रही है। टीपू वहाँ कुछ सेना छोड़, उधर दौड़ा, और बीचमें ही उस पर टूटकर उसे भगा दिया। परन्तु उसके मुख़बिर और सेनापति

सभी विश्वासघाती थे। टीपू को वे बराबर ग़लत सूचना देते थे। ज्यों-ही टीपू लौटकर रँगपट्टन आया कि अँगरेज़ी सेना ने शहर घेरकर आग बरसानी शुरू कर दी।

टीपू ने सेनाएँ भेजीं। पर सेनापतियों ने युद्ध के स्थान पर चारों ओर चक्कर लगाना शुरू कर दिया। अँगरेज़ फ़तह कर रहे थे, और टीपू को ग़लत ख़बरें मिल रही थीं। क्रोध में आकर टीपू ने तमाम नमकहरामों की सूची बनाकर एक विश्वस्त कर्मचारी को दी, और कहा—"इन्हें रात को ही क़त्ल करदो!" पर एक फ़र्राश की नमकहरामी से भण्डाफोड़ होगया। उसी दिन टीपू घोड़े पर चढ़कर क़िले की फ़सीलों का निरीक्षण करने निकला, और एक फ़सील पर अपना ख़ेमा लगवाया। कहते हैं—ज्योतिषियों ने उससे कहा था—"आज का दिन दोपहर के ७ घड़ी तक आपके लिये शुभ नहीं।" उसने ज्योतिषियों की सलाह से स्नान किया, हवन-जप भी किया, और दो हाथी—जिन पर काली झूलें पड़ी थीं—और जिनके चारों कोनों में सोना, चाँदी, हीरा, मोती बँधे थे—ब्राह्मण को दान दिये, ग़रीबों एवं मोहताजों को भी अटूटधन दिया। इसके बाद वह भोजन करने बैठा ही था, कि सूचना मिली—क़िले के प्रधान संरक्षक अब्दुलग़फ़्फ़ार को क़त्ल कर डाला गया है। टीपू तत्काल उठ खड़ा हुआ, और घोड़े पर सवार हो, स्वयं उसकी जगह चार्ज में लेने क़िले में घुस गया। कुछ ख़ास-ख़ास सर्दार साथ में थे।

उधर विश्वासघातियों ने सैयद ग़फ़्फ़ार को ख़त्म करते-ही सफ़ेद रूमाल हिलाकर अँगरेज़ी सेना को संकेत कर दिया। यह देख, टीपू के सावधान होने से प्रथम-ही दीवार के टूटे हिस्से से शत्रु के सैनिक क़िले में घुस गये।

एक नमकहराम सेनापति मीरसादिक़ यह ख़बर पा, सुलतान के पीछे गया और जिस दरवाज़े से टीपू क़िले में गया था, उसे मज़बूती से बन्द करवाकर दूसरे दरवाज़े से मदद लेने के बहाने निकल गया। वहाँ वह पहरेदारों को यह समझा ही रहा था—कि, मेरे जाते ही दरवाज़ा बन्द कर लेना—और हरगिज़ न खोलना, कि एक वीर ने, जो उसकी नमकहरामी

को जानता था, कहा—"कम्बख़्त मलऊन ! सुलतान को दुश्मनों के हवाले करके यों जान बचाया चाहता है। ले. यह तेरे पापों की सज़ा है।" कहकर खट्-से उसके टुकड़े कर दिये।

पर टीपू अब फँस चुका था। जब वह लौटकर दरवाज़े पर गया, तो उसी के बेईमान सिपाही ने दरवाज़ा खोलने से इनकार कर दिया। अँगरेज़ी सेना टूटे हिस्से से क़िले में घुस चुकी थी।—हताश हो, वह शत्रुओं पर टूट पड़ा। पर कुछ ही देर में एक गोली उसकी छाती में लगी। फिर भी वह अपनी बन्दूक़ से गोलियाँ छोड़ता ही रहा। पर, फिर और एक गोली उसकी छाती में आकर लगी। घोड़ा भी घायल होकर गिर पड़ा। उसकी पगड़ी भी भी ज़मीन पर गिर गई। अब उसने पैदल खड़े होकर तलवार हाथ में ली। कुछ सैनिकों ने उसे पालकी में लिटा दिया। कुछ लोगों ने सलाह दी, कि अब आप अपने को अँगरेज़ों के सुपुर्द कर दें। पर उसने अस्वीकार कर दिया। अँगरेज़ सिपाही नज़दीक आगये थे। एक ने उसकी जड़ाऊ कमर-पेटी उतारनी चाही, टीपू के हाथ में अब तक तलवार थी—उसने उसका भरपूर हाथ मारा, और सिपाही दो टूक हो, जा पड़ा। इतने में एक गोली उसकी कनपटी को पार करती निकल गई।

रात को जब उसकी लाश मुर्दों में से निकाली गई, तो तलवार अब भी उसकी मुट्ठी में कसी हुई थी। इस समय उसकी आयु ५० वर्ष की थी।

इस समय उसका बेटा फ़तह हैदर कागी घाटी पर युद्ध कर रहा था। पिता की मृत्यु की ख़बर सुनते-ही वह उधर दौड़ा। पर, नमकहराम सलाहकारों ने उसे लड़ाई बन्द करने की सलाह दी। साथ ही जनरल हैरिस स्वयम् कुछ अफसरों के साथ उससे भेंट करने आये, और कहा कि यदि आप लड़ाई बन्द करदें, तो आपको आपके पिता के तख़्त पर बैठा दिया जायगा। इस पर विश्वास कर, फ़तहहैदर ने युद्ध बन्द कर दिया। पर यह सिर्फ़ बहाना था। अँगरेज़ी सेना ने क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया, और रँगपट्टन में अँगरेज़ी सेना ने भारी लूट-खसोट और रक्त-पात जारी कर दिया।

अब अँगरेज़ी सेना महल में घुसी। टीपू को शेर पालने का बड़ा शौक था। बाहरी सहन में अनगिनत शेर खुले फिरते थे। अँगरेज़ी फ़ौज ने भीतर घुसते ही इन्हें गोली से उड़ा दिया। महल में टीपू का ख़ज़ाना, धन, रत्न और जवाहरात से ठसाठस था। यह सब माल, हाथी, ऊँट और भाँति-भाँति का असबाब सब अँगरेज़-सेना ने क़ब्ज़ा कर लिया। सुलतान का ठोस सोने का तख़्त तोड़ डाला गया, और हीरे-जवाहरात और मोतियों की माला और ज़ेवरों के पिटारे नीलाम कर दिये गये। सिर्फ़ महल के जवाहरात की लूट का अन्दाज़ा १२ करोड़ रुपया था। उसका मूल्यवान् पुस्तकालय और अन्य मूल्यवान पदार्थ रंगपट्टन से उठाकर लण्डन भेज दिये गये। इसके बाद टीपू के भाई करीम साहब, टीपू के १२ बेटों और उसकी बेगमों को क़ैद करके रायविल्लूर के क़िले में भेज दिया।

राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। एक टुकड़ा निज़ामके हाथ आया। बड़ा भाग अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। शेष भाग—मैसूर के हिन्दू-राजकुल के एक ५ वर्ष के बालक को देदिया गया, और विश्वासघाती पुर्णियाँ को उसका दीवान बना दिया गया।

टीपू की समाधि पर यह शेर खुदा है:—

चूँ आँ मर्द मैदाँ निहाँ शुद्ज़ दुनियाँ,
थके गुफ़्त तारीख़ शमशीर गुम शुद।

अर्थात्—जिस समय वह शूर दुनियाँ से ग़ायब हुआ, किसी ने कहा—इतिहास के लिए तलवार गुम होगई।

— — —

(२०)

कर्नाटक के नवाब

जिस समय दिल्ली पर शाहआलम का अधिकार था, तब कर्नाटक में नवाब दोस्तअली का शासन था। उस समय फ्रान्सीसी लोग अँगरेज़ों के विरुद्ध अपने अधिकार के लिये पूरी चेष्टा कर रहे थे। नवाब अनवरुद्दीन के ज़माने में मराठों ने कर्नाटक पर आक्रमण किया था। पर फ्रांसीसियों और बादशाह दिल्ली की सहायता से नवाब की विजय हुई थी। धीरे-धीरे अँग्रेज़ों ने नवाब की दोस्ती प्राप्त करने की चेष्टा की। फ्रेंच सेनापति डुप्ले ने नवाब से वादा किया कि, मैं मद्रास से अँग्रेज़ों को निकालकर मद्रास आपके आधीन कर दूँगा। परन्तु फ्रांसीसियों ने मद्रास-विजय करके भी ४० हज़ार पाउण्ड नक़द लेकर अँग्रेज़ों को बेच दिया। तब नवाब क्रुद्ध होकर फ्रांसीसियों से लड़ पड़ा। अन्त में फ्रांस की विजय हुई। भारतीय इतिहास में योरोपियनों की यह प्रथम विजय थी। यह सन् १७४६ की घटना है।

अब नवाब और अँग्रेज़ मिल गये। परन्तु फ्रांसीसियों ने कर्नाटक नवाब के दामाद चन्दा साहब का पक्ष लिया, जो कर्नाटक की गद्दी के लिये दौड़-धूप कर रहे थे। अन्त में उनकी इच्छा पूर्ण हुई, और अनवरुद्दीन नवाब को मारकर चन्दा साहब कर्नाटक के नवाब बनाये गये।

त्रिचनापल्ली में मुहम्मदअली का अधिकार था। अँग्रेज़ उसके पक्ष में थे। अन्त में दक्षिण का वह प्रसिद्ध युद्ध हुआ—जहाँ दक्षिण के तीन राजकुलों, और अँग्रेज़ तथा फ्रांसीसियों की क़िस्मत का फैसला होगया। फ्रांसीसी हारे और भारत में उनके व्यापार का नाश होगया।

अब अँगरेज़ों की कृपा से मुहम्मदअली कर्नाटक का नवाब बना।

इसके बदले में उसने १६ लाख की आय का इलाक़ा अँगरेज़ों को दिया। प्रारम्भ में मुहम्मदअली की अँगरेज़ों में बड़ी प्रतिष्ठा थी। पर, वह शीघ्र ही बंगाल के नवाबों की भाँति दुरदुराया जाने लगा। उससे नित-नई माँगे पूरी कराई जातीं थीं, और नवाब को प्रत्येक नये गवर्नर को लगभग डेढ़ लाख रुपये नज़र करने पड़ते थे। अन्त में उस पर इतने ख़र्चे बढ़ गये, कि वह तङ्ग हो-गया, और अँगरेज़ों से जान बचाने का उपाय सोचने लगा। इस समय अँगरेज़ व्यापारियों के क़र्ज़ों से वह बेतरह दबा हुआ था।

लार्ड कॉर्नवालिस ने नवाब से एक सन्धि की, जिसके कारण नवाब की तमाम सेना का प्रबन्ध अँगरेज़ों के हाथ में आगया। इसके ख़र्च के लिये नवाब से कुछ ज़िले रहन रखा लिये गए। इनकी आमदनी ३० लाख रुपया सालानो थी।

सन् १७६९ में मुहम्मदअली की मृत्यु हुई, और उसका बेटा नवाब उमदतुलउमरा गद्दी पर बैठा। इस पर गवर्नर ने ज़ोर दिया कि रहन रखे ज़िले और कुछ क़िले वह कम्पनी को दे दे। पर उसने साफ़ इनकार कर दिया। परन्तु इसी बीच में अँगरेज़ों ने प्रतापी टीपू को हरा डाला था, और रंग-पट्टन का अटूट ख़ज़ाना उनके हाथ लगा था। उसमें गवर्नर को कुछ ऐसे प्रमाण भी मिले थे, कि जिनमें कर्नाटक-नवाब का टीपू के साथ षड्यन्त्र पाया जाता था। परन्तु नवाब के जीते-जी यह बात यों-हीं चलती रही। ज्यों-ही, नवाब मृत्यु-शय्या पर पड़ा, कम्पनी की सेना ने महल को घेर लिया, और यह कारण बताया कि नवाब की मृत्यु पर बदअमनी का भय है। नवाब बहुत गिड़गिड़ाया, पर अँगरेज़ों ने उसे हर-समय घेरे रखा, और बराबर अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते रहे। उस समय नवाब का बेटा शाहज़ादा अलीहुसैन उसी महल में था। ज्योंही नवाब का प्राण निकला कि शाहजादे को जबरदस्ती महल से बाहर लेजाकर अँगरेजों ने कहा—"चूँकि तुम्हारे दादा और बाप ने अँगरेजों के ख़िलाफ़ गुप्त पत्र-व्यवहार किया है, इसलिए गवर्नर-जनरल का यह फ़ैसला है, कि तुम बजाय अपने बाप की गद्दी पर बैठने के मामूली रिआया की भाँति जिन्दगी बिताओ,

और इस सन्धि-पत्र पर दस्तख़त कर दो।" जहाँ यह बातें हो रही थीं— वहाँ अँगरेज़ी सिपाही नंगी तलवारें लिये फिर रहे थे। परन्तु अलीहुसेन ने मंजूर न किया। तब नवाब के दूर के रिश्तेदार आज़मुद्दौला से अँगरेज़ों ने बात-चीत की। उसने सन्धि की शर्तें स्वीकार कर लीं। तब इसे मसनद पर बैठा दिया गया। इस सन्धि के अनुसार तमाम कर्नाटक-प्रान्त कम्पनी के हाथ आगया, और आज़मुद्दौला केवल राजधानी अरकार और चिपोक के महलों का स्वामी रह गया। नवाब को चिपोक के महल में रखा गया, और उसी में शाहज़ादा अलीहुसेन और उसकी विधवा माँ को क़ैद कर दिया गया। कुछ दिन बाद वह वहीं मर गया। सन्देह किया जाता है कि उसे ज़हर दिया गया।

---

(२१)
सूरत की नवाबी

मुग़ल-साम्राज्य में सूरत एक सम्पन्न बन्दरगाह और सूबा था। बहुत दिन तक वहाँ बादशाह का सूबेदार रहता था। जब साम्राज्य की शक्ति ढीली पड़ी, तब वहाँ का हाकिम स्वतन्त्र नवाब बन बैठा। पीछे जब योरोप की जातियों ने भारत में पैर फैलाये, और अँगरेज़ों की शक्ति बढ़ने लगी, तब सूरत के नवाब से भी अँगरेज़ों ने सन्धि कर ली। धीरे-धीरे नवाब अंगरेज़ों के हाथ की कठपुतली होगया। चार नवाबों के ज़माने में यही होता रहा। वेलेज़ली ने अपनी नीति के आधार पर नवाब को भी सेना-भङ्ग करने और कम्पनी की सेना रखने की सलाह दी। नवाब ने बहुत चीं-चूँ की, मगर अन्त में एक लाख रुपया वार्षिक और ३० हज़ार रुपये सालाना को और रिआयतें करनी ही पड़ीं। इसी समय नवाब मर गया। इसके बाद इसका चचा नसीरुद्दीन गद्दी पर बैठा। इसने शीघ्र ही सब दीवानी और फ़ौजदारी अधिकार अँगरेज़ों के दे दिये, और स्वयं बे-मुल्क नवाब बन बैठा, जो कुछ दिन बाद समाप्त होगये।

(२२)

निज़ाम

दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के वज़ीर आसफ़जाह ने वज़ारत से इस्तीफ़ा देकर दक्षिण में जा, हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाकर एक नया राज्य स्थापित किया, और १० वर्ष तक मराठों से लड़कर अपने राज्य को दृढ़ कर लिया। धीरे-धीरे दक्षिण में तीन शक्तियाँ प्रबल होगईं। एक निज़ाम, दूसरी पेशवा और तीसरी हैदरअली।

अँगरेज़-शक्ति ने इन तीनों को न मिलने देने में ही कुशल समझी। पाठक, हैदरअली के विवरण में पढ़ चुके हैं कि किस भाँति निज़ाम ने अँगरेज़ी-शक्ति के आधीन होकर बारम्बार हैदरअली से विश्वासघात किया। ज्यों-ही टीपू की समाप्ति हुई, अँगरेज़ी शक्ति निज़ाम के पीछे लगी। पहले गुण्डर का इलाक़ा उससे ले लिया गया।

इसके बाद एक गहरी चाल यह खेली गई कि वज़ीर से लेकर छोटे-छोटे अमीरों तक को रिश्वतें लेकर इस बात पर राज़ी कर लिया गया, कि नवाब की सब सेना, जो फ़्रान्सीसियों के आधीन थी, टुकड़े-टुकड़े करके बर्ख़ास्त कर दी जाय, और कम्पनी की सबसीडियरी सेना चुपके से हैदराबाद आकर उसका स्थान ग्रहण कर ले। इसकी नवाब को कानों-कान ख़बर नहीं हो।

वज़ीर यद्यपि सहमत हो गया था, घूँस भी खा चुका था, परन्तु ऐसा भयानक काम करते झिझकता था। किन्तु अँगरेज़ों ने सेना के भीतर ही जाल फैला दिये थे। फलतः निज़ाम की सेनाएँ विद्रोह कर बैठीं; क्योंकि उन्हें कई मास का वेतन नहीं मिला था।

इसी मौक़े पर कम्पनी की सेना ने हैदराबाद को जा घेरा, और वज़ीर से कहा कि—फ़ौरन् अपनी सेना को बर्ख़ास्त करके कम्पनी की सेना को स्थान दो। पर वज़ीर ने इनकार कर दिया। अन्त में उसे कम्पनी की इच्छा पूर्ण करनी पड़ी—निज़ाम ने भी स्वीकृति दे दी, और एक सन्धि-द्वारा निज़ाम-हैदराबाद की स्वाधीनता का सदा के लिये ख़ात्मा होगया!

---

(२३)

मुस्लिम-संस्कृति का भारत पर प्रभाव।

सब से प्रथम—अब हम यहाँ इस बात पर ख़ास तौर से प्रकाश डालना चाहते हैं, कि वास्तव में जब मुस्लिम-राज्य स्थापित होगया—तब, उस शासन में हिन्दुओं के साथ मुसलमानों के कैसे व्यवहार रहे। यह हम बता आये हैं कि बादशाहों में ऐसे कई आदमी हुए—जिन्होंने धर्मान्धता के लिये—निर्दयतापूर्वक—तलवार का सहारा लिया था। पर, यदि हम अत्यन्त गहराई से देखें, तो हम समझ जावेंगे कि अन्त में उन्हें हिन्दू-जन-बल से झुकना-ही पड़ता रहा। यह बात थोड़े-ही विचार करने से समझ में आसकती है, कि महमूद और तैमूर-जैसा लुटेरा—चाहे-जितना भी उत्पात या मार-काट करे, नगरों का विध्वंस करे, और बेतोल-सम्पदा लूटकर ले जाय, परन्तु एक बादशाह के लिये—जिसे सेना, कर, तथा अन्य सुव्यवस्थाओं के लिये हिन्दू-प्रजा से निरन्तर काम लेना पड़ता है—अत्याचार और लूट-मार कितनी घातक है! सब से मार्के की बात तो यह है, कि मुसलमानी राज्य-काल के मध्य-भाग में जितने युद्ध हुए हैं, उनमें बहुत-ही कम ऐसे मिलेंगे, जिनको विशुद्ध हिन्दू-मुस्लिम-युद्ध का रूप दिया जा सके। तरावड़ी के युद्ध में पृथ्वीराज की आधीनता में अफ़ग़ान सैनिकों

का एक दल बना था। पानीपत की तीसरी लड़ाई में मुसलमान तोपची मरहठों के साथ थे। अन्यत्र मुसलमान-शासक जहाँ हिन्दू-राजाओं से लड़ते थे—वहाँ, वह युद्ध हिन्दू-मुसलमानों में होता था। पर, मुसलमान शासक मुसलमान-राजाओं से भी उसी भाँति लड़ते थे। उधर हिन्दू-राजपूत राजा स्वयं भी आपस में ख़ूब लड़ते थे। वह समय ही मानो योद्धाओं का था, और योद्धाओं की दो श्रेणियाँ थीं—एक हिन्दू, जो अधिक थे—पर संगठित न थे; दूसरी मुसलमान, जो कम थे—पर संगठित थे। जहाँगीर और शाहजहाँ मानो मुस्लिम-साम्राज्य में एक शान्त, स्थिर और कला-कौशल को उन्नत करनेवाले बादशाह थे।

अलबत्ता एक बात तो थी ही; वह यह कि पठानों के राज्य-काल में बादशाह अपनी प्रजा में जितने सहनशील थे, उतने पराये राज्य के हिंदुओं के लिये नहीं। मलिक काफूर का दक्षिण-विध्वंस ऐसा ही है;—यद्यपि उस सेना में हिन्दू-योद्धा भी थे। सच्ची बात तो यह है कि मन्दिर-विध्वंस केवल धन-लिप्सा के लिये था।—बुतशिकनी का बहाना तो एक मीठा छल था! मध्य युग के मुसलमान बादशाहों का अपने राज्य के बाहर के हिन्दुओं पर आक्रमण करना और नगरों का लूटना एक आमदनी का ज़रिया था। भारत में अति प्राचीन-काल के व्यापार-शिल्प और अध्यवसाय से बहुत धन एकत्र होगया था, अगणित जवाहरात एकत्र होगये थे, और ब्राह्मणों के दुर्धर्ष प्रभाव से खिंचकर धर्म-मन्दिरों में सञ्चित होगये थे, जो उस काल में एक-मात्र धर्म-स्थान थे। यही कारण है कि आक्रमणकारियों की दृष्टि मन्दिरों के धन-कोष पर ही रहती थी।

यह बात तो हमें माननी पड़ेगी कि मुस्लिम-साम्राज्य का वास्तविक प्रारम्भ अलाउद्दीन की क्रूर और प्रचण्ड नीति से हुआ। ग़ुलाम-वंश के सुलतान तो थोथे मुसलमान थे। उसके बाद ही मुस्लिम-जाति भारत में एक संगठित जाति के समान बनती चली गई। यह एक नैतिक पुष्टि थी—जो अलाउद्दीन से अकबर तक स्थिर होती चली आई, और इसी ने उनके साम्राज्य को स्थिर बनाया।

परन्तु यह बात तो सत्य ही है कि मुसलमानों से प्रथम यूनानियों, शकों और हूणों ने भारत पर बड़े-बड़े धावे किये। पर उससे न भारत की राजनीति पर प्रभाव पड़ा न, समाज--शृंखला में ही गड़बड़ी हुई। सामरिक प्रभाव भी इनका सीमा-प्रान्तों तक ही सीमित रहा। यदि मुसलमान भारत में न आये होते, तो भारतवासी सुखी, समृद्ध और शान्त भारतवर्ष में रहते होते। उनकी कृषि, व्यापार, शिल्प ठीक अवस्था में था। रहन-सहन साधारण और कम खर्चीला था। सम्पत्ति अटूट थी। सामाजिक जीवन में धार्मिक विश्वासों और ब्राह्मणों का अशान्त प्रभुत्व अवश्य था, परन्तु ईसाइयों और मुसलमानों की अपेक्षा फिर भी उनमें सहनशीलता थी। मुसलमान भी कदापि इतने विजयी न हुए होते, यदि उनमें जहाद का जोश और लूट की प्रबल लालसा न होती। पाठक देखते हैं कि योरोप और मध्य-एशिया की भाँति भारत में भी उनका विरोध ढीले हाथों से किया गया था, और समय का प्रभाव था कि मध्य-एशिया तो उनके चरणों में लोट गया, और योरोप अछूता बच गया तथा भारत मध्य में ही भ्रष्ट होगया। क़ासिम से बहादुरशाह ज़फ़र तक मुसलमानों का लगभग ११०० वर्ष तक काल रहा, और आज उनकी भाषा, सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा-नीति और जीवन भारत में एक सिरे से दूसरे सिरे तक व्याप्त है। ७ करोड़ मुसलमान अब भी देश के निवासी हैं, और देश पर उनके वही अधिकार हैं, जो किसी भी देशवासी को अपनी मातृ-भूमि पर होने चाहियें। इनमें दरिद्र, अमीर, शिक्षित, मूर्ख, रईस, राजा, नवाब सभी तरह के आदमी हैं।

यह हम कह चुके हैं कि भारत में आज से पूर्व मुसलमानों की विजयिनी सेना ने हिन्दुकुश के पश्चिम में समस्त एशिया और अफ्रीक़ा तथा दक्षिणी-योरोप को रौंद डाला था। पंजाब में घुसने से पूर्व वे स्पेन और फ्रान्स को दलित कर चुके थे। कुस्तुन्तुनियाँ का प्रताप लूटकर वे साहसी होगये थे। फिर भी वे इससे पूर्व भारत में घुसने का साहस न कर सके। इसका कारण भारतीय-राजाओं का सैनिक प्रबन्ध था। उन्हें विदेशियों की टक्कर लग चुकी थी, और तातारों और हूणों से वे लोहा ले चुके थे। वे खूब कट्टर योद्धा

और मुस्तैद सिपाही थे। दुख था, तो यही कि वे परस्पर संगठित और मित्र न थे, और न वे अच्छे सेनापति रण-नीति कुशल थे। अपनी शक्तियों को परस्पर दलित करने में लगाये ही रहते थे।

इस समय विन्ध्याचल के उत्तर में तीन ज़बर्दस्त राजा बड़ी-बड़ी नदियों की घाटियों में शासन कर रहे थे। सिन्धु-सिंचित मैदानों और यमुना के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में राजपूतों का आधिपत्य था। मध्य-देश कई शक्ति-सम्पन्न राजाओं के आधीन विभक्त था, जिनका अधीश्वर कन्नौजपति था। गंगा के नीचे की घाटियों में पालवंशी बौद्ध राजे थे। उत्तर और दक्षिण भारत के बीच विन्ध्याचल के पश्चिम में मालवा का हिन्दू-राज्य और दक्षिण में चेरा, चौल और पाण्ड्य राज्य फैले हुए थे।

यद्यपि ये राज्य बिखरे हुए थे, पर विदेशियों के आक्रमण की झोंक के लिये यथेष्ट थे। यदि किसी बड़े मण्डलेश्वरकी आधीनतामें यह संयुक्त सेनाएँ एकत्र होती थीं, तो वे अजेय समझी जाती थीं। फिर जीता हुआ राज्य विद्रोह का झण्डा खड़ा करता था। यही कारण था कि क़ासिम से मुहम्मद ग़ोरी के गत छः हमलों तक भारत पर मुस्लिम आक्रमणों का वह प्रभाव नहीं पड़ा, जो एशिया माइनर के ऊपर पड़ा था। मुहम्मद ग़ोरी का प्रभुत्व भी सफल होना सम्भव न था, यदि परस्पर की कलह और निरन्तर युद्धों से शक्ति का सर्वथा क्षय न होगया होता। परन्तु यवन-साम्राज्य की नींव तो अकबर के ही काल में प्रौढ़ हुई, जबकि उसकी धार्मिक कट्टरता नष्ट हुई। उसने हिन्दू-संस्कृति और शक्ति दोनों का ही पूरा-पूरा सहयोग किया; हिन्दू-सरदारों और हिन्दू-नीति पर राज्य-विस्तार किया। अकबर के समय तक तो प्रबलसे प्रबल आक्रमण प्रजाके सहने पर भी हिन्दू-शक्तियाँ बराबर उसे चैलेंज देती ही रहीं, और अकबरकी मृत्युके २००वर्ष बाद ही प्रतापी और अद्भुत मुग़ल-सामाज्य हवा होगया, तथा उसके उत्तराधिकारी को मराठों के हाथ में क़ैद होना पड़ा।

दक्षिण में तालीकोट के मैदान में एक बार हिन्दू-शक्ति गिरी। पर एक-सौ वर्ष में ही शिवाजी के रूप में वह फिर उठी, और उसने बड़े बाँकपन से पानीपत के मैदान में ढाई लाख मरहठे ला-खड़े किए।

अकबर-जैसे प्रतापी शत्रु के सामने भी, प्रताप-जैसों ने २५ वर्ष तलवार चलाई, और औरंगज़ेब ने अपने शासन के ५० वर्ष चिन्ता और तलवार की धार पर काटे।

यह इस बात का प्रमाण है, कि भारत में कभी भी हिन्दू-शक्ति नष्ट नहीं हुई। पृथ्वी-भर के इतिहास में ११०० वर्ष तक अराजकता में रहकर, अरक्षित जीकर, इतने आक्रमण, क़त्ल और लूट-मार सहकर, तथा ७०० वर्ष विदेशी धर्म-शत्रुओं के शासन में रहकर और किस जाति ने अपने जीवन को अक्षुण्ण बनाये रक्खा है?—हिन्दुओं के मुक़ाबिले की और कौन-सी जाति है?

हाँ, हम यह कह सकते हैं कि भारत में एक क्षण के लिये भी मुसलमानों का शासन हिमालय से लेकर राजकुमारी तक और अटक से लेकर कटक तक अबाध नहीं रहा। सिर्फ़ डेढ़ शताब्दी तक मुग़लों का शासन इतना रहा कि कुछ हिन्दू-राजा उसे कर देते और अपना प्रतिनिधि भेजते रहे। बस, मुसलमानी साम्राज्य का सर्वाधिक वैभव यहीं पर समाप्त हो जाता है, और इस डेढ़ शताब्दी की समाप्ति के पूर्व ही हिन्दुओं ने फिर अपनी विजय प्रारम्भ कर दी थी। दक्षिण-पूर्व से राजपूत, पश्चिमोत्तर से सिख, और दक्षिण से मरहठे दिल्ली के मुग़ल-तख़्त को ध्वंस करने को बढ़े चले आ रहे थे। इस काल में दक्षिण के ब्राह्मणों की राजनीति-सत्ता और शूद्रों की सैनिक-योग्यता का मिश्रण एक अपूर्व घटना थी। इस समय सिर्फ़ अँगरेज़ी शक्ति ने ही बीच में पड़कर मुसलमानों के साम्राज्य को हिन्दू-हाथों में जाने से रोका।

अलबत्ता दो-चार ऐसे अवसर थे, जो हिन्दुओं ने खो दिये; और यदि वे न खोदिये होते, तो आज दिल्ली में हिन्दू-साम्राज्य होता। एक अवसर वह था, राणा साँगा ने अपने प्रबल-प्रताप से बारम्बार दिल्ली के बादशाहों को फ़तह किया था। उनकी शक्ति जर्जर थी—और बाबर इधर-उधर भटक रहा था। राणा साँगा के वंशधर उस समय अनायास ही भारत के चक्रवर्ती सम्राट् हो सकते थे। दूसरा अवसर वह था, जब पृथ्वीराज के

के पतन के बाद मुहम्मद ग़ोरी लौट गया था। तब यदि चाहते, तो जय-चन्द के वंशधर दिल्ली को धर दबा सकते थे। तीसरा अवसर वह था—जब प्रताप के पास, काबुल-विजय कर, मानसिंह मिलने गये थे। अकबर से उनका भीतरी-द्वेष चल रहा था। मुग़ल-सैन्य उनके हाथ में थी। मन में न-जाने क्या भाव आये थे। यदि प्रताप घमंड न करके मानसिंह को छाती से लगा लेते, तो अकबर ही मुस्लिम-साम्राज्य का अन्तिम बादशाह होता; और दुर्बल, ऐयाश और शराबी जहाँगीर को वह गद्दी नसीब न हो-कर सीसोदियों को मिलती। चौथा वह अवसर था, जब मराठों ने दिल्ली को रौंद लिया था, बादशाह को क़ैद कर लिया था, और विशाल भारत-वर्ष तक चिरकाल तक लावारिस माल पड़ा हुआ था!

इन सुअवसरों से हिन्दुओं ने लाभ नहीं उठाया, इसका कारण यह था, कि साम्राज्यवाद और विजय दोनों ही के महत्व को वे नहीं जानते थे। उनमें एकदेशीयता न थी। वे अपने प्रान्तों को स्वदेश, अपनी जाति को जाति और अपने घर को घर समझते थे। समस्त भारत और उसके निवासियों के प्रति भी कुछ उत्तरदायित्व रखते हैं, यह उन्होंने सोचा भी नहीं। अन्ततः इस लावारिस माल को सँभालकर रखने का कष्ट करना पड़ा—एक विदेशी गोरी जाति को!!

———

(२४)

भारतवर्ष की देशीय एकता

अँग्रेजी स्कूलों के भूगोलों में बच्चों को प्राय: यह बात पढ़ाई जाती है, कि भारतवर्ष एक देश नहीं, किन्तु कई देशों का समूह है। अधिक विदेशी विद्वान् भारतवर्ष को एक महाद्वीप मान बैठे हैं।

भारतवर्ष में एक-देशीय भौगोलिकता में सन्देह करने का कारण उसका इतना बड़ा विस्तार ही है। भारत का विस्तार उत्तर से दक्षिण तक २००० मील से अधिक और पश्चिम से पूर्व कोई १६०० मील के लगभग है। पृथ्वी के इतने बड़े टुकड़े को सहसा एक देश मानने को बुद्धि तैयार नहीं होती। भारत का क्षेत्रफल सारे योरोप के क्षेत्रफल के दो तिहाई के बराबर है। हमारा भारत ग्रेट-ब्रिटेन से १४ गुना और फ्रान्स या जर्मनी से ६ गुना बड़ा है। इसी विस्तार के कारण लोग भारतवर्ष को अनेक देशों का समूह मानते हैं। सतह भी इसकी सम नहीं;—कहीं गगन-भेदी पर्वत, कहीं समुद्र-तल और कहीं ऊँची-नीची भूमि। यही दशा जल-वायु की भी है। कहीं शीत की अधिकता है, कहीं गर्मी को। जल-वृष्टि का भी यही हाल है। यदि चेरापूँजी में ४६० इञ्च वृष्टि हो, तो ऊपरी सिंध में पानी का कहीं नाम-निशान भी नहीं। धरातल में विषमता और जलवायु में समानता न होने से पशु-पक्षी भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। रंग-बिरंगे पक्षी, जैसे यहाँ देखने में आते हैं—वैसे, और देशों में बहुत कम दिखाई देते हैं। इन सब बातों का प्रभाव भारतवर्ष की वानस्पतिक उपज पर भी पड़ा है, जिसका फल यह हुआ है कि मनुष्य के लिये जो पदार्थ आवश्यक हैं, वे सभी यहाँ होते हैं। सब से बढ़कर भिन्नता भारतवर्ष के मनुष्यों में है। संसार की जन-संख्या का पाँचवाँ भाग भारत में पाया जाता है। इस जन-

समुदाय में न-जाने कितनी भाषाएँ और न-जाने कितनी रस्म-रिवाजें प्रचलित हैं। शरीर की आकृति के विचार से भी भारतवर्ष में सात प्रकार के मनुष्य रहते हैं। बोली की भिन्नता का तो कहना ही क्या है? यदि मतों की तरफ दृष्टि डाली जाय, तो यही जान पड़ता है कि संसार-भर के मतों और धर्मों का बाज़ार भारतवर्ष है।

इस दशा में यदि किसी को भारतवर्ष की एक-देशीयता में सन्देह हो, तो आश्चर्य ही क्या है?

इतना होने पर भी मिस्टर यूसुफ़अली, ई० ए गेट, तथा बीसेण्ट ए० स्मिथ आदि इतिहासज्ञों का मत है कि भारतवर्ष एक ही देश है। प्राचीन विद्वानों ने भी भारतवर्ष को एक देश माना था। प्रथम तो 'भारत-वर्ष' नाम ही से इस देश की एकता का अनुभव होता है। भारत में सिंधु-नद होने के कारण ईरानियों ने इसका नाम—'सिंधुस्थान' या 'हिन्दुस्थान' रख लिया था। ग्रीस-निवासियों ने इण्डस (Indus) से इण्डिया बनाया। इन सब नामों में 'भारतवर्ष' नाम में एक ख़ास महत्व है। जब कोई भिन्न-भिन्न वस्तुओं के समूह का एकत्र वर्गीकरण करता है, तब वह उन्हें भेद होने पर किसी एक प्रधान सूत्र से अवश्य बाँधता है। तत्कालीन विद्वानों ने भी सम्राट् 'भरत' के नाम पर 'भारतवर्ष' नाम रक्खा; जैसे रोमुलस (Romulas) राजा के नाम पर रोम का नाम निर्देश हुआ। यह वह समय था, जब किरात, हूण, यवन—आदि देशों पर भारत का अधिकार था।

अब ऋगवेद के एक मन्त्र को पढ़ियेगा—

"इमं मे गङ्गे-यमुने-सरस्वती -
शुतुद्रि-स्तोमं सचता परुष्णया।
असि कन्या मरुद्वृधे वित स्तयार्जी कीये
श्रृणुह्या सुषोमया।"

क्या इस मन्त्र में भारतवर्ष-व्यापिनी नदियों का पाठ करने से समग्र भारतवर्ष का चित्र आँखों में व्याप्त नहीं हो जाता? क्या मातृ-भूमि की

एक स्निग्ध विस्तृत मूर्ति मन में नहीं भासित होने लगती ? ऋग्वेद के समय का भारत इतना ही भारत था, कि उत्तर में हिमालय, पश्चिम में सुलेमान पर्वत, दक्षिण में समुद्र, पूर्व में गङ्गा। यह आजकल के भूगोल से उत्तर-भारत है। यही आर्यवर्त्त था ; मनु ने भी आर्यवर्त की यही भौगोलिकता लिखी है।

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वाया समुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्य्यो शर्य्या वर्त्तं विदुर्बुधाः ॥"

अमर-कोष भी ऐसी परिभाषा है :—

"आर्यवर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्य हिमालयोः।"

ऐसा मालूम होता है कि जैसे-जैसे आर्य-सभ्यता दक्षिण की ओर बढ़ती गई, वैसे-वैसे भौगोलिक परिभाषा भी बदलती गई। रामायण में हमें दक्षिण का वर्णन् दण्डकारण्य तक मिलता है। परन्तु राम ने लंका तक जाने और उसे विजय करने का दुर्धर्ष पराक्रम किया। रामायण से यह बात तो स्पष्ट होती है कि राम को दक्षिण में एक भी आर्य-जाति का आदमी नहीं मिला। राम का अद्भुत व्यक्तित्व कहना चाहिये कि उन्होंने वानर और ऋक्ष्य-जाति के अनार्यों को अपना ऐसा मित्र और भक्त बना लिया, और ऐसा विकट कार्य-साधन किया। महाभारत में लिखा है कि सहदेव ने पाण्ड्य, द्रविड़, उड्र, केरल, आन्ध्र-आदि देशों को विजय किया था। भीष्म-पर्व में दो सौ नदियों की सूची दी हुई है। उनमें दक्षिण की प्रायः सभी नदियों का ज़िक्र है। वन-पर्व में जिन वनों का वर्णन् है, उनमें दक्षिण के प्रायः सभी वनों का ज़िक्र आगया है, जिनमें अगस्त्य, वरुण, ताम्रपर्णी, कावेरी और कन्या-तीर्थों का वर्णन् है। यह कन्या-तीर्थ अवश्य कन्या-कुमारी होगा।

भीष्म-पर्व में एक और महत्त्वपूर्ण बात लिखी है। वहाँ देश का आकार सम-त्रिकोण-सदृश लिखा है। यह सम-त्रिकोण चार छोटे-छोटे सम-त्रिकोणों में विभक्त किया है। इस सम-त्रिकोण की शिखा कन्या-कुमारी से और आधार हिमालय पर्वत माना है। कनिंघम साहब लिखते हैं कि

यदि पश्चिमोत्तर दिशा में भारत का विस्तार ग़ज़नी तक माना जाय, और इस त्रिकोण का एक बिन्दु कन्या।-कुमारी और दूसरा आसाम समझा जाय, तो भीष्म-पर्व का भारत का त्रिकोण बन जाय।

पुराणों में वर्णित नवखण्ड और बृहत् संहिता में बाराह मिहिर के लखे हुए देश के और नौ विभागों से भी प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में देश का सम्पूर्ण ज्ञान मनुष्यों को था। कालिदास ने मेघदूत में रामगिरि से अलकापुरी तक अत्यन्त सुन्दर भौगोलिक वर्णन् किया है।

धीरे-धीरे आर्यवर्त्त में दक्षिणापथ भी पौराणिक काल में शामिल हो-गया—देखिये—

'गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति !
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन सन्निधं कुरु।'

यह श्लोक पुण्यः-हिन्दू स्नान करती बार पढ़ा करते हैं। इस श्लोक में मानों समस्त देश लिपटा हुआ है। एक और महत्वपूर्ण श्लोक मिलता है, जिसमें देश को सात कुलपर्वतों का देश माना गया है।

'महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्ति मानव पर्वतः।
विन्ध्यश्च पारिपत्रश्च सप्तै ते कुल पर्वताः॥

एक श्लोक में सर्व भारतवर्ष के तीर्थों के ज़िक्र हैं:—

'अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची अवन्तिका।
पुरी, द्वारावती चैव, सप्तैता मोक्षदायिकाः॥'

यह भारत के सात प्रधान नगरों की सूची है। इन स्थानों की यात्रा करना हिन्दुओं का धर्म कहा गया है, और इनकी यात्रा करना मानो समस्त भारत का भ्रमण करना है।

श्री शंकराचार्य के चारों मठ भारत के चारों कोनों पर प्रतिष्ठित हैं। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इससे कैसी सार्वदेशिक एकता उत्पन्न होती है। पुराणों के और श्लोक सुनिये—

सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्री शैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालं ओंकारं अमरेश्वरे॥

केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीम शंकरम् ।
वाराणस्याञ्च विश्वेशं त्र्यम्बक गौतमी तटे ॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं द्वारिका वने ।
सेतु-बन्धे च रामेशं घुश्मे शञ्च शिवालये ॥
एतानि ज्योति लिङ्गानि सायं-प्रातः पठेतरः ।
सप्त जन्म कृतं पापं स्मरणे न विनश्यति ॥

इन श्लोकों से सहसा मन में यह बात पैदा होती है, कि आजकल जगह-जगह के मुहानों पर अँगरेज़ों ने मोर्चे बाँधकर जैसे क़िले बनाये हैं, उसी तरह प्राचीन विद्वानों ने इस तरह मन्दिर और तीर्थों की प्रतिष्ठा करके विस्तृत देश का महान् एकीकरण किया था। प्राचीन साहित्य में देश-प्रेम और देश-भक्ति के कैसे ज्वलंत भाव हैं—सुनिये।

तं देव निर्मितं देशं ब्रह्मवर्त्त प्रचक्षते ।

... ...

गायन्ति देवाः किल गीत कानि ।
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे ।
स्वर्गापि वर्गास्पद मार्ग भूते ।
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।
जानीय नैतत क्व वयं विलीने ।
स्वर्ग प्रदे कर्म्मणि देह बन्धम् ।
प्राप्स्याम् धन्याः खलु ते मनुष्या ।
ये भारते नेन्द्रिय विप्र हीनाः ।

... ...

जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी ।

इन तीर्थ-यात्राओं से भौगोलिक ज्ञान बढ़ता था। तीर्थ-दर्शनों से भिन्न-भिन्न स्थानों की कला-कुशलता का ज्ञान प्राप्त होता था। सत्संग से ज्ञान-वृद्धि होती थी। केदारनाथ जाते हुए हिमालय के स्वर्गीय पुष्पों का आनन्द आता था। जगन्नाथजी पहुँचने पर समुद्र की तरंगों का स्वाद

मिलता था। प्रयाग में गंगा-यमुना का संगम दृष्टिगोचर होता था। ग़रज़ भारत का एक भी सौन्दर्य-पूर्ण स्थान ऐसा नहीं बचा, जहाँ कोई तीर्थ या देव-मन्दिर न हो। भारत का नैसर्गिक सौन्दर्य भोग-विलास के लिये नहीं, मन और आत्मा को उच्च बनाने के लिये है। यदि निआगरा का जल-प्रपात कहीं भारत के अन्तर्गत होता, तो वहाँ फैशनेबल हवा-ख़ोरों की जगह धार्मिक यात्री दिखाई देते, पार्कों की जगह आश्रम और होटलों की जगह देव-मन्दिर दिखाई देते।

महाभारत में दी हुई तीर्थ सूची देश-भर के अनेक प्रसिद्ध नगरों की सूची है। पौराणिक काल में जो अभिप्राय तीर्थों से सिद्ध होता था—बौद्ध-काल में वही अभिप्राय चैत्य, स्तूप और विहारों से सिद्ध हुआ, पौराणिक प्राचीन मन्दिरों की तरह यह स्थान भी तत्कालीन शिल्प-निर्माण-कला के साक्षी हैं। चीन, लंका और यूनान तक के यात्री इन्हें देखने भारतवर्ष में आते थे।

इन सब बातों से पाठक समझ गये होंगे, कि प्राचीन समय में हिन्दू बुजुर्गों ने किस कौशल और दूरदर्शिता से विस्तृत भारत की एकदेशीयता को क़ायम रक्खा था, और वे एकदेशीयता के कितने क़ायल थे। यद्यपि देश का आकार धीरे-धीरे बढ़ा है; क्योंकि ऋगवेद और मनु के उद्धरणों से केवल उत्तर-भारत का ज़िक्र है। विन्ध्याचल से आगे उस समय आर्य लोग नहीं पहुँचे थे। आधुनिक विद्वानों की खोज के आधार पर पाणिनि का जन्म यदि मसीह से ७०० वर्ष पूर्व माना जाय, तो भी हम कह सकते हैं कि उन्होंने भी दक्षिण में केवल अवन्ति, कौशल, करूश और कलिंग ही देखे थे—या सुने थे। तत्कालीन पाली-साहित्य भी इसकी पुष्टि करता है। उसमें जो दक्षिणापथ का वर्णन् है—उससे यही पता लगता है, कि उस समय आर्य लोग दक्षिण में गोदावरी नदी ही तक पहुँचे थे। बौद्ध-ग्रन्थों में देश के राजनैतिक विभागों और प्रसिद्ध स्थानों की जो लम्बी सूची है, उनसे भी यही सिद्ध होता है कि बौद्ध-धर्म के कुछ बाद तक भी दक्षिण-भारत और लंका भरतखण्ड में शरीक न थे।

कात्यायन ने चोल, पाण्ड्य और माहिष्मती-नामक पच्छिणी राज्यों का वर्णन् किया है। ऐतिहासिक विद्वानों का मत है, कि कात्यायन नन्द-वंशीय राजाओं के समय में हुए हैं—जिनका काल ईसा से ४०० वर्ष पूर्व अनुमान किया जाता है। यूनानियों के प्रसिद्ध विजयी एलग्ज़ैण्डर ने भारत के भौगोलिक विद्वानों से देश का नक़शा तैयार कराया था, और देश का वर्णन् लिखवाया था। वह लेख—एलेग्ज़ैन्डर की मृत्यु पर सिल्यूकस के समय में पैट्रोक्लिस के हाथ पड़ा, और स्ट्राबो ने उसी के आधार पर देशों की माप की थी।

आर्य चाणक्य ने अपने प्रख्यात अर्थशास्त्र में उत्तरापथ और दक्षिणा-पथ का विवरण दिया है। उससे उस समय के भारत की आर्थिक दशा, कला-कौशल और व्यापार का पता लगता है। अशोक के शिला लेखों में भी चोल, पाण्ड्य, केरल, आन्ध्र-आदि राज्यों का उल्लेख है। राजकुमार महेन्द्र का लङ्का जाना और कुछ बौद्ध यात्रियों का चीन और मिश्र जाना भी इसका प्रमाण है। पातञ्जलि के महाभाष्य में वैदर्भ, काञ्जीपुर, केरल या मालाबार का ज़िक्र है!

यह हुई भौगोलिक और धार्मिक दृष्टि से एकता की बात। अब राज-नैतिक दृष्टि से इस बात को देखिये। यह बात कहने की ज़रूरत नहीं है कि राजनैतिक एकता का कितना महत्व भौगोलिक एकदेशीयता पर पड़ता है; क्योंकि उदाहरण के लिये अँगरेज़ी साम्राज्य का भारत में विस्तार का परिणाम सम्मुख है। प्राचीन काल में भी ऐसे ही बड़े—बड़े साम्राज्य क़ायम किये गये थे। ईसवी सन् से पूर्व अशोक का राज्य अफ़ग़ानिस्तान से मैसोर तक फैला हुआ था। चौथी शताब्दी में समुद्रगुप्त और उनसे प्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम का राज्य-विस्तार भी समस्त भारत को एकता के सूत्र में बाँधे हुए था। इसके बाद सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन, ग्यारहवीं में पृथ्वीराज और १६ वीं में अकबर और औरङ्गज़ेब ऐसे ही सम्राट् हुए हैं। वैदिक साहित्य में भी सम्राट्, अधिराज, राजाधिराज-आदि नाम देखने को मिलते हैं। शुक्र नीति में सामन्त, माण्डलिक, राजा, महाराजा, सम्राट्,

विराट और सार्वभौम-आदि शब्द अपने-अपने पद के सूचक मिलते हैं। अथर्व वेद में राज्य, स्वराज्य, साम्राज्य, वैराज्य और आधिपत्य शब्द मिलते हैं, जिनसे पता लगता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में विस्तृत साम्राज्य पद्धति रही है।

वैदिक यज्ञों के प्रकरण में बताया गया है कि राजसूय और वाजपेय-यज्ञ राजनैतिक उद्देश्यों से होते हैं। राजसूय से वाजपेय का महत्व अधिक था। यज्ञ की समाप्ति पर राजसूय से राजा का पद मिलता था, परन्तु वाजपेय से सम्राट् का पद मिलता था। सिंहासनारूढ़ होने पर 'सम्राड्यमस्तै'-'सम्राड्यमस्तै' की घोषणा होती थी, और फिर सम्राट् से निवेदन किया जाता था—

"इयं ते राडिति राज्य मेवास्मिन्ने तद् दधान्यथैन मासा दयति यन्तासी यमन इति यन्तार मेधन मे तद् यमन मासां प्रजानां करोति ध्रुवोऽसि धरुण इति ध्रुव से वैनमेतद् धरुणयस्मिल्लोके करोति कृष्यै त्वाक्षेमाय त्वारय्यै पोषाय त्वेति साधवे त्वेत्येवतेदाह।"

अर्थात्—यह आपका राज्य है। आप इसके स्वामी हैं। आप दृढ़ और स्थिर-वृत्ति हैं। कृषि, धन, धान्य प्रजा का पालन और रक्षा करने के लिये यह आपको समपर्ण किया जाता है।

ऐसे सम्राटों की सूची बनाई जा सकती है, जिनका ज़िक्र, वेद पुराण, और महाभारत में मिलता है। चाणक्य आर्य ने अपने अर्थ-शास्त्र में भी चक्रवर्तियों की एक सूची दी है, जिन्होंने राजनैतिक दृष्टियों से समस्त भारत को एक किया था, और चन्द्रगुप्त के विषय में तो उसने लिखा है—"हिम वत् समुद्रान्तरं—चक्रवर्ति क्षेत्रम्"

---

(२५)

हिन्दू-धर्म और समाज पर इस्लाम का प्रभाव

अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि जिस समय भारत में इस्लाम का प्रवेश हो रहा था, उस समय हिन्दू-समाज की क्या दशा थी।

७ वीं शताब्दी के मध्य में सम्राट् हर्षवर्धन की सत्ता समाप्त हुई, और शीघ्र-ही सारे भारत की शक्ति छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखर गई। पश्चिम से आगे बढ़कर राजपूतों ने उत्तर-पूर्व और मध्य-भारत में छोटी-छोटी अनेक रियासतें पैदा करलीं। कुछ मिश्रित जातियों ने भी अपने को राजपूत कहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार मुसलमानों के आक्रमण से प्रथम पञ्जाब से दक्षिण और बंगाल से अरब सागर तक लगभग समस्त प्रदेशों पर राजपूतों का अधिकार था। ये तमाम छोटी-छोटी रियासतें आपस में लगड़ती झगड़ती रहती थीं। परस्पर कोई मेल न था। न इनके ऊपर कोई एक बड़ी सत्ता थी। मगध, पाटलिपुत्र-आदि के साम्राज्य-चिन्ह खण्डहर होगये थे। वैशाली, कुशीनगर, कपिलवस्तु, श्रावस्ति-आदि प्रसिद्ध बौद्ध-नगर उजड़ गये थे। राजनीति और धार्मिक जीवन के साथ उस काल के हिन्दुओं का धार्मिक-जीवन भी छिन्न-भिन्न हो गया था। यही कारण था, कि बुद्ध की मृत्यु के लगभग ढाईसौ-वर्ष के अन्दर बौद्ध-धर्म ने उस जीर्ण-शीर्ण हिन्दू-धर्म को निकाल-बाहर कर दिया, और यद्यपि बौद्धों और हिन्दुओं में बड़े भारी युद्ध और विरोध हुए, पर दोनों धर्मों की दोनों धर्मों पर छाप पड़ी थी। हिन्दू-कर्म-काण्ड और बौद्ध-धर्म में आदि बौद्धों का-सा तत्व हिन्दुओं में घुसकर बैठ गया था। उत्तरी भारत में महायान सम्प्रदाय स्थापित हो चुका था, और बुद्ध के सिवा अनेक बोधि-सत्वों की, और विशेषकर अमिताय की पूजा होने लगी थी। बौद्ध-

मन्दिरों का कर्म-काण्ड हिंदू-मन्दिरों की पद्धति पर होने लगा था। बौद्ध-धर्म ने संस्कृत का माध्यम नष्ट कर पाली भाषा को अपने धर्म का माध्यम बनाया था, वह महायान सम्प्रदाय में फिर से संस्कृत को प्राप्त होगया था। ज्ञान का मार्ग कर्मकाण्ड और भक्ति ने ग्रहण कर लिया था। धीरे-धीरे वैष्णव, शैव और तन्त्र-सम्प्रदायों ने संगठन किया, और बौद्ध-मत को प्रबल धक्के से भारत से निकाल बाहर कर दिया। इस घटना के बाद हिन्दू-धर्म फिर से भारत में स्थापित हुआ—पर वह बहुत ही अपूर्ण और भ्रामक था। कुछ थोड़े से उच्च-श्रेणी के लोग उपनिषद् और दर्शन-शास्त्र के ज्ञाता बच रहे थे। पर अधिकांश पौराणिक गपोड़े और ढकोसलों की भरमार थी। जाति-भेद खूब ज़ोर से बढ़ रहा था। ब्राह्मण अत्यन्त प्रबल होगये थे। शूद्र दुखित हो रहे थे, और इस प्रकार भारत के सामूहिक जीवन का विकास असम्भव होगया था। पण्डों और पुरोहितों के असाधारण अधिकार थे। असंख्य देवी, देवता, मूर्त्ति, शक्ति, काली, भैरव, रुद्र, शिव का पूजन—जप-तप, यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ, ब्राह्मणों को दान, तीर्थ-यात्रा, मंत्र-तंत्र और आडम्बरमय कर्मकाण्ड को धर्म माना जा रहा था। जनता में अन्ध-विश्वास फैला था। छूआछूत का भूत सब के सिर पर सवार था। पाँचवीं शताब्दी के चीनी—यात्री फ़ाहियान ने काबुल से मथुरा तक महायान-सम्प्रदाय में देखा था। शेष भारत से भी बौद्ध-धर्म मिट चला था। इसके २०० वर्ष बाद ह्वैन-सांग ने उत्तर-भारत में महायान-सम्प्रदाय ज़ोर से फैला हुआ देखा था। उस समय उसने समस्त भारत में शिव की पूजा खूब विस्तार से देखी थी। अयोध्या के निकट उसने दुर्गा के सामने नर-बलि होती देखी थी। बंगाल के प्रसिद्ध सम्राट् अशोक ने—जो शैव था, बौद्धों के समस्त विहारों को तोड़-फोड़कर उनके स्थान पर शिव-मूर्ति की स्थापना की थी, और बौद्धों को या तो क़त्ल करा दिया जाता था, या अत्यन्त कष्ट और यातनाएँ देकर अपने राज्य से निकाल दिया था। ह्वैन-सांग ने नर-मुंड-माल गले में पहने कापालिक भी देखे थे। उसने शैव और बौद्ध ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और

मध्य-एशिया में सर्वत्र देखे थे। इसके सिवा अरब के प्रसिद्ध यात्री सुलेमान सौदागर मोहम्मद इब्ने इसहाक़ अलहीम, अलशहरस्तानी-इत्यादि के ग्रन्थों से भी उपरियुक्त बातों का समर्थन होता है। मदुरा के जैन-राजा ने जब शैव-प्रचारक तिरुज्ञान के उपदेश से जैन-धर्म तजकर शैव-धर्म ग्रहण किया—तब मदुरा की प्रजा के जैन-मत त्यागने से इनकार करने पर राजा ने सब को फाँसी पर लटका दिया। बौद्धों और जैनों के साथ इस प्रकार के अत्याचार बहुत स्थानों पर किये गये। यह परिस्थिति थी, जब हिन्दू-धर्म में अधिक विचारशील पुरुष पैदा हुए। शंकर, रामानुज, निम्बादित्य, बल्लभाचार्य आदि सन्तों ने दक्षिण-भारत में जन्म लिया, और हिन्दू-धर्म के संशोधित रूप का सन्देश जनता को सुनाना प्रारम्भ कर दिया। यह बात ख़ास तौर पर ध्यान देने योग्य है, कि आरम्भ से ईसा की ८ वीं शताब्दी तक समस्त धार्मिक और सामाजिक सुधार उत्तर-भारत में ही आरम्भ हुए। पर आठवीं शताब्दी के बाद यह स्थान दक्षिण को मिला, और यह बात १५ वीं शताब्दी तक क़ायम रही। रामानुज, शंकर, निम्बादित्य-आदि सभी दक्षिण-वासी थे।

इन सभी विद्वानों ने प्राचीन भारतीय शास्त्रों ही के आधार पर जनता की ज्ञान-पिपासा शान्त की, और उन्हें सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा की। शङ्कर को ही ले लीजिये।—उन्होंने अनेक सम्प्रदायों को अपने सिद्धान्तवाद के भीतर ले लिया, और सब की संगठित शक्ति को बौद्धों के विरुद्ध खड़ा कर दिया। इनकी भित्ति दार्शनिक था—और इसी कारण इन्होंने बौद्धों पर विजय प्राप्त की। तब बौद्धों को दार्शनिक ग्रन्थ रचने पड़े। उन्होंने सब वर्णों के लोकों को सन्यास-दीक्षा का अधिकारी घोषित किया। उन्होंने साफ़ कहा—"सच्चा तत्वदर्शी मेरा गुरु है—भले ही वह चाण्डाल हो।" वैष्णवों और शैव-आचार्यों ने शङ्कर का भारी विरोध किया, परन्तु शंकर की प्रखर प्रतिभा, तीव्र प्रवचन-शैली, और प्रकाण्ड दार्शनिक-ज्ञान ने सब के छक्के छुड़ा दिये।

रामानुज के भक्ति-मार्ग को दक्षिण से उत्तर भारत में लाने का श्रेय

रामानन्द स्वामी को है। रामानन्द ने विष्णु का स्थान राम को दिया, और प्रत्येक जाति के लोगों को अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित किया। तुलसीदास और कबीर उनके शिष्य थे। तुलसीदास ने राम का नाम घर-घर अमिट कर दिया।

अलबेरूनी लिखता है— कि शैव और वैष्णव-सम्प्रदायों के सिवा शनि, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, स्कन्ध, गणेश, यम, कुबेर-आदि की मूर्तियाँ भी भारत में पूजी जाती हैं। बौद्ध और जैनों ने मांस और मद्य का प्रचार बिल्कुल बन्द कर दिया है। परन्तु कापालिकों और शाक्तों ने इन चीज़ों को धर्म का प्रधान अङ्ग बना दिया है।

ऐसा समय था, जब भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ। यह हम बता चुके हैं कि अरब से योरप का सम्बन्ध इस्लाम के जन्म से पूर्व का है, और इस्लाम-धर्म के जन्म के बाद भी वह सम्बन्ध वैसा ही बना रहा— हम यह भी कह चुके हैं। उस समय बिना ही बल-प्रयोग इस्लाम के साधुओं ने लाखों हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया था। पाठक अब यह भली भाँति समझ गये होंगे कि इतनी आसानी से मुसलमान साधुओं ने जो हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया, इसके दो प्रधान कारण थे—एक यह कि उस समय भारत की सामाजिक और धार्मिक स्थिति अत्यन्त छिन्न-भिन्न और कमज़ोर थी; अपढ़ और दलित लोगों के लिये कोई स्थान ही न था। दूसरे—इस्लाम के साधुओं के रहन-सहन और विचारों पर बौद्धों और हिन्दू-दार्शनिकों का प्रभाव पड़ा था, और वे तत्कालीन हिन्दू-दलितों के लिये अति अनुकूल और प्रिय थे। यही कारण था कि समस्त भारत में इस्लाम का प्रचार बेरोक फैल गया था, और लाखों मनुष्य मुसलमान होगये थे, जिनमें अधिक संख्या उन छोटी जातिवालों की थी—जो, वर्ण-व्यवस्था और जात-पाँत के कारण अत्यन्त तिरस्कृत थे।

हम बता चुके हैं कि ब्राह्मणों के अधिकार और शक्तियाँ बेतोल थीं। भारत की सम्पत्ति मन्दिरों में झुकी पड़ी थी, और वे जिस भाँति अछूतों से घृणा करते थे, उसी भाँति नव-मुसलिमों से भी। इन घमण्डी ब्राह्मणों

और उच्च जाति के हिन्दुओं पर तब क़हर पड़ा—जब इस्लाम नंगी तलवार लेकर बलपूर्वक भारत में घुसा। मन्दिर तोड़े गये, मूर्तियाँ भ्रष्ट की गईं, ख़ज़ाने लूट लिये गये, और लाखों कुलीन ब्राह्मण दास बनाकर ग़ज़्नी में ले जाकर बेच दिये गये। इस प्रकार १३ वीं शताब्दी के अन्त से १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भारत में तलवार का राज्य रहा।

परन्तु ज्योंही इस्लाम के साम्राज्य स्थापित होगये, बादशाहों ने दिल्ली और आगरे में राजधानियाँ बनाईं। तब समाज में एक भीतरी क्रान्ति प्रारम्भ हुई। भारत के शिल्प, वाणिज्य, कला-कौशल, चित्रकला विज्ञान, वस्तु शास्त्र-आदि पर इस्लाम के इन अनुयायियों की गहरी छाप पड़ी।

सिन्ध पर ८ वीं शताब्दी में मुहम्मद बिन क़ासिम ने आक्रमण किया। इसके ३०० वर्ष बाद महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण हुए। इन हमलों का कोई स्थायी प्रभाव भारत पर न था। १०० वर्ष बाद मुहम्मद ग़ोरी ने भारत पर आक्रमण किया, और उसके आक्रमणों का प्रभाव पंजाब में स्थाई होने लगा। उस समय तक भारत की राजनैतिक अव्यवस्था हद दर्जे तक पहुँची हुई थी। अन्त में १३ वीं शताब्दी में उत्तर-भारत पर मुसलमानों का राज्य स्थिर होगया। इसके सौ वर्ष के अन्दर मैसूर तक अधिकांश भारत पर मुसलमानों का अधिकार फैल गया।

इससे, इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत की जातीयता को भारी धक्का लगा। पर मुसलमान भारत में बस गये, और पहले लोगों के परिश्रम से उन्हें इस काम में अधिक कठिनाई न उठानी पड़ी। वे एक ही पीढ़ी में भारतीय बन गये, और उनकी संस्कृति का प्रवेश भारतीय संस्कृति पर भी होने लगा।

सच्चे सम्राट् की भाँति मुग़लों ने भारत में राज्य किया। मुग़लों की राज्य-श्री बहुत बढ़ी-चढ़ी रही। यदि यह कहा जाय, कि उस समय पृथ्वी-भर में कोई सम्राट् मुग़लों से अधिक प्रतापी न था, तो अत्युक्ति नहीं।

ईसा की आठवीं शताब्दी तक भारत की स्थापत्य-कला पर बौद्धों

की संस्कृति थी। ८ वीं से १२ वीं शताब्दी तक इस कला में हिंदुओं के आदर्शों की प्रधानता रही। फिर भी बौद्ध-मत का प्रभाव इस पर स्पष्ट दीख पड़ता रहा। यह बात निर्विवाद है कि प्रत्येक देश की स्थापत्य-कला पर उस देश की भौगोलिक स्थिति का प्रभाव पड़ता रहता है। भारत अभेद्य जंगलों, प्रचण्ड ऋतुओं, बड़ी-बड़ी नदियों, पहाड़ों और घनी उपज का देश है। इसी कारण सदा से भारतीय स्थापत्य-कला की स्थूलता और विस्तार पर अधिक ज़ोर डाला जाता रहा है। भारतीय जंगलों में विविध वनस्पति देखने को मिलती हैं। इसीलिए प्राचीन शिल्प-कला में लता-गुल्म के विविध कढ़ाव आपको देखने को मिलेंगे।

प्राचीन हिन्दू-मन्दिरों में समानता लिए हुए कङ्गूरे, कलश, आकाश तक उठे चले गए हैं, और एक इन्च स्थान भी मूर्तियों और चित्रों से ख़ाली नहीं।

अरब, भारत की प्राकृतिक परिस्थिति के बिलकुल ही विपरीत देश है। वहाँ जङ्गल, रेगिस्तान और उजाड़ मैदानों की भरमार है। तेज़ गर्मी, इने-गिने खाद्य-सामान, और रेत के भयानक पर्वत, इसी का प्रभाव मुसलमानों की प्रारम्भिक स्थापत्य-कला पर पड़ा है। साफ़-सादी दीवारें, ऊँची मीनारें, बड़े-बड़े गुम्बद, बड़े-बड़े चौक उसी का प्रभाव है। उनका एकेश्वरवाद और मूर्ति-विरोध भी उनके इस निर्माण में सहायक हुआ है।

परन्तु विज्ञ पाठक देखेंगे, कि भारत में मुसलमानों के बसते ही दोनों आदर्श मिल गये, और इस कला में एक तीसरी नवीनता, जो बहुत सुन्दर थी—पैदा होगई। आगरे का ताज इसी मिश्रित सौन्दर्य का फल है, जिस पर भारत को अभिमान है, और संसार-भर के यात्री जिसे देखकर आश्चर्य-चकित होते हैं। खोज करने से पता चलता है कि १३ वीं शताब्दी के प्रथम की भारतीय शिल्प-संस्कृति पृथक्-पृथक् थी। परन्तु इसके बाद दोनों में ऐसा मेल होगया कि वह एक नवीन ही वस्तु बन गई, और मिश्र, शाम, ईरान, तुर्किस्तान आदि की शिल्प-संस्कृति उनके मुक़ाबले में कुछ भी न रह गई। सोलहवीं सदी के बने हुए मथुरा और वृन्दावन के कुछ मन्दिर,

सोनागिरि के जैन-मन्दिर, विजयनगर की इमारतें और सत्रहवीं शताब्दी का बना हुआ मदुरा का तिरूमलाई नायक का प्रसिद्ध महल भी इसी मिश्रित शिल्प का प्रसाद है। सोलहवीं शताब्दी के लगभग राजपूतों ने छतरियाँ या समाधियाँ बनाने की परिपाटी चलाई, जो वास्तव में मुसलमानों से सीखी गई थी। इमारतों में महराब का उपयोग, गोल डाट की छतें मुस्लिम शिल्प-संस्कृति हैं। मुग़लों ने बाग़ लगाने की कला में भी विस्तार किया। काश्मीर का शालामार बाग़ मुग़ल-उद्यान-अभिरुचि का एक ज्वलन्त नमूना है।

चित्रकला में भी मुग़ल-बादशाहों ने भारी उन्नति की। सभी मुग़ल-बादशाहों ने हिन्दू, ईरानी, चीनी चित्रकार बड़ी-बड़ी तनख़्वाहों पर रखे, और उन्होंने एक-दूसरे की सहायता से अपनी कला को बहुत ही उन्नत किया। मुग़ल-काल की फ़ारसी लिपियों में जयपुर, ग्वालियर, गुजरात, काश्मीर-आदि देशों के अनेक चित्रकारों के चित्र हैं। उस समय दिल्ली और आगरे से उन्नत होकर चित्र-कला जयपुरा, चम्बू, चम्बा, काँगड़ा, लाहौर, अमृतसर और दक्षिण में तओर तक फैलती दिखाई देती थी। प्रो० जदुनाथ सरकार का कहना है—कि भारत में मुग़ल-काल में चित्र-कला की जो उन्नति हुई, वह असाधारण थी। राजपूताना और अन्य हिन्दू-राजदर्बारों में बादशाहों की अभिरुचि की नक़ल की जाती थी।

हम इस बात पर प्रकाश डालेंगे कि भारतीय संस्कृति पर मुसलमानों का नैतिक प्रभाव क्या पड़ा? सम्राट् हर्षवर्धन के बाद ७ वीं शताब्दी से १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक लगभग ६०० वर्ष के समय में भारत में कोई प्रधान शक्ति नहीं थी। समस्त देश छोटे-छोटे टुकड़ों में छिन्न-भिन्न था। यह हम पीछे कहीं कह भी आये हैं। वह समय भारत की अतिशय राजनैतिक दुर्बलता का था। इस कमी को मुग़लों ने १६ वीं सदी में सम्पूर्ण किया, और १८ वीं शताब्दी तक एक महान् साम्राज्य क़ायम कर दिया। यह मुग़ल-साम्राज्य राजनीति, सामाजिक व्यवस्था, उद्योग-धन्धे, कला-कौशल, समृद्धि, शिक्षा, और शासन—सभी दृष्टि से गौरवान्वित था।

मुग़ल-साम्राज्य से प्रथम सम्राट् अशोक और समुद्रगुप्त के राज्य-विस्तार भी असाधारण रहे। पर मुग़ल-साम्राज्य में इससे यह विशेषता रही, कि देश में एकछत्रता उत्पन्न होगई। प्रो० जदुनाथ सरकार लिखते हैं—

"······अकबर के सिंहासन पर बैठने के समय से मुहम्मदशाह की मृत्यु तक (१५५६—१७४८) मुग़ल-शासन के २०० वर्षों में समस्त उत्तरीय भारत और अधिकांश दक्षिण को भी एक सरकारी भाषा, एक शासन-पद्धति, एक-समान सिक्के, और हिन्दू-पुरोहितों और ग्रामीणों को छोड़कर जन-साधारण को एक भाषा प्रदान की। जिन प्रान्तों पर मुग़ल-दर्बार का दूर का प्रभाव था—अर्थात् जो मुग़ल-दर्बार से नियुक्त सूबेदार के आधीन था—चाहे वह हिन्दू-राज्य हो या मुस्लिम,—कम-अधिक मुग़लों की शासन-प्रणाली, सरकारी परिभाषाओं, दर्बारी शिष्टाचार, और उनके सिक्कों का अनुकरण करते थे।"

एक विद्वान् ने लिखा है—

"मुग़ल-साम्राज्य के अन्तर्गत २० सूबे थे, जिन पर एक-ही प्रणाली से शासन किया जाता था, और विविध सरकारी ओहदों के नाम तथा उपाधियाँ सब एक-समान थीं। तमाम सरकारी मिसलों, फ़रमानों, सनदों, माफ़ियों, राहदारी के परवानों, पत्रों और रसीदों में एक फ़ारसी भाषा का उपयोग किया जाता था। साम्राज्य-भर में एक-समान वज़न, एक-से मूल्य, एक-से नाम, और एक-सी धातु के सिक्के प्रचलित थे।"

मुग़ल-बादशाहों की प्रारम्भिक भाषा ईरानी थी। पर उन्होंने शीघ्र ही उर्दू-ज़बान को जन्म दिया, और उसे ज़बाने-हिन्दवी कहा। यह भाषा ख़ूब उन्नत हुई, और मुसलमानों की मातृभाषा बन गई। सिर्फ़ सरकारी काग़ज़ों में फ़ारसी का प्रयोग होता था। १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उर्दू-साहित्य की दृष्टि से भी एक ज़बर्दस्त भाषा बन गई। इस भाषा के अनेक प्रसिद्ध कवि हुए, जिनमें एक अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह भी थे।

उर्दू-भाषा की उत्पत्ति भी मुग़लों के काल में हुई। यदि आप इल-

वाई से मिठाइयाँ लें, तो गुलाबजामुन, बालूशाही, हलुआ, क़लाकन्द, नान-ख़ताई, बरफ़ी,-आदि अधिकांश नाम उर्दू दीख पड़ेंगे। वास्तव में इनका आविष्कार भी मुग़ल-काल में हुआ था। मुग़ल-राज्य में जब कोई नया सरदार चुना जाता था, तब बादशाह का वज़ीर उसे ये हिदायतें देता था—

"ख़्याल रखना कि कमज़ोरों पर बलवान अत्याचार न करने पावें। ज़ालिमों को दबाए रखना।"

उर्दू का अर्थ लश्कर है। बादशाही सेनाओं में, जहाँ अर्बी, तुर्क, ईरानी और हिन्दोस्तानी सिपाहियों की एक अजीब खिचड़ी पक रही थी—तब, उनके मुख से जो-जो अपनी भाषाएँ निकलती थीं, वे सब भी परस्पर मिल-मिलाकर एक खिचड़ी-भाषा होगई। इस भाषा का नाम उर्दू पड़ा। क्योंकि यह उर्दू (लश्कर) की भाषा थी। राजा टोडरमल ने इसे फ़ारसी-लिपि में लिपि-बद्ध किया; क्योंकि वह लिपि मुसलमान-बादशाह को प्रिय थी, और शाही भाषा की लिपि थी, साथ ही जल्दी और कम स्थान में लिखी जाती थी, और सब राज-कर्मचारी, जो मुसलमान थे—उससे परिचित थे।

परन्तु यह फ़ार्सी-लिपि हिन्दोस्तानी भाषा को ठीक-ठीक व्यक्त करने में असमर्थ थी। क्योंकि उसकी उसमें ·४ ध्वनियों का अभाव था, जैसे—भ, छ, थ, ध, म्ह, ख, ढ़, ध, फ, घ, ढ—आदि। इन ध्वनियों के लिए शब्द अरबी में न थे। पर जब ईरान में अरबी-लिपि आई, और ईरानियों ने उसे अपनी लिपि बनाया, तब उन्होंने बिन्दु चढ़ाकर चार नये संकेतों का काम चला दिया। उन्होंने अरबी के ب-ج-ذ अक्षरों में दो-दो बिन्दियाँ और ن की टेढ़ी रेखा कर, एक और टेढ़ी रेखा बढ़ाकर پ-چ-ژ-گ—चार अक्षरों की सृष्टि करली है। ب से ی तक ऐसे कई अक्षर हैं, जिनके भेद का ज्ञान नुक़्तों की न्यूनाधिक संख्या से होता है। अरबी वर्णमाला की रचना करती बार अरबों ने इस नियम पर भी ध्यान रक्खा, कि किसी एक ध्वनि का उच्चारण-स्थान खोज निकालने पर, उस ध्वनि के निकटवर्ती, स्थानों से उच्चारित न होनेवाली ध्वनियों के लिये नये-नये स्वतन्त्र-चिन्हों की सृष्टि न

करके उसी ध्वनि के उच्चारण-चिन्ह में थोड़ा फेर-फार कर दिया जाय। यह ठीक भी था, क्योंकि उच्चारण-स्थानों की निकटता के अनुसार उच्चारण-चिन्हों के स्वरूप में भी विशेष भिन्नता न रहना उचित है।

जब यह लिपि ईरान से भारतवर्ष में आई, तब वहाँवालों ने देखा कि ईरानियों के संशोधन करने पर भी इस लिपि में १५ ध्वनियों की कमी है। उन्होंने १४ ध्वनियाँ और जोड़ दीं। परन्तु जैसे ईरानियों ने एक-एक नुक़्ते की जगह दो-दो, चार-चार नुक़्ते लगाकर, काम चलाया—वैसा न करके ٥ से काम लिया। शेष ११ ध्वनियों को उन्होंने द्विमात्रिक बना लिया। अर्थात् इन ग्यारह चिन्हों में जो प्रथम से मौजूद थे, एक और जोड़ दिया। पर पीछे-से ये ध्वनियाँ एक-मात्रिक ही मानी गईं;—जैसाकि उर्दू-कविता से स्पष्ट होता है।

फिर भी जैसा चाहिये था, वैसा काम न चला। जिन्हें भ, फ़, ढ़ आदि के बोलने का अभ्यास था, वे ही इनका ठीक-ठीक उच्चारण कर सकते थे। परन्तु अरब और ईरानी लोगों ने, जिन्हें इन अक्षरों का अभ्यास न था, उसका अपने ढंग का एक विलक्षण ही उच्चारण शुरू कर दिया। उस पारिभाषिक ध्वनि का उन्होंने एक नियम भी बना लिया। उसी के अनुसार बनाये गये अरबी शब्दों के नाम अरबों ने अरब, और ईसाईयों ने मुफ़र्रस रख दिया। इस तरह अरबों ने ईरानियों और हिन्दुस्तानियों की और ईरानियों ने हिन्दुस्तानियों की विशेष ध्वनियों को अपने-अपने ढंग पर उच्चारण करना शुरू कर दिया।

इस संघर्षण का प्रभाव संस्कृत और हिन्दी-लिपि पर भी पड़ा। कुछ अरबी ध्वनियों का हिन्दी-लिपि में अभाव था। पर हिन्दी ने ईरानियों की तरह बिन्दी लगाकर ख़, ग़, ज़, फ़, क़, अ़ बना लिये, और मज़े में काम चलाया। फिर भी फ़ार्सी-लिपि ही उर्दू की लिपि रही। किन्तु उसमें जो हिन्दुस्तानी ध्वनियों का अभाव था—अब तक है। ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ष, त्र ज्ञ, ये अक्षर लिखने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। अलबेरूनी ने एक जगह लिखा है—“हमने हिन्दुओं के किसी शब्द का शुद्ध उच्चारण निर्धारित

करने के लिये उसे अनेक बार बड़ी सावधानी से लिखा—परन्तु जब उनके सम्मुख फिर उन्हें पढ़ा, तो वे उसे बड़ी मुश्किल-से पहचान सके।"

पाठक देखें, कि १८ ध्वनियों का अभाव जिसमें है, उस लिपि में कैसे संस्कृत-जैसी भाषा के शब्द लिखे जा सकते थे। जबकि आजकल भी, जब अरबी-लिपि को भारत में आये ८०० वर्ष होगये हैं—क्षत्रिय को 'कशतरिय' और क्षेम को 'कशेम' तथा सुश्रुत को—'सुकश्रुत' लिखा जाता है। साधारण लेख भी बहुधा भ्रान्तिपूर्ण लिखे जाते हैं। एक चिट्ठी में लिखा गया—"सेठजी अजमेर गये, बड़ी बही को भेज दो।" पढ़ा गया—"सेठजी आज मर गये, बड़ी बहू को भेज देना।" लिखा गया—"छुरी मारी थी।" पढ़ा गया—"छड़ी मारी थी।" लिखा गया—"साहब आते हैं, दो किश्ती तैयार रखना।" पढ़ा गया—"साहब आते हैं, तो कस्बी (वेश्या) तैयार रखना।"—इत्यादि प्रसिद्ध बातें हैं, और दस्तावेज़ों-आदि की बेईमानी तो सब जानते ही हैं।

मुग़लों ही के ज़माने में तुलसी और सूर ने, भूषण और गंग ने बिहारी और मतिराम ने अमर हिन्दी को रचनाएँ की थीं। वैष्णव लेखकों ने इसी काल में बंग-साहित्य में अमर ग्रन्थ लिखे। बंगाल के प्रसिद्ध लेखक दिनेशचन्द्र सेन लिखते हैं—

"बँगला-भाषा को साहित्य के पद तक पहुँचाने में कई प्रभावों ने काम किया है। इनमें निस्सन्देह सब से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव मुसलमानों का बंगाल-विजय है। यदि हिन्दू-राजा स्वाधीन बने रहते, तो बंगला-भाषा राजदरबारों तक शायद ही पहुँचती।" बंगाल के नवाबों ने रामायण व महाभारत का संस्कृत से बंगला में अनुवाद कराया था। बंगाल के नवाब नसीरशाह ने १४ हीं शताब्दी के प्रारम्भ में बँगला में महाभारत का अनुवाद कराया था। मैथिल कवि विद्यापति ने ग़यासुद्दीन और नसीरशाह की इस काम के लिये बहुत प्रशंसा की है। इसी बादशाह ने मलधर बसु को बहुत-सा रुपया देकर और गुनराजख़ाँ का ख़िताब देकर भागवत का बँगला में अनुवाद करवाया था। राजा कंस के उत्तराधिकारी मुसलमान

होगये थे—उन्होंने कृत्तिवास को पूरी सहायता देकर रामायण का अनुवाद बँगला में कराया था। हुसेनशाह के सेनापति परंगलख़ाँ ने कवीन्द्र परमेश्वर से महाभारत का एक और अनुवाद कराया था। एक मुसलमान नवाब ने मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावत का बँगला में अनुवाद कराया था। दिनेशचन्द्र लिखते हैं—"मुसलमान-बादशाहों और नवाबों ने बहुत-से संस्कृत और फ़ार्सी के ग्रन्थों का अपनी ओर से बँगला में अनुवाद कराया। × × × इसका अनुवाद हिन्दू-राजाओं ने किया, और अपने दर्बार में बंगाली कवियों की नियुक्ति की।"

दक्षिण में भी बहमनी बादशाहों ने ऐसा ही किया। आदिलशाही दफ़्तरों में मराठी भाषा का खूब उपयोग होता था, तथा मराठों को भरपूर बड़े-बड़े पद दिये जाते थे। कुतुबशाह स्वयं मराठी का उत्कृष्ट कवि और पण्डित था। फलतः मराठी भाषा में फ़ार्सी और हिन्दी-शब्दों की काफ़ी भरमार होगई। इसी प्रकार पंजाबी और सिन्धी भाषाओं में भी जीवन पड़ा। यदि देखा जाय, तो अनेक मुसलमान हिन्दी के उच्च-कोटि के कवि और अनेक हिन्दू उर्दू के उच्च-कोटि के कवि इसी मिश्रण से हुए, और हिन्दी, उर्दू, मराठी, पंजाबी, गुजराती, बँगला-आदि देशी भाषाओं में फ़ार्सी, तुर्की-शब्दों और मुहाविरों की भरमार ही इसका कारण है।

अकबर ने फ़ैज़ी की सहायता से अनेक महत्वपूर्ण संस्कृत-ग्रन्थों का फ़ारसी में अनुवाद कराया था, और दारा ने अनेक उपनिषदों और हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों को फ़ार्सी में अनुवादित कराया।

वैद्यक, ज्योतिष और गणित ने भी मुग़ल-राज्य में खूब ही उन्नति की। १८ वीं शताब्दी में जयसिंह महाराज ने हिन्दू-पंचाङ्गों का सुधार करने के लिये जयपुर, मथुरा, दिल्ली, और काशी में ज्योतिष-यन्त्रालय बनवाये, और अरबी के आलमजस्ती का संस्कृत में अनुवाद कराया। कीमियागिरी के बहुत-से नुस्ख़े, तेज़ाब, रसायन, क़ाग़ज़ बनाना, क़लई करना, चीनी मिट्टी का उपयोग मुसलमानों से भारत में प्रचलित हुए।

अभिप्राय यह कि शताब्दियों तक भारत में अराजकता रहने के बाद

मुग़लों के काल में देश में शिल्प, वाणिज्य, कला-कौशल बढ़े, और यह बात यहीं तक न रही, प्रत्युत हिन्दुओं के कट्टर-धर्म में भी भारी परिवर्तन हुए।

सम्राट् अकबर ने बड़े विवेक और सहनशीलता से भारतीय धर्मों और सामाजिक नियमों का अध्ययन किया, और उन्हें हृदयंगम किया। उसने संकीर्णता छोड़, एक नवीन धर्म को जन्म दिया। अँगरेज़ ग्रन्थकार वेल्स लिखता है—

"वह स्पष्ट एक ऐसा मनुष्य था, जो अपने साम्राज्य के अन्तर्गत परस्पर-विरोधी जातियों और श्रेणियों को एक प्रबल और संयुक्त राष्ट्र बना देने के लिये पैदा हुआ था।"

उसने दीनेइलाही, अथवा सार्वजनिक धर्म की नींव रखी। उसने सहस्रों वर्ष की पुरानी प्रथा को, जिसके अनुसार प्रत्येक विजेता युद्ध-क़ैदियों को ग़ुलाम बना लेता था, बन्द कर दिया, अनिच्छित वैधव्य, बाल-विवाह, सती प्रथा को रोकने की भारी चेष्टा की। पर उसने इस काम के लिये तलवार न उठाई। वह बे-अन्दाज़ धन दान करता और तीर्थ-यात्राएँ करता था। उसने हिन्दू-मुस्लिम विवाहों की मर्यादा डाली। अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी इस मार्ग पर पद बढ़ाया, और शाहजहाँ का काल मुग़ल-साम्राज्य का उन्नतकाल था।

इन सम्राटों के जीवन-काल में बहुत-से ऐसे साधु-सन्त हुए—जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता को धार्मिक रूप दिया। इनमें एक कबीर थे। सुना जाता है, वे किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, और एक मुसलमान जुलाहे ने उन्हें पाला था। ये रामानन्द स्वामी के शिष्य थे। इन्होंने बनारस में अपना सत्संग शुरू किया, और हज़ारों शिष्य पैदा किये; जो, नीच-ऊँच, हिन्दू-मुसलमान दोनों थे। वे जन्म-भर जुलाहे का काम करते रहे। कबीर ज़ात-पाँत के विरोधी, वेदों-शास्त्रों और कुरान सभी को गौण माननेवाले—सूफ़ी साधु के समान भक्ति के संत थे। उन्होंने अपनी रमैनी (साखी) के ज़रिये हिन्दू-मुसलमान दोनों को समान धर्मोपदेश दिया, और निर्भय ही दोनों मतों की रूढ़ियों का खण्डन किया,—तथा प्राणि-

मात्र में प्रेम, भक्ति, और एक-ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया। कबीर का मत इस पद्य में सुनिये—

हिन्दु कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेले माँहि ॥

कबीर के विचारों की छाप अकबर पर काफ़ी पड़ी थी, और अकबर के दीने-इलाही मत चलाने की भित्ति कबीर के ही सिद्धान्त हैं। कबीर के भी विचार उनके शिष्यों-द्वारा उत्तर से दक्षिण तक फैल गये।

यहाँ स्मरण रखने योग्य बात यह है कि १४ वीं शताब्दी में समस्त पंजाब के नगर और ग्राम मुसलमान सूफ़ियों और फ़क़ीरों से भरे हुए थे। पानीपत, सरहिन्द, पाकपट्टन, मुलतान और कच्छ में प्रसिद्ध सूफ़ी शेख़ों की ख़ूब भरमार थी। १५ वीं शताब्दी के मध्य में नानक का जन्म हुआ, और इन्हें फ़ारसी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में शिक्षा दी गई। ३० वर्ष की आयु में वे साधु हुए, और अपने मुसलमान शिष्य मर्दान को लेकर भारत, लङ्का, ईरान, अरब-आदि देशों में भ्रमण करने गये। उन्होंने पानीपत के शेख़ शरफ़ मुलतान के मीर, बाबा फ़रीद के शिष्य शेख़ इब्राहीम के साथ बहुत काल तक विचार-विनिमय किया। अन्त में उन्होंने एक नये धर्म को जन्म दिया, जो आजकल सिख-धर्म कहाता है। यह धर्म एकता और प्रेम का धर्म था, जो हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिये खुला था। नानक का कथन है—

बन्दे एक खुदाय दे, हिन्दु-मुसलमान।
दावा राम-रसूल कर, लड़दे बेईमान ॥

× × ×

ना हम हिन्दु ना मुसलमान।
दोनों बीच बसे शैतान ॥
एकै एकी, एक सुभान ॥
गुरुजी कहिया सुन अब्दुररहमान ॥
दावा-भूलो तों इकक पिछाण ॥

नानक ने गंगा-स्नान, पूजा, जप, तप, पाठ सभी व्यर्थ बताए हैं, वेद-पुराणों को निरर्थक कहा है, अवतार और प्रतिमा खण्डन किया है, जाति-भेद का विरोध किया।

अपने एक पद में वे कहते हैं—

"दया की मस्जिद बना, सचाई को मुल्ला बना, इन्साफ़ को कुरान् बना, विनय को ख़तना समझ, सुजनता का रोज़ा रख, तब तू सच्चा मुसलमान होगा।"

मुग़ल-साम्राज्य की अन्तिम परिस्थिति में नानक के सम्प्रदाय बहुत उलट-पलट गये।

इनके अतिरिक्त धन्ना-जाट, पीपा, सेना नाई और रैदास चमार-आदि सन्तों ने भी बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। इन सब के सिद्धान्त भी इसी भाँति के थे।

दादू कबीर के शिष्य थे। इन्होंने भी अपने धर्म का प्रचार किया। वह कहता है—

"दादू का शरीर उसकी मस्जिद है। जमात के पन्च उसके मन के अन्दर हैं। वहीं पर उनका मुल्ला इमाम है। अलक ईश्वर को सामने खड़ी करके वहीं पर वह सिजदा करता है, और सलाम करता है।"

मलूकदास भी १६ वीं शताब्दी के अन्त में हुए, और १०८ वर्ष की आयु में मरे। नैपाल और काबुल तक में उन्होंने मठ स्थापित किये। इनका मत भी उपर्युक्त सन्तों के समान था—जो, हिन्दू-मुस्लिम दोनों की कट्टरता का विरोधी था। इनका कहना है—

माला कहाँ औ कहाँ तसबीह,
अपचेत इनहिं कर, टेक न टेकैं।
काफ़िर कौन मलेच्छ कहावत,
सन्ध्या-निमाज़ समय करि देखै।
है जमराज कहाँ जमरील है,
क़ाज़ी है आप हिसाब के लेखै॥

पाप और पुण्य जमाकर बूझता,
 देत हिसाब कहाँ धरि फेंकै।
दास मलूक कहा भरमौ तुम,
 राम-रहीम कहावत एकै ॥

सत्तनामी सम्प्रदायों के गुरु वीरभानु दादू के समकालीन थे, और उनका मत भी वैसा ही है।

इन सभी सम्प्रदायों और साधुओं का जन्म हिन्दू-मुस्लिम-एकता के संघर्ष से हुआ, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। ऊपर जिन सन्तों का ज़िक्र हम कर चुके हैं—उनके सिवा बाबालाल, प्राणनाथ, धरनीदास, जगजीवनदास, कुल्लासाहेब, केशव, चरनदास, सहजो, दयाबाई, ग़रीबदास, शिवनारायण, रामचरण-आदि के उपदेश भी इसी भाँति के हैं।

स्वामी नारायण के मज़हब को मुगल-बादशाह मुहम्मदशाह ने स्वीकार किया था। बादशाह का दस्तख़ती परवाना अभी तक इस सम्प्रदाय के मुख्य मठ (बलिया ज़िले) में मौजूद है। अठारहवीं सदी के अन्त में सहजानन्द, दुलनदास, भीखा, पलटूदास-आदि सन्तों के नाम और उनके सिद्धान्त वैसे ही हैं।

बङ्गाल, महाराष्ट्र में भी इस धार्मिक क्रान्ति का प्रभाव पाया जाता है। बारहवीं शताब्दी में ही बंगाल में मुसलमानों की दरगाहों पर मिठा चढ़ाना, कुरान पढ़ना, और मुसलमानों के त्यौहार मनाना—इसी प्रकार मुसलमानों के हिन्दू त्यौहारों का मनाना भी शुरू होगया था। और एक नए देवता—सत्यपीर—की पूजा भी शुरू होगई थी, जिसकी स्थापना गौड़-सम्राट् हुसेनशाह ने की थी। १५ वीं शताब्दी के अन्त में चैतन्य-प्रभु का जन्म हुआ। उस समय की बंगाल की सामाजिक दशा का वर्णन दिनेशचन्द्र सेन ने इस भाँति किया है —

"ब्राह्मणों का प्रभुत्व अति कष्टकर होगया था। कुलीनता के दृढ होने के साथ-ही जाति-भेद अधिकाधिक बढ़ा होता गया। ब्राह्मण लोग कहने के लिये अपने धर्मों में उच्चादर्शों का प्रतिपादन करते थे। किन्तु जाति-बन्धन

के कारण मनुष्य में अन्तर बढ़ता जा रहा था। नीची जातियों के लोग ऊँची जाति के लोगों के स्वेच्छाचार के नीचे आहें भर रहे थे। इन ऊँची जाति के लोगों ने नीची जातिवालों के लिये विद्या के द्वार बन्द कर रक्खे थे। उन्हें उच्च-जीवन में प्रवेश करने की मनाही थी, और नये पौराणिक-धर्म पर ब्राह्मणों का ठेका होगया था—मानो वह कोई बाज़ारू चीज़ थी।"

चैतन्य ने इस पर गम्भीर विचार किया। उन्होंने मुसलमान-साधुओं से एकेश्वरवाद के तत्व समझे और गुरु-भक्ति और सेवा के उपदेश दिये। सब कर्म-काण्डों को उसने त्याज्य बताया, और हिन्दू-मुसलमान, नीच-ऊँच सभी को दीक्षा दी।।

चैतन्य के शिष्यों में कार्तबाबा-नामक एक मुसलमान-साधु ने कार्त-भज सम्प्रदाय चलाया। इनके २२ शिष्य 'बाइस फ़क़ीर' के नाम से प्रसिद्ध थे, जिनका मुखिया रामादुलाल था। इस मत के लोग एक ईश्वर को मानते थे, गुरु को ईश्वर का अवतार समझते थे, दिन में ५ बार गुरु-मन्त्र का जप करते थे, मद्य-मांस से परहेज़ करते थे, जात-पाँत, ऊँच-नीच, हिन्दू-मुसलमान-ईसाई का उनमें भेद न था! सम्प्रदाय के सब लोग साथ मिलकर भोजन करते थे।

बौद्धों के अन्तिम दिनों में,जब बौद्धों के ऊपर शैवों के अत्याचार होते थे—तब बौद्धों को मुसलमानों से बहुत सहायता मिली थी। तत्कालीन बँगला-बौद्ध-ग्रन्थों में ब्राह्मणों के प्रति तिरस्कार और मुसलमानों के प्रति सम्मान के भाव भरे पड़े हैं।

महाराष्ट्र की तत्कालीन समाज-पद्धति पर प्रसिद्ध महाराष्ट्र विद्वान् महादेव गोविन्द रानाडे इस भाँति प्रकाश डालते हैं।—

"इस्लाम का कठोर एकेश्वरवाद कबीर, नानक-आदि साधुओं के चित्तों में घर कर गया। हिन्दू त्रिमूर्ति-दत्तात्रेय के उपासक उनकी मूर्ति को मुसलमान फ़क़ीर के-से कपड़े पहनाते थे। यही प्रभाव महाराष्ट्र की जनता के चित्तों पर और भी अधिक ज़ोरों से काम कर रहा था। वहाँ पर ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों के प्रचारक लोगों को उपदेश दे रहे थे कि—राम और

रहीम को एक समझो, कर्मकाण्ड और जाति-भेद के बन्धनों को तोड़ दो, ईश्वर में विश्वास और मनुष्य-मात्र के साथ प्रेम से मिलकर सब अपना एक धर्म बनाओ।"

इस प्रकार के उपदेश देनेवाला महाराष्ट्र में पहला साधु-नामदेव हुआ। नामदेव का गुरु खेचर था। उसका कहना था—"पत्थर का देवता कभी नहीं बोलता, तो वह हमारे ऐहिक दुःखों को कैसे दूर कर सकता है? पत्थर की मूर्ति को लोग ईश्वर समझ बैठते हैं। किन्तु सच्चा ईश्वर बिलकुल दूसरा ही है। यदि पत्थर का देवता हमारी इच्छा-पूर्ति कर सकता है—तो गिरने पर वह टूटता क्यों? जो लोग पत्थर के देवता की पूजा करते हैं, वे अपनी मूर्खता से सब-कुछ खो बैठते हैं।"

नामदेव के शिष्यों में मुसलमान, अहीर, कुरमी, स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण, मराठा, दर्ज़ी, कुम्हार, भंगी, चमार, ढेढ़ और वेश्याएँ तक थीं।

बहिराम भट्ट, दो दफ़े हिन्दू से, मुसलमान और मुसलमान से हिन्दू हुआ, उसने कहा—"न मैं हिन्दू हूँ, और न मुसलमान।"

शेख़ मुहम्मद के अनुयायी मक्का और पण्ढरपुर के मन्दिर दोनों की यात्रा करते, रोज़े और एकादसी-व्रत रखते थे। सन्त तुकाराम भी ऐसे ही साधु थे। उन सन्तों के नवीन विचारों से जो बौद्ध और मुसलमानों के सम्मिश्रण से पैदा हुए थे—मराठी-साहित्य उत्पन्न हुआ। जाति-बन्धन ढीला हुआ, स्त्रियों का पद ऊँचा हुआ। उदारता और दयालुता फैली। इस्लाम के साथ हिन्दू-मत का मेल हुआ। कर्मकाण्ड, तीर्थ-आदि का महत्त्व घटा, और सब ओर से राष्ट्रीय समता की वृद्धि हुई।

परन्तु दारा के पतन और और औरङ्गज़ेब के उदय के साथ-ही मुग़ल-साम्राज्य का सौभाग्य नष्ट हुआ। दारा अपने पिता का सच्चा प्रतिनिधि था। उसके विचार बहुत उत्तम थे। औरंगज़ेब ने धार्मिक संकीर्णता को अपनी राजनीति बनाया, जिससे चिढ़ कर बहुत-से राजपूत, मराठे, सिख-राजे उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। सम्पूर्ण देश ही विरोधी शक्तियों में उठ खड़ा हुआ, और हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की सम्भावना हवा होगई। औरंगज़ेब—

कठोर, संयमी और परिश्रमी व्यक्ति था। इसलिये उसके जीते-जी विद्रोह की आग न भड़कने पाई। उसका वह दमन करता रहा। इस बादशाह ने राज्य भी बहुत दिन तक किया, और एकता के विध्वंस होजाने तथा संकीर्णता के प्रबल होजाने के काफ़ी अवसर मिले। उसके मरते-ही साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े होगये। देश के सभी उद्योग-धन्धे, समृद्धि, व्यापार, छिन्न-भिन्न होने लगे।

औरंगज़ेब के उत्तराधिकारियों ने फिर अपने पूर्वजों की रीति का पालन करने की चेष्टा की। शाहआलम ने पूना के पेशवा को अपने राज्य का वकील बनाया, तथा माधोजी सिंधिया को देहली और आगरे का सूबेदार बनाया। शाहआलम के पुत्र अकबरशाह ने राजा राममोहन राय को राजा का ख़िताब देकर तथा अपना एलची बनाकर इँग्लैण्ड भेजा। अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह तो हिन्दू-मुसलमानों को एक-दृष्टि से देखते ही थे। बंगाल में पलासी-युद्ध के बाद तक बड़े-बड़े प्रान्तों की दीवानी बंगाल के हिन्दू-ज़मींदारों के हाथ में थी, और उनमें तथा मुसलमानों में किसी भाँति का भेद-भाव नवाब के दरबार में नहीं माना जाता था।

सिराजुद्दौला का सब से अधिक विश्वस्त अनुचर राजा मोहनलाल था, जिसने पलासी-युद्ध में नवाब के लिये प्राण दिये। महाराजा नन्द-कुमार भी उनके एक दीवान थे। पंजाब में महाराज रणजीतसिंह के कई मन्त्री मुसलमान थे। होलकर और सींधिया के दीवान और उच्चाधिकारी बहुधा मुसलमान होते थे। हैदरअली और टीपू सुलतान के प्रधान-मन्त्री हिन्दू थे। नाना फड़नवीस हैदरअली को बहुत मानते थे।

परन्तु शोक की बात तो यह थी कि दिल्ली की केन्द्रीय शक्ति छिन्न-भिन्न हो चली थी, और देश की राजनीति राष्ट्रीयता से रहित थी। इसी का यह फल हुआ कि अङ्गरेज़-सत्ता ने आसानी से, केवल जादू के ज़ोर पर, औरङ्गज़ेब की मृत्यु के पचास वर्ष बाद ही—पलासी के मैदान में ऐसी विजय प्राप्त की, जिसे पढ़-सुनकर संसार के राजनीतिज्ञ चिरकाल तक आश्चर्य करेंगे।

युद्ध-विद्या और क़िले-बन्दी के कामों में भी मुग़लों ने बहुत उन्नति की। बन्दूकों और तोपों का रिवाज अधिकतर मुग़लों ही के समय में फैला। फ़ौज की, मालगुज़ारी की, बन्दोबस्त की, हिसाब-खाते की, जो व्यवस्था मुग़लों ने की—वह अत्यन्त प्रशंसनीय थी।

तिथि-वार ठीक-ठीक रोज़नामचा या इतिहास लिखना हिन्दुओं ने मुसलमानों ही से सीखा था। बौद्धों के ह्रास होने के बाद से भारतीय व्यापार बहुत गिर चला था। वह मुग़लों के काल में फिर से उन्नत हुआ। मुग़ल-राज्य के लगभग अन्त तक अफ़ग़ानिस्तान, दिल्ली के बादशाह के आधीन था, और अफ़ग़ानिस्तान के ज़रिये बुख़ारा, समरकन्द, बलख़, खुरासान, ख़्वारज़िम और ईरान के हज़ारों व्यापारी तथा यात्री भारत में आते थे। जहाँगीर के काल में प्रति-वर्ष सिर्फ़ बोलन दर्रे से १४ हज़ार ऊँट माल से लदे आते थे। इसी प्रकार पश्चिम में ठट्ठा, भड़ोंच, सूरत, चाल, राजापुर, गोआ, कारवार और पूर्व में मछलीपट्टन तथा अन्य बन्दरगाहों से हज़ारों जहाज़ प्रति-वर्ष अरब, ईरान, तुर्क, मिश्र, अफ़्रीका, लंका, सुमात्रा, जावा, श्याम और चीन से आते-जाते रहते थे।

बर्नियर कहता है—

"यह बात भी कम ध्यान के योग्य नहीं है, कि संसार में घूम-घामकर सोना-चाँदी जब भारतवर्ष में पहुँचता है, तो यहीं खप जाता है। अमेरिका से जो रुपया योरुप के देशों में फैलता है, उसमें से कुछ तो उन वस्तुओं के बदले में, जो टर्की (रूम) से आती हैं, अनेक द्वारों से टर्की में चला जाता है, और कुछ समरनोक बन्दरगाह के मार्ग से ईरान में पहुँच जाता है। वहाँ से रेशम योरुप में आता है। टर्की की यह दशा है कि वहाँ के लोग उस सामान के बिना, जो यमन से आता है, रह ही नहीं सकते, और टर्की, यमन तथा ईरान को भारतवर्ष की वस्तुओं की आवश्यकता बनी रहती है। इस प्रकार मुखा-बन्दर में, जो लाल समुद्र के किनारे पर स्थित है, और बसरे में, जो फ़ारस की खाड़ी के सिर पर है, तथा अब्बास-बन्दर में, जो सुमात्रा टापू के पास है—इन देशों से रुपया आता है, और वहाँ से उन जहाज़ों पर लाद-

कर, जो अच्छी ऋतुओं में भारतवर्ष का माल लेकर इन प्रसिद्ध बन्दरगाहों में आते हैं—भारतवर्ष में पहुँच जाता है। यह भी विदित हो, कि हिन्दुस्तानियों, डचों, अँगरेज़ों और पुर्तगीज़ों के सब जहाज़, जो हर-साल हिन्दुस्तान का माल पेगू, तेनासरम, सिलोन, अचीन, मगम्बर, मलयद्वीप, मोज़ाम्बिक-आदि स्थानों में ले जाते हैं, वे भी उसके बदले में चाँदी-सोना ही लाते हैं, और यह भी उस रुपये की तरह—जो मुखाबन्दर, बसरा, और अब्बास-बन्दर से आता है, यहीं रह जाता है। जो सोना चाँदी डच लोग जापान की खानों से निकालते हैं, उसमें भी थोड़ा-बहुत किसी-न-किसी समय यहाँ आता रहता है, और जो रुपया सीधे मार्ग से फ्रान्स और पुर्तगाल से आता है, वह भी कदाचित् ही यहाँ से लौटकर बाहर जाता है।

"यद्यपि मैं जानता हूँ कि लोग यह कहेंगे, कि भारतवर्ष को ताँबा, लौंग, जायफल, दालचीनी-इत्यादि चीज़ों की आवश्यकता रहती है, जिनको डच, इँगलैण्ड, जापान, मलाका और सिलोन से लाते हैं, और सीसा भी (शीशा नहीं) बाहर ही से आता है, जिसमें से थोड़ा-सा इँग्लैण्ड से अँगरेज़ भेजते हैं। इसके अतिरिक्त यद्यपि फ्रांस से बानात और अन्यान्य चीज़ें आती हैं, और दूसरे देशों के घोड़ों की भी आवश्यकता भारत में रहा करती हैं, जो, प्रति-वर्ष २५ सहस्र से अधिक उज़बक देश (तुर्किस्तान) से और बहुत-से कन्धार होकर ईरान से और मुखा-बन्दर, बसरा और अब्बास-बन्दर होकर रगर्थओपिया (हब्श) अरब और फ़ारस से आते हैं। उसी प्रकार यद्यपि बहुत-से तर और सूखे मेवे समरक़न्द, बलख, बुख़ारा और ईरान से आते हैं, जैसे—सरदे, सेब, नाशपाती, अंगूर, जो अधिकता से देहली में ख़र्च होता है, और जाड़ों-भर बिकता रहता है, तथा बादाम, पिस्ते, पीपल, आलूबुख़ारा, किशमिस-इत्यादि, जो बारहों-महीने बिकते रहते हैं। उसी तरह कौड़ियाँ मलय-द्वीप से आती हैं, जो पैसे-धेले आदि के बदले में कम मूल्य पर चलती हैं। अम्बर ईरान, मलय-द्वीप और मोज़ाम्बिक से आता है। गैंडे के सींग, हाथी-दाँत और गुलाम एथिओपिया से आते हैं। मुश्क और चीनी के बर्तन चीन से आते हैं। मोती,

समुद्रों और टूटीकोरन से, जो लंका-टापू के निकट है, आता है;—तोभी इन चीज़ों के बदले में भारतवर्ष से चाँदी-सोना बाहर नहीं जाता। क्योंकि जो व्यापारी ये चीज़ें लाते हैं—वे इसमें अधिक लाभ समझते हैं। उनके बदले में वे यहाँ की वस्तुएँ ही अपने देशों को यहाँ से ले जाते हैं, सो यद्यपि हिन्दुस्तान में बाहरी देशों से प्राकृतिक या बनावटी चीज़ें आती हैं, तथापि वे संसार-भर के, सोने या चाँदी के एक बड़े भाग के यहीं रह जाने में (जिनका अनेक द्वारों से यहाँ आगमन होता है) रुकावट नहीं डालतीं, और जो चाँदी-सोना एक बार यहाँ आता है, वह कठिनता से पुनः यहाँ से बाहर जाता है।"

यह बर्नियर औरंगज़ेब के समय की गिरती हुई दशा का इस प्रकार वर्णन करता है—

"जब कोई दरबारी या पदाधिकारी, चाहे वह कितना ही योग्य और बड़ा हो—मरता है, तो उसकी सम्पत्ति बादशाही ख़ज़ाने में चली जाती है। उससे बढ़कर यह बात है, कि हिन्दुस्तान की सब ज़मीन, बाग़ों और मकानों को छोड़कर, जिनके बेचने-इत्यादि की अनुमति प्रायः सर्व-साधारण को दे दी जाती है, बादशाह की सम्पत्ति है। मैं अनुमान करता हूँ कि इन बातों से मैंने यह प्रमाणित कर दिया कि यद्यपि सोने-चाँदी की खानें यहाँ नहीं हैं, तोभी चाँदी-सोना यहाँ अधिकता से है; और यह कि, मुग़ल बादशाह, जो इस देश के बड़े भाग का स्वामी है—उसकी आमदनी बहुत-ही अधिक है, और वह बड़ा ही धनाढ्य है।"

शाहजहाँ, जो बहुत कम ख़र्च करनेवाला था, जो किसी बड़ी लड़ाई में फँसे तथा उलझे बिना चालीस वर्ष से अधिक समय तक राज्य करता रहा, कभी ६ करोड़ से अधिक रुपया इकट्ठा न कर सका। परन्तु इस धन में मैंने उन अगणित सोने-चाँदी की तरह-तरह की चीज़ों को, जिनपर बहुत अच्छे काम बने हुए हैं, तथा बड़े-बड़े मूल्य के मोतियों और भाँति-भाँति के असंख्य रत्नों को सम्मिलित नहीं किया है। मुझे सन्देह है कि इससे अधिक रत्न कदाचित् ही संसार के किसी बादशाह के पास

हों। केवल एक तख़्त-इ - यदि मैं भूलता न होऊँ—तो, तीन करोड़ के मूल्य का है। ये सब जवाहरात और बहुमूल्य वस्तुएँ राजपूतों के प्राचीन राज-वंशों, पठान बादशाहों और अमीरों से लूटी तथा एक लम्बी मुद्दत में इकट्ठी की हुई हैं। प्रत्येक बादशाह के समय में राज्य के अमीरों की मामूली वार्षिक नज़रों के रुपये, जो उनको अवश्य ही देने पड़ते हैं, उसकी भी संख्या बढ़ती गई है। यह सब ख़ज़ाना तख़्त का माल समझा जाता है, और इनको उपयोग में लाना अनुचित है। यहाँ तक कि स्वयं बादशाह भी—चाहे कैसी ही आवश्यकता क्यों न हो—इसमें से थोड़ा-सा रुपया भी बड़ी कठिनता से प्राप्त कर पाता है।

यद्यपि चाँदी-सोना और देशों से घूम-घामकर अन्त में भारतवर्ष में ही आजाता है, तोभी और देशों की अपेक्षा यहाँ अधिक दिखाई नहीं देता, और भारतवासी, दूसरे देशों के निवासियों के समान सन्तुष्ट प्रतीत नहीं होते। इसका कारण यह है, कि प्रथम तो बहुत-सा माल बार-बार लगाये जाने, जैसे औरतों के हाथों की चूड़ियों, कड़ों, कानों की बालियों, नाक की नथों, हाथ की अँगूठियों-आदि के बनाने में, छीज जाता है। इससे भी अधिकांश ज़रदोज़ी, कारचोबी के काम के कपड़ों—इलायचों, पगड़ियों के तुर्रों, सुनहरे-रुपहरे कपड़ों, ओढ़नियों, पटकों, मन्दीलों और कमरबन्दों के बनाने में ख़र्च होजाता है, जिस पर सुननेवालों को विश्वास नहीं होता। सेनाओं में अमीरों से लेकर सिपाहियों तक, कुछ-न-कुछ मुलम्मेदार और, सुनहरी-रुपहरी चीज़ें तड़क-भड़क के लिये पहनते हैं। एक अदना सिपाही चाहे कुटुम्ब उसका भूखों मरता रहे—जो एक साधारण बात है—अपनी स्त्रियों के लिये गहने अवश्य गढ़वाएगा।

जागीरदारों, प्रान्तीय अधिकारियों और तहसीलदारों का घोर अत्याचार—जिसे, यदि बादशाह भी रोकना चाहें, तो रोक नहीं सकता—विशेषत: उन प्रान्तों में, जो राजधानी के निकट नहीं हैं, इतना बढ़ा हुआ है कि खेतिहारों और कारीगरों के पास—उनके जीवन-निर्वाह के लिये कुछ भी नहीं छोड़ता, और वे दीनता तथा दरिद्रता में मरा करते हैं। इसके अतिरिक्त

इन्हीं अत्याचारों के फल-स्वरूप उन बेचारों के कोई सन्तान नहीं होती। यदि, हुई भी तो असमय-ही क्षुधा से पीड़ित हो, संसार से चल बसती है। संक्षेप में यह कि इन उपद्रवों और अत्याचारों के कारण कृषक अपनी जन्म-भूमि छोड़कर, कुछ सुख मिलने की आशा से किसी पड़ौसी-राज्य में चले जाते हैं—या सेना में जाकर किसी सवार के पास नौकर हो जाते हैं। कारण कि, भूमि-सम्बन्धी कार्य बड़ी कठिनता से होता है, और कोई भी व्यक्ति इसके योग्य नहीं पाया जाता, जो अपनी इच्छा से उन नहरों और उन नालियों की मरम्मत करे—जो सिंचाई के लिये बनी हुई हैं। भूमि का एक बड़ा भाग सूखा और ख़ाली पड़ा रहता है। बात भूमि तक ही नहीं है। बहुत-से घरों की भी ऐसी-ही दशा है। बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो नये मकान बनवाते या मकानों की मरम्मत करवाते हैं! एक ओर तो कृषक अपने मन में यह सोचते हैं कि क्या हम इस वास्ते परिश्रम करें कि कोई अत्याचारी आवे, और हमारा सब-कुछ छीन ले जावे, और हमारे निर्वाह को भी एक दाना न छोड़े। दूसरी ओर जागीरदार सूबेदार और तहसीलदार यह सोचते हैं कि, हम क्यों सूखी और उजाड़ भूमि की चिन्ता करें? अपना रुपया और समय क्यों इसके उपयोगी बनाने में व्यय करें,—न-मालूम, किस वक़्त यह हमारे हाथ से निकल जाय, और हमारे उद्योग तथा श्रम का फल न हमें मिले, न हमारे वंशजोंको,—अतएव भूमि से जो कुछ मिल सके, ले लें, और जो न मिले, न सही। खेतिहार भूखों मरें या उजड़ जाएँ—हमें क्या? जब हमको भूमि छोड़ देने की आज्ञा होगी, इसे ऊजड़ छोड़कर चल देंगे।

हिन्दुस्तान का कला-कौशल या यहाँ की अत्यन्त सुन्दर कारीगरी—कभी के नष्ट हो लिये होते, यदि बादशाह से अमीरों के यहाँ बहुत-से कारीगर नौकर न होते, जो स्वयं उनके घरों में और बादशाही कार्यालयों में बैठकर करते तथा अपने शिष्यों और लड़कों को सिखलाया करते हैं। इनाम की आशा और कोड़ों का भय, उन्हें कलापूर्ण उन्नति के मार्ग में लगाये रहता है। यह भी कारण है कि कुछ धनी व्यापारी ऐसे ।क भी हैं, जिन-

बड़े-बड़े उमराओं से सम्बन्ध तथा व्यवहार है, अथवा जो कारीगरों को मामूली से कुछ अधिक मज़दूरी देकर काम लेते हैं। मैंने कुछ अधिक मज़दूरी इसलिये कहा है—कि, यह तो समझना ही चाहिये, अच्छी चीज़ें बनाने से कारीगर का कुछ आदर किया जाता है, या उसे स्वतन्त्रता दी जाती है। कारण, जो भी कुछ वह करता है—आवश्यकता और कोड़ों के डर से करता है। उसके मन में सन्तोष और सुख की आशा नहीं होती। इसलिये यदि रूखा-सूखा टुकड़ा खाने को और मोटा-झोटा कपड़ा पहनने को मिल जाय, तो इसी को वह बहुत समझता है। रुपया भी मिले, तो उसे क्या—वह तो उस व्यापारी का माल है, जो सदैव इसी की चिन्ता में लीन रहा करता है, कि—यदि कोई बलवान अत्याचार या ज़बर्दस्ती करना चाहे, तो उससे मैं कैसे बचूँगा ?

व्यापार की गिरी अवस्था—जिस देश में इस प्रकार का शासन हो, वहाँ उन्नति और सफलता के साथ व्यापार भी नहीं हो सकता, जैसे यूरोप में होता है; क्योंकि ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो अपनी इच्छा से परिश्रम करना, और दूसरों के लाभ के लिये कष्ट उठाना अथवा अपनी जान-जोखों में डालना पसन्द करें। किसी दूसरे व्यक्ति से—मेरा प्रयोजन ऐसे शासक से है, जो लोगों की कमाई छीन लेने में नहीं हिचकता, चाहे कितना ही लाभ क्यों न हो, कमानेवाले को दरिद्री का-सा वस्त्र पहनना, और निर्धन पड़ौसियों से बढ़कर खाने-पीने में कंजूसी करना आवश्यक है। परन्तु हाँ, जब किसी सैनिक-सरदार से किसी व्यापारी का सम्बन्ध होजाता है, तब, अवश्य ही वह बड़े-बड़े व्यापारिक कार्य करने लगता है। तो-भी उसे अपने संरक्षक की गुलामी में रहना आवश्यक है, जो उसकी रक्षा के बदले, जिस प्रकार की प्रतिज्ञा चाहे, उससे करा लेता है।

सूबेदार-आदि वास्तव में नीच, अभागे और गुलाम होते हैं, तथा कुछ भी सम्पत्ति उनके पास नहीं होती। किन्तु शासन-कार्य मिलते ही वे बड़े बुद्धिमान और सन्तुष्ट अमीर बन जाते हैं। इस प्रकार समग्र देश में दुर्दशा और तबाही फैली हुई है। जैसाकि मैं पहले कह चुका हूँ, ये सब

सूबेदार अपने-अपने स्थानों में छोटे-मोटे बादशाह बने हुए हैं। इनके अधिकार असीम है। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसके पास पीड़ित प्रजा जाकर पुकार सुना सके। कोई भी कैसा-ही भयानक अत्याचार बारम्बार क्यों न मचावे, परन्तु किसी प्रकार की सुनवाई की आशा नहीं है।

यदि किसी प्रकार कोई शिकायत करनेवाला बादशाह के पास पहुँच भी जाता है, तो सूबेदार के पक्षपाती असल बात को छिपाकर कुछ और-का-और ही मामला बादशाह को सुना देते हैं। तात्पर्य यह कि सूबेदारों को उनके प्रान्तों का सम्पूर्ण रूप से मालिक और स्वत्वाधिकारी समझना चाहिये। वे आप ही जज (विचारक), आप ही पार्लियामेण्ट और आप ही प्रेसिडेन्शल कोर्ट (मुख्य विचारालय) हैं। आप ही अपराध का निर्णय करने-वाले और आप ही राज्य-कर के वसूल करनेवाले होते हैं। एक ईरानी ने इन अत्याचारी, लोभी सरदारों, और तहसीलदारों के विषय में क्या ही अच्छा कहा है कि--'यह बालू में से तेल निकालते हैं।' पर सच तो यह है कि इनकी स्त्रियाँ, बच्चों, सेवकों और लुटेरे साथियों के ख़र्च के लिये भी आमदनी काफ़ी नहीं होती।

शिक्षा के विषय में वह लिखता है :—

"सारे देश में शिक्षा का बिलकुल अभाव है। लोग अपढ़ और मूर्ख हैं, और यह वहाँ सम्भव ही नहीं है, कि ऐसे शिक्षालय और कॉलेज खुल सकें—जिनके ख़र्च के लिए यथेष्ट-धन राजकोष में मौजूद हो। वहाँ ऐसे लोग कहाँ—जो आर्थिक-सहायता देकर कॉलेज खुलवावें मान लिया जाय, कि ऐसे लोग मिल भी जायँ—तो पढ़ानेवाले कहाँ? लोगों में इतनी शक्ति कहाँ, कि अपने-अपने बच्चों को कॉलेज में भेजकर उनके ख़र्चे का प्रबन्ध कर सकें? यदि इस योग्य धनवान लोग हों भी, तो यह साहस कौन कर सकता है, कि इस प्रकार खुले-आम अपनी समृद्धता प्रकट कर सकें?"

———

(२६)

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की कठिन समस्या

इस समय भारत में ७ करोड़ मुसलमान, २१ करोड़ हिन्दू और कुछ अन्य जाति के लोग बसते हैं। ये सभी हिन्दुस्तानी हैं, और भारत पर इनका समान अधिकार है। पर ज्यों-ज्यों सामूहिक सत्ता ज़ोर पकड़ती जाती है, हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न गम्भीर होता जाता है। यद्यपि हमारी इस पुस्तक का विषय राजनैतिक नहीं, फिर भी हम यह अवश्य कहते हैं, कि इस समय हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न ही भारत की सर्वोपरि राजनैतिक विपत्ति है।

अब यदि कोई हिन्दू यह विचार करे, कि हम ७ करोड़ मुसलमानों को भारत से निकाल बाहर करने के उद्योग करें, तो यह हास्यास्पद है। और यदि मुसलमान ही हिजरत करने का ध्यान करें, तो महान् मूर्खता की बात है। इसके सिवा चाहे भी जितना प्रबल कारण हो, परन्तु हिन्दू-मुस्लिम झगड़े का होना राष्ट्रीयता के हक़ में सर्वथा घातक है। प्रत्येक विचारशील हिन्दू और मुसलमान भारतीय को यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए, कि पीढ़ियों से जिनके घरों की दीवार-से-दीवार मिली है, जिनकी स्त्रियें, परस्पर सहेलियों की भाँति रहती, हँसती, बोलती हैं, जिनके बच्चे एक साथ खेलते-कूदते, पढ़ते-लिखते हैं— जिनके व्यापार, खेती, व्यवसाय, कार-बार एक ही स्थान में फैले हुए हैं—परस्पर गुँथे हुए हैं, और एक-दूसरे के विश्वास, प्रेम और सहयोग पर ही जिनका सामाजिक जीवन निर्भर है, उनके परस्पर के संघर्ष में उनका किसी भी भाँति कल्याण नहीं है।

यह हम पीछे बतला चुके हैं कि मुस्लिम-सत्ता के प्रारम्भ से अन्त तक, कितने साधु-सन्तों और विद्वानों ने दोनों जातियों के विचारों को एक

धारा में बाँधने की परिपूर्ण चेष्टा की है। परन्तु वह सदा-ही असफल रही। वह परिस्थिति ऐसी ही थी, उस समय एक जाति शक्ति-संपन्न थी, दूसरी दलित ! फिर धार्मिक गुलामो में दोनों ही जातियाँ जकड़ी हुई थीं। परन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। दोनों ही जातियाँ गुलाम बन चुकी हैं। कम-से-कम भारत के मुसलमानों की सामूहिक-दशा यहाँ के हिन्दुओं से किसी भी हालत में अच्छी नहीं है। परन्तु हम देखते हैं, मुस्लिम-जाति भारत में बड़ी तेज़ी से पतन की ओर को जा रही है। चाहे भी जिस शहर में मुसलमान बच्चे और युवक आवारागर्द ग़ज़लें गाते दिन-भर फिरते देखे जाते हैं। उसका साहित्य उसका सङ्गठन, उसकी सत्ता, उसकी संस्कृति नष्ट हो रही है। हिन्दू-युवकों में जीवन आ रहा है। अब सच्ची राष्ट्रीयता के उत्पन्न होने के लिये, दोनों जातियों की एक दूसरे के प्रति आत्म-समर्पण कर देने की आवश्यकता है।

मेरी खुली राय है कि बिना किसी प्रतिबन्ध के हिन्दू-मुसलमानों में रोटी-बेटी का सम्बन्ध जारी हो जाना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की एक-मात्र यही कुञ्जी है। धर्म-भावना या सामुदायिक संकुचित विचार इस काम में बाधक न होने चाहिये।

शीघ्र-ही सारे संसार में एक मानवीय भूचाल आनेवाला है। उस-में अधिकारी और अधिकारों का विध्वंस होगा। महान् भ्रातृ-मण्डल की स्थापना होगी। उसमें एशिया प्रधान अभिनय-क्षेत्र होगा, और यदि भारत के हिन्दू-मुसलमान पहले ही से स्वाभाविक भ्रातृ-भाव में आबद्ध होजा-वेंगे, तो एशिया को विजय-सेहरा बाँधने का सौभाग्य भारत ही को प्राप्त होगा।

समाप्त